स्व० पुण्यश्लोका माता मूर्तिदेवीकी पवित्र स्मृतिमें
तत्सुपुत्र साहू शान्तिप्रसादजी द्वारा
संस्थापित

भारतीय ज्ञानपीठ मूर्तिदेवी जैन-ग्रन्थमाला

अपभ्रंश ग्रन्थाङ्क १

इस ग्रन्थमालामें प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश, हिन्दी, कन्नड, तामिल आदि प्राचीन भाषाओंमें उपलब्ध आगमिक, दार्शनिक, पौराणिक, साहित्यिक और ऐतिहासिक आदि विविध-विषयक जैन-साहित्यका अनुसन्धानपूर्ण सम्पादन और उसका मूल और यथासम्भव अनुवाद आदिके साथ प्रकाशन होगा। जैन भण्डारोंकी सूचियाँ, शिलालेख-सग्रह, विशिष्ट विद्वानोंके अध्ययन-ग्रन्थ और लोकहितकारी जैन-साहित्य ग्रन्थ भी इसी ग्रन्थमालामें प्रकाशित होंगे।

ग्रन्थमाला सम्पादक
डॉ० हीरालाल जैन, एम० ए०, डी० लिट्०
डॉ० आ० ने० उपाध्ये एम० ए०, डी० लिट्०

प्रकाशक
अयोध्याप्रसाद गोयलीय
मन्त्री, भारतीय ज्ञानपीठ
दुर्गाकुण्ड रोड, वाराणसी

• मुद्रक •
बाबूलाल जैन फागुल्ल, सन्मति मुद्रणालय दुर्गाकुण्ड रोड, वाराणसी

स्थापनाब्द फाल्गुन कृष्ण ९ वीर नि० २४७०
विक्रम स० २००० १८ फरवरी सन् १९४४

JNANAPITH MURTIDEVI JAIN GRANTHMALA
Apabhransha Grantha No. 1

PAUMCHHRIU

of

KAVIRAJA SVAYAMBHUDEVA

श्री हंसराज बच्छराज नाहटा
सरदारशहर निवासी
द्वारा
जैन विश्व भारती, लाडनू
को सप्रेम भेंट –

Translated by
Devendra Kumar Jain M. A., Sahityacharya

Published by
Bharatiya Jnanapitha Kashi

First Edition 1000 Copies	MARGSHIRSHA VIR SAMVAT 2484 VIKRAMA SAMVAT 2014 NOVEMBER 1957	Price Rs. 3/-

Bharatiya Jnana-Pitha Kashi

FOUNDED BY

SETH SHANTI PRASAD JAIN

In Memory of his late Benevolent Mother

SHRI MURTI DEVI

BHĀRATĪYA JÑĀNA-PĪTHA MŪRTI DEVĪ JAIN GRANTHAMĀLĀ

Apabhransh Granatha No. 1.

In this Granthamala critically edited Jain agamic philosophical, pauranic, literary, historical and other original texts available in prakrit, sanskrit, apabhransha, hindi, kannada and tamil etc., will be published in their respective languages with their translations in modern languages

AND

Catalogues of Jain Bhandaras, inscriptions, studies of competent scholarts & popular jain literature will also be published

General Editor

Dr. Hiralal Jain, M A D Litt.

Dr. A N Upadhye M A D Litt

Publisher

Ayodhya Prasad Goyaliya

Secy. Bharatiya Jnanapitha

Durgakund Road, Varanasi.

Founded on Phalguna Krishna 9 Vira Sam. 2470

Vikrama Samavat 2000

18th Feb. 1944.

"अपनी उमंग को"

"जिसके बिना यह संभव न था"

—देवेन्द्रकुमार

प्राथमिक वक्तव्य

महाकवि स्वयम्भू और उनकी दो विशाल अपभ्रंश रचनाओं—पउमचरिउ और हरिवंश-पुराणके सम्बन्धमें बहुत कुछ लिखा जा चुका है। इनका सर्व-प्रथम परिचय—"Svaymbhu and his two poems is Apabhransa" by H. L. Jain (Nagpur University Journal vol. I, 1935) द्वारा प्रकाशित हुआ था। कविके एक छन्द-ग्रन्थका अन्वेषण कर उसका उपलब्ध भाग डॉ० एच० डी० वेलणकरने सम्पादित कर प्रकाशित कराया (बं० रा० ए० सो० जर्नल १९३५ और १९३६)। तत्पश्चात् सन् १९४० में प्रो० मधुसूदन मोदीका "चतुर्मुख स्वयम्भू अने त्रिभुवन स्वयम्भू" शीर्षक लेख भारतीय विद्या अंक २–३ में प्रकाशित हुआ जिसमें लेखकने कविके नामके सम्बन्धमें बड़ी भ्रान्ति की है। सन् १९४२ में पं० नाथूराम प्रेमीका 'महाकवि स्वयम्भू और त्रिभुवन स्वयम्भू' लेख उनकी 'जैन साहित्य और इतिहास' नामक पुस्तकके अन्तर्गत प्रकट हुआ। तत्पश्चात् सन् १९४५ में पं० राहुल सांकृत्यायनका 'हिन्दी काव्यधारा' ग्रन्थ प्रकाशित हुआ जिसमें कवि की रचनाके काव्यात्मक अवतरण भी उद्धृत हुए। भारतीय विद्या-भवन, बम्बई से डॉ० एच० सी० भयाणी द्वारा सम्पादित होकर कविका पउमचरिउ प्रकाशित होना प्रारम्भ हो गया है और अब तक उसके दो भाग निकल चुके हैं। अतएव प्रस्तुत रचना सम्बन्धी विशेष जानकारी के लिए यह सब साहित्य देखने योग्य है। कविका दूसरा महाकाव्य हरिवंशपुराण अभी सम्पादन-प्रकाशनकी बाट जोह रहा है।

प्रस्तुत प्रकाशनमें डॉ० देवेन्द्रकुमारने डॉ० भयाणी द्वारा सम्पादित पाठको लेकर उसका हिन्दी अनुवाद किया है। इस विषयमें अनुवादक ने अपने वक्तव्यमें कुछ आवश्यक बातें भी कह दी हैं। उन्होंने जो परिश्रम किया है वह स्तुत्य है। तथापि, जैसा उन्होंने निवेदन किया है।

"इतने बड़े कविके काव्यका पहली बारमें सर्वांग-सुन्दर और शुद्ध अनुवाद हो जाना सम्भव नहीं।" अतएव स्वाभाविक है कि विद्वान् पाठकोंको इसमें अनेक दूषण दिखाई दें। इन्हें वे क्षमा करेंगे और अनुवादक व प्रकाशकको उनकी सूचना देनेकी कृपा करेंगे।

डॉ० देवेन्द्रकुमारजी तथा भारतीय ज्ञानपीठके प्रयाससे अपभ्रंश भाषाके आदि महाकविकी यह विशाल रचना हिन्दी पाठकोंके सम्मुख उपस्थित हो रही है, इसके लिए ये दोनों ही हमारे धन्यवादके पात्र हैं।

हीरालाल जैन
१७-२-५८] आ० ने० उपाध्ये
प्रधान सम्पादक

दो शब्द

'पउमचरिउ' के अनुवादका काम मैंने जुलाई ५३ में स्वीकार किया था। उन दिनों मैं अल्मोडाके डिग्री कालेजमें प्राध्यापक था, वहाँ न तो विद्वानोंसे सम्पर्क सभव था और न अन्य सदर्भ ग्रन्थ उपलब्ध थे। पउमचरिउ मेरे सम्मुख था और मैं उसके। दोनोंके बीच यदि कुछ और था तो चारों ओर बिखरा हुआ हिमालयका सौन्दर्य। वह कवियोंको प्रेरणादायक हो सकता हो, पर उनके अनुवादकोंको नही। अनुवाद करनेमें मुझे लगा कि ऐसा क्लासिकल अनुवाद माथापच्चीका अच्छा उपाय है। दो-एक बार इधर-उधर लिखा पढ़ी की पर आशाजनक उत्तर नहीं मिला। ले देकर, १९५४ के अन्त तक मैंने पूरा अनुवाद सम्पादन-प्रकाशनके लिए भेज दिया। लेकिन ७५-५६में यह अनुवाद इधर-उधर भटकता रहा, एक-दो बार मेरे पास भी आया। अब ले-देकर, यह प्रकाशमें आ रहा है।

जहाँ तक मुझे ज्ञात है, यह अपभ्रंश प्रबन्धकाव्यका पहला हिन्दी अनुवाद है। और अनुवाद भी ऐसे ग्रन्थका जो अपभ्रंश साहित्यका आदि-काव्य कहा जाता है, यह एक विचित्र साम्य है कि संस्कृतकी तरह अपभ्रंश काव्यका प्रारम्भ रामकथासे ही हुआ। प्राकृत काव्यका शायद ऐसा ही उद्गम हो, 'राम' भारतीय जनमानसकी अभिव्यक्तिका लोकप्रिय साधन रहे है, देशमें जब कोई नया विचार सम्प्रदाय या बोली आई, तो उसने रामकथाके पट पर ही अपनेको अंकित किया। रामकथा पुरानी बनी रही, पर उसकी ओटमें कितनी ही नवीनता साहित्यके वातायनसे जनजीवन तक पहुँचती रही। ऐसी रचनाका अनुवाद प्रकाशित करना 'ज्ञानपीठ' के नामको सार्थक बनाता है।

अपभ्रंश और हिन्दी साहित्यका एक तुच्छ अध्येता होनेके नाते मेरा अनुभव यह है कि हिन्दी-जगत्में अपभ्रंशकी रुचि बढ रही है। पर उसकी प्रामाणिक जानकारी कम हो पा रही है। चोटीके विद्वान् भी भयङ्कर भूलें कर रहे है, इसका कारण अनुवादोका न होना है। उदाहरण के लिए राहुलजीने अपनी हिन्दी काव्यधारामें पउमचरिउके कुछ अवतरण देते हुए, कामावस्थाओंके वर्णनका एक प्रसंग 'राम' के सिर मढ दिया है। वास्तवमें वह सीताके भाई भामडलकी कामावस्थाओंका वर्णन है, जैन रामायणके अनुसार भामडल सीताका भाई था, बचपनमें उसे विद्याधर उठा ले गया। बादमें नारदने सीताका पटचित्र उसे दिखाया और वह उसके रूप पर आसक्त हो उठा। कवि स्वयभूने उसकी कामावस्थाओंका वर्णन किया है, राहुलजीने उन्हें रामकी कामावस्था समझ लिया। बादमें श्रीपरशुराम चतुर्वेदी, डा० त्रिलोकनारायण आदि लेखकोंने इस गलत बातका अवतरण देकर, हिन्दीके पाठकोको स्वयभूके बारेमें एकदम भ्रान्त और गलत जानकारी दी है। डा० कोचरकी थीसिस 'अपभ्रंश-साहित्य' में कई नाम तक गलत है, जैसे मदनाग पहाडका नाम उन्होने मैनाक कर दिया है और धनवट्टका धनपाल। धनपाल 'भविसयत्तकहा' का लेखक है न कि नायक। इन सब भ्रांतियो का एक मात्र कारण अपभ्रंश पुस्तकोके प्रामाणिक अनुवादोंका न होना है। समूचे मूलग्रन्थको पढ़नेकी योग्यता सबको नही होती, और जो योग्य हैं भी, उन्हें इतना अवकाश नही मिल पाता। इसलिए अपभ्रंश साहित्यके रसास्वादन और सही मूल्यांकनके लिए—उसके अच्छे अनुवादकी बहुत आवश्यकता है। यह सन्तोषकी बात है कि ज्ञानपीठने इसकी पूर्तिके लिए पग बढ़ाया है, आशा करता हूँ कि यह पग रुक न कर, बढता ही चला जायगा।

पउमचरिउ और कवि स्वयभूकी खोज सबसे पहले स्व० डा० पी० डी०

गुणे ने की थी। उसके बाद मुनि जिनविजयके ध्यान आकृष्ट करने पर श्रद्धेय नाथूरामजी प्रेमीने जुलाई १९२३ के 'जैन साहित्य समालोचक' में छपे अपने लेख "महाकवि पुष्पदन्त और उनका महापुराण" में पउमचरिउकी चर्चा की थी। उसके बाद श्रीराहुलजीने १९४५ में हिन्दी काव्यधारामें स्वयभूके बारेमें निम्नपंक्तियाँ लिखी, "हमारे इसी युगमें नही, हिन्दी कविताके पाँचो युगोंके जितने कवियोंको हमने यहाँ सगृहीत किया है उनमें यह नि.संकोच कहा जा सकता है कि स्वयभू सबसे बडा कवि है। वस्तुत वह भारतके एक दर्जन अमर कवियोंमें से एक था। आश्चर्य और क्रोध दोनो होता है कि लोगोंने कैसे ऐसे महान् कविको भुला देना चाहा।" इससे स्पष्ट है कि हिन्दी जगत्का ध्यान न केवल अपभ्रंश साहित्यके प्रति आकृष्ट हुआ है, पर उसमें अनुसधान भी हो रहा है। महाकवि स्वयंभूका 'पउमचरिउ' डा० एच० सी० भायाणी द्वारा सम्पादित होकर दो खण्डोंमें प्रकाशित हो चुका है, एक खण्ड बाकी है, प्रस्तुत अनुवादका मूल आधार वही है, हो सकता है अनुवादमें भूलें हों। यह असम्भव भी नही। क्योंकि इतने बडे कविके काव्यका पहली बारमें सर्वाङ्गसुन्दर और शुद्ध अनुवाद हो जाना सम्भव नही। पर इसका अर्थ यह नही कि इसमें सुन्दरता या शुद्धता है ही नही। मेरा कहनेका अभिप्राय यह है कि मैने अपने सीमित साधनोंमें अनुवादको 'खरा' बनानेमें कसर नही की, फिर भी कही कोई खोट या अरुचिकर प्रयोग हो तो उसके लिए दोष मुझे खुलकर दिया जाय, कविको नही। इसके बाद भी यदि कोई मुझपर रुठ ही जायँ, तो उसके प्रति मै महाकविके शब्दोंमें यह कहना चाहूँगा 'जइ एम विरुसइ को वि खलु, तहो हत्थुत्थल्लउ लेउ छलु'। तीसरा खण्ड छपा नही। छपते ही उसका भी अनुवाद हो जायगा। कविकी जीवनी और साहित्य परिचय दूसरे पृष्ठोंमें दिया जा रहा है। इस कार्यमें मुझे मा० प० फूलचन्द सिद्धान्तशास्त्री, डा०

हीरालाल जैन और बाबू लक्ष्मीचन्द जैन एम० ए० से जो सहायता और प्रेरणा मिली, उसके लिए, उनके प्रति अपना हार्दिक आभार प्रकट करता हूँ। ज्ञानपीठ—मेरे अभिनन्दनका वास्तविक पात्र तभी होगा जब वह 'अपभ्रंश साहित्य' के प्रकाशन, आलोचना और सम्पादनमें उतना ही उत्साह दिखाएगा कि जितना संस्कृत और प्राकृत साहित्यके उद्धारमें देखा जा रहा है। अन्तमें मैं अल्मोडाकी धरतीके प्रति भी अपनी ममताभरी श्रद्धा प्रकट करना चाहता हूँ, क्योंकि यह अनुवाद और अपनी थीसिस मैंने वस्तुतः उसीके अंचल में बैठकर पूरी की।

होल्कर महाविद्यालय, इन्दौर
१६–१०–५७

—देवेन्द्रकुमार जैन

महाकवि स्वयम्भू

स्वयम्भू पहले अपभ्रंश कवि हैं जिनका समूचा साहित्य उपलब्ध है। कला और भाव-संवेदनाकी दृष्टिसे भी वे एक प्रौढ शिल्पी सिद्ध हुए हैं। उनकी कृतियाँ प्राकृत काव्यधारा और मध्यकालीन हिन्दी काव्य-धाराके बीचकी एक अनिवार्य पीठिका है। उन्होंने दक्षिण भारत और उत्तर भारतकी सीमाभूमिमें रहकर काव्यसाधना की। यह अन्तिम तथ्य, उनके साहित्यको केवल उत्तर भारतकी आर्य भाषाओंके साहित्यसे जोडता ही नहीं, वल्कि अनार्य भाषाओंके साहित्यसे भी समानता बतलाता है!

कर्णाटकके एक साहित्यिक घरानेके पिता मारुत देव और माँ पद्मिनी की सन्तान थे स्वयम्भू। इस घरानेमें तीन पीढियोंसे साहित्य-साधना की परम्परा चली आ रही थी। कवि स्वयम्भूने दो विवाह किये। कविने 'पउमचरिउ' के अयोध्याकाण्ड और विद्याधर काण्डके अन्तमें इन दोनों पत्नियोंका उल्लेख किया है। इससे ज्ञात होता है कि उनकी पत्नियाँ पढी-लिखी ही नहीं, साहित्य-साधनामें अपने कवि पतिकी सहायिका भी थी। एक श्लिष्ट उक्तिके आधारपर श्री नाथूरामजी प्रेमीने कविकी तीसरी पत्नीका भी अनुमान किया है। पर यह केवल अनुमान है। क्योंकि यदि कविकी तीसरी पत्नी होती तो वह अवश्य दो की तरह तीसरीका भी उल्लेख करता या पुत्र ही अपनी माँ को अपने काव्यमें श्रद्धाके फूल चढाये बिना नहीं रहता! त्रिभुवनकी उक्तिसे जान पडता है कि कविके कई पुत्रों और शिष्योंमेंसे त्रिभुवन ही एक ऐसा था जिसने उत्तराधिकारके रूपमें पितासे साहित्य-परम्परा पायी थी। शेष लोग

धनके पीछे दौड़े। इसमें सन्देह नहीं कि कविका पारिवारिक जीवन सुखी और सम्पन्न था। आश्रयदाता और समाजके प्रमुख सदस्योंमें उनकी अच्छी ख्याति थी। कवि पुष्पदन्तकी तरह वह उग्र और एकान्त प्रेमी नहीं थे। पुष्पदन्तकी अपेक्षा उनकी उक्तियोंमें निराशा और कटुताकी झलक कम ही है। कविने अपने जन्म और स्थानके सम्बन्धमें कुछ नहीं लिखा। उनके पुत्रने भी नहीं। फिर भी पउमचरिउमें आचार्य रविषेणका उल्लेख है। इनका समय ई० ६७७ है। स्वयम्भूका उल्लेख अपभ्रंशकवि पुष्पदन्तने किया है, उनका समय ६५६ ई० के लगभग है। फिर अपनी रचना 'रिट्ठनेमिचरिउ' में कविने आ० जिनसेन का उल्लेख किया है। उनका समय ७८३ ई० है। ऐसा जान पड़ता है कि जिनसेन स्वयम्भूसे कुछ ही समय पहले हुए। अतः कविका समय ई० ६७७ से ७८३ के बीच कहीं समझना चाहिए। इस तथ्यके आधार पर उन्हें हम आठवीं सदीके प्रथम चरणका मान सकते हैं। जन्म और जीवनकी तरह उनकी मृत्युके विषयमें भी कोई उल्लेख नहीं मिलता।

कवि स्वयम्भू किस प्रदेशके मूल निवासी थे, यह भी एक विवाद का प्रश्न है। 'पउमचरिउ' की सन्धियोंकी पुष्पिकाओंसे इतना ही विदित होता है कि किसी धनञ्जय नामके व्यक्तिकी प्रार्थनापर कविने 'पउमचरिउ' की रचना की। परन्तु 'रिट्ठनेमि चरिउ' की रचना करते समय कवि 'धवलिया' के संरक्षणमें था। उनका पुत्र त्रिभुवन 'विदइया' के आश्रममें था। इससे अधिक जानकारी, अपने संरक्षकोंके सम्बन्धमें कविने नहीं दी। पर नामोंसे ये सब दक्षिणवासी प्रतीत होते हैं। सारांशतः कविको कर्णाटकका होना चाहिए। इस सम्बन्धमें 'पउमचरिउ' की भूमिकामें डॉ० भायाणीने कुछ तर्क दिये हैं। उनका कहना है कि कविने (रि० ने० च० २१।१८।५) पाँच पाण्डवों, द्रौपदी और कुन्तीकी

उपमा गोदावरीके सात मुखोसे दी है। यह दक्षिणवासीके लिए ही सम्भव है (२) कविने माहका क्रम चैतसे फागुन तक माना है, यह दक्षिणमें ही प्रचलित है। (३) गोदावरीका जो वर्णन कविने किया है, वह एक प्रत्यक्षदर्शी ही कर सकता है। फिर भी वह कविको कर्णाटकमें विदर्भसे प्रवासित मानते है। क्योकि ७वी सदीसे राष्ट्रकूट कालमें बरार और कर्णाटकमें राजनैतिक और सांस्कृतिक सम्बन्ध उत्तरोत्तर बढता गया (पृ० ११ राष्ट्रकूटाज़ और ढेअर टाइम्स डॉ० आल्तेकर)। प्रेमीजी भी यही मानते हैं। परन्तु राहुलजी की सूझ और भी लम्बी है। 'हिन्दी काव्य-धारा' में उन्होने बताया है कि स्वयम्भू कन्नौजके थे, और राष्ट्रकूट राजा ध्रुवके अमात्य, सामन्त रयडा धनञ्जयके साथ वह दक्षिण गये। ध्रुवने कन्नौजपर आक्रमण किया था। पर यह निर्मूल कल्पना है। ठोस प्रमाणके अभावमें उन्हें उत्तर भारतीय मानना ठीक नही। दक्षिण भारतके इतिहाससे सिद्ध है कि वहाँ के लेखक आर्य-भाषाओंमें साहित्य रचना करते रहे हैं। अधिकाश संस्कृत-प्राकृत साहित्य दक्षिण-वासी जैन आचार्यों द्वारा लिखा गया है, कविने ससुरके अर्थमें 'माम' शब्दका प्रयोग किया है. मामाका ससुर होना दक्षिण भारतमें ही सम्भव है, उत्तर भारतमें नहीं। हम यह कह सकते है कि स्वयम्भू पर उत्तर भारत की अपेक्षा दक्षिणकी सस्कृतिका असर अधिक है। यदि वह ठेठ कन्नोज के होते तो यह सब इतने जल्दी कैसे सम्भव हो गया ! अधिकसे अधिक उन्हें विदर्भका मान लेने पर भी, इतना निश्चित है कि कविके पूर्वज कई पीढ़ियों पहले कर्नाटकमें बस चुके होंगे।

अपने सम्प्रदाय या गुरु परम्पराके विषयमें कवि सर्वथा मौन हैं। परन्तु पुष्पदन्तके महापुराणकी टीकामें लिखा है "सयंभू पद्धडी बद्धकर्त्ता आपली सघीयः"—अत प्रेमीजी और डॉ० भायाणी उन्हे यापनीय सघका मानते है (जैन साहित्य और इतिहास पृ० २८५)। प्राकृत

पउमचरिउ

'पउमचरिउ' के लेखक विमलसूरि यापनीय सघके थे। स्वयम्भूने भी 'पउमचरिउ' में उनसे ही रामकथाकी धारा ग्रहण की है। इस सम्बन्धमें डॉ० भायाणीके ये तर्क विशेप रूपसे विचारणीय हैं, फिर भी कविको यापनीय सिद्ध करनेमें सफल नहीं होते।

इनकी अभी तक कुल तीन रचनाएँ मिली हैं। 'पउमचरिउ' 'रिट्ठनेमि चरिउ' और 'स्वयभू छन्द'। पहलीमें रामकथा है, दूसरीमें कृष्णकथा। तीसरीमें प्राकृत और अपभ्रश छन्दोंका विचार है। उनकी तीन कृतियाँ और भी मानी जाती है 'सुद्धय चरिउ, 'पचमी चरिउ' और 'स्वयम्भू व्याकरण'। परन्तु अभी ये प्राप्त नही हुईं, अतः इन्हें सन्दिग्ध ही समझना चाहिए। कविकी उपलब्ध कृतियोंके विषयमें सबसे बडी उलझन यह है कि वे अधूरी थीं या पूरी। 'रिट्ठनेमि चरिउ' की १०० वीं सन्धिके प्रारम्भमें यह उल्लेख है।

'काऊण पोम चरिय सुद्धय चरियं च' गुणग्घवियं हरिवस मोह हरणे सरस्सई सुढिय देह व्व।' इसका अर्थ है कि 'पउम चरिउ और सुद्धय चरित लिखकर अब मैं हरिवशकी रचनामें प्रवृत्त होता हूँ, सरस्वती मुझे स्थिरता देवें'' प्रेमीजी इसे त्रिभुवनका लिखा मानकर यह समझते हैं कि स्वयम्भूने मूल रूपमें सभी ग्रन्थ पूरे लिखे थे पर बादमें त्रिभुवनने अपनी रुचिके अनुसार उसमें कुछ अश और जोडा। उक्त पदसे त्रिभुवनका यही अभिप्राय है कि मैं 'पउम चरिउ' को (शेप भाग) पूरा करके अब 'हरिवश' में हाथ लगाता हूँ। प्रेमीजीने 'सुद्धय' की जगह 'सुव्वय' पाठ मानकर उसका अर्थ मुनिसुव्रतचरित किया है। यह बीसवें जैन तीर्थङ्कर हैं, राम और लक्ष्मण इन्हींके तीर्थकालमें हुए थे। प्रेमीजीके मतमें सबसे बडी असगति यही है कि पाठ बदलनेका कोई हेतु उन्होंने नहीं दिया, दूसरे 'सुव्वय चरित—पउम चरिउ' का वाचक नहीं हो सकता क्योंकि उसमें मुनिसुव्रत की कथा नही है। फिर पद में

'च' शब्द 'पउम चरिउ' और 'शुद्धय चरिउ'की भिन्नताको साफ बता रहा है। हो सकता है कि 'पचमी चरिउ'की तरह 'सुद्धय चरिउ' स्वयम्भूकी रचना रही हो। डॉ० भायाणी 'सुद्धय चरिउ'को अलग कृति मानते हैं, यह ठीक भी है। पर उनका कहना है कि कविने तीनों ग्रन्थ अधूरे छोडे, जिन्हें बादमें त्रिभुवनने पूरा किया। इसके तीन कारण हैं :—
"(१) प० च० और रि० ने० च० का भिन्न-भिन्न आश्रयमें लिखा जाना। (२) प० च० के लेखनमें अधिक अन्तराल पडना। (३) २३ और ४३ में सन्धियोंके प्रारम्भमें कविने नये सिरेसे मगलाचरण किये हैं ये लम्बे विराम के द्योतक हैं, इससे यही सम्भावना अधिक है कि कविने पहली कृति अधूरी होते हुए भी दूसरी रचना शुरू कर दी होगी।" अत. डॉ० भायाणीके अनुसार तीनों ग्रन्थ अधूरे थे। डॉ० हीरालाल जैनका अभिमत है कि 'पउमचरिउ' पूरा था पर 'रि० ने० च०' सम्भवतः कविके आकस्मिक निधनसे अधूरा रह गया, उसे पुत्र त्रिभुवनने पूरा किया। इस तरह डॉ० जैनका मत उक्त दो मतोंके बीचका है। इस विवादसे एक बात सर्वसम्मत है कि कविकी रचनाओंमें कुछ अश प्रक्षिप्त या परिवर्धित है। अब देखना यह है कि कविकी पूर्ण रचनाओंमें अश बढाये गये या अपूर्ण रचनाओंमें। इस सम्बन्धमें प्रेमी जीका मत ठीक है। इसी तरह डॉ० भायाणीके कतिपय तर्क ठीक हैं, फिर भी सभी कृतियाँ अधूरी नही मानी जा सकतीं। एक तो डॉ० भायाणीने 'उव्वरिअ' शब्दका सन्तोप जनक अर्थ नही किया दूसरे 'पउमचरिउ'की २३ और ४३ की सन्धियोंके मगलाचरण लम्बे विरामके नहीं, अपितु कथाके नये मोडके द्योतक है। ये मोड हैं रामका वनवास और राम-रावण युद्धकी भूमिका। यह बात जमती नही कि कोई कवि सभी रचनाएँ अधूरी छोड जायगा। यह तथ्य डॉ० भायाणी भी स्वीकार करते हैं कि स्वयम्भूने साम्प्रदायिक या अनावश्यक घटनाओंको छोडनेमें सकोच नही किया। यह स्पष्ट है

कि कवि काव्यमें पुराणको ढालना चाहते थे, न कि पुराणमें काव्यको। उनकी साहित्यिक दृष्टिसे 'पउमचरिउ' के अन्तिम दो अधिकार अनुपयुक्त रहे होंगे। यदि किसी अप्रत्याशित घटनासे कविकी मृत्यु हुई होती, तो पिताके अधूरे ग्रन्थको पूरा करते समय त्रिभुवन अवश्य इसका उल्लेख करता। यह भी ध्यानमें रखने योग्य है कि अपभ्रंश चरित-काव्य पढे भी जाते थे। हमारी धारणा यह है कि किसी स्वाध्याय-प्रेमी श्रावकके अनुरोधसे कुछ और अश जोडकर त्रिभुवनने पिताकी कृतियोंको अधिक पूर्ण वनाना चाहा होगा। इसके दो कारण हो सकते हैं, (१) पौराणिकता का अनुरोध (२) उक्त चरितोंकी छूटी हुई घटनाओंका जैन दृष्टिसे परिचय कराना। उक्त विवादग्रस्त पदसे भी यही ध्वनित होता है कि "मैं (त्रिभुवन) पउमचरिउ और सुद्धय चरिउ (शेपभागों) को पूरा कर चुका। अव हरिवंशके वारेमें (लोगोंका मोह दूर करनेके लिए) उसमें हाथ लगाता हूँ। यह काम भ्रांतिजनक है। सरस्वती स्थिरता दें"। सुद्धय चरिउ यदि स्वयम्भूकी रचना हो तो त्रिभुवनने उसमें अवश्य कुछ जोडा होगा, भारतीय साहित्यके इतिहासमें यह असम्भव भी नहीं।

कवि अपनी काव्य-रचनाका ध्येय आत्माभिव्यक्ति मानता है, रामायण काव्यके द्वारा वह अपने आपको व्यक्त कर रहा है 'पुणु अप्पाणउ पाय उमि रामायण कावें' अर्थात् काव्य उसके लिए आत्माभिव्यक्तिका साधन है। उसका लौकिक लक्ष्य है यशकी प्राप्ति। क्योंकि वह कहता है : 'मैं इस निर्मल और पुण्य पवित्र काव्य कीर्तनको प्रारंभ करता हूँ, क्योंकि इससे लोकमें स्थिर कीर्ति फैलती है।'

(देखो 'पउम चरिउ' १।४)

उनकी राम कथा रूपी नदीमें देशीका वहता पानी होते हुए भी संस्कृत और प्राकृतके वन्धका अनुवन्ध भी है। कवि स्वयम्भूकी आत्म-

विनयसे स्पष्ट है कि वे अपने युगकी प्रायः सभी काव्य-परम्पराओंसे परिचित थे।

स्वयम्भूके वैयक्तिक जीवनका विवरण बिल्कुल ही उपलब्ध नहीं है, फिर भी कुछ उक्तियोंसे उनके साहित्यिक व्यक्तित्वकी झलक मिल ही जाती है। वह अपने बारेमें 'पउमचरिउ'की भूमिकामें यह कहते हैं, 'मेरा शरीर दुबला पतला और लम्बा है। नाक चिपटी और दाँत विरल हैं।' वे शारीरिक सौन्दर्यकी जगह आत्मसौन्दर्यके प्रशंसक थे। कविकी व्यवहार और नीति-सम्बन्धी उक्तियोंसे यह स्पष्ट है कि वह भावुक होते हुए भी उदार और विचारशील थे। जैसी उनकी ऊँची प्रतिभा थी वैसा ही गहरा उनका अध्ययन भी था। भारतीय साहित्यमें उनका मूल्याकन और सम्मान करनेके लिए इतना ही कह देना पर्याप्त है कि वह प्रथम उदार और लोकभाषाके कवि हैं। यद्यपि उनके कोई ४–५ सौ वर्ष पहले विमलसूरि प्राकृतमें रामचरितका गान कर चुके थे, पर स्वयम्भूमें उदारता और साहित्यिकता अधिक है। तुलसी रामकथाके समर्थ भाषाकवि हुए। यद्यपि इन दोनो कवियोंकी विषय-वस्तु भाषा और दार्शनिक मान्यतामें बहुत अन्तर है, फिर भी कई बातोंमें वे समान भी हैं। दोनों अपने युगकी भाषाओंमें लिखते हैं, पौराणिकता दोनोंमें है। अपनी-अपनी विशेष दार्शनिक परिधिमें दोनों की दृष्टि उदार है। एकमें राम जिन-भक्त हैं, दूसरेमें शिवभक्त। एक उन्हें मोक्षगामी मानता है, दूसरा विशिष्टाद्वैतका प्रतीक। एकमें राम साधारण मानवतासे पूर्ण विकासकी ओर बढ़ते हैं दूसरेमें परमात्मा राम मनुष्यका अवतार ग्रहण करते हैं। स्वयम्भूने जिन और शिवकी अभिन्नता दिखायी है और तुलसी राम और शिवकी अभिन्नता दिखाते हैं।

कवि स्वयम्भू एक ओर काव्य और आगममें पारगत थे तो दूसरी ओर लोकका अनुभव भी उन्हें था। अतः उनमें प्रौढ़ता, भक्तिकी तन्म-

यता और सरसता तीनों हैं। प्रबन्ध कौशल और प्रकृति चित्रणमें वह सिद्धहस्त है। उनकी उक्तियाँ रसभरी है और सवाद व्यंग्यपूर्ण। उनकी कथा अलंकारोंके बीच चलती हैं।

कवि स्वयम्भू भारतके उन भाग्यशाली साहित्यिकोंमेंसे है, जिन्हे अपने जीवनकालमें ही प्रसिद्धि मिल गयी थी। परवर्ती अपभ्रंश कवियोने उनका सम्मानपूर्वक उल्लेख किया है।

विषय-सूची

तीसरी सन्धि

चौथी सन्धि

पाँचवीं सन्धि

छठी सन्धि

सातवीं सन्धि

आठवीं सन्धि

नवमी सन्धि

दसवीं सन्धि

ग्यारहवीं सन्धि

बारहवीं सन्धि

तेरहवीं सन्धि

चौदहवीं सन्धि

पन्द्रहवीं सन्धि

सोलहवीं सन्धि

सत्रहवीं सन्धि

अठारहवीं सन्धि

उन्नीसवीं सन्धि

बीसवीं सन्धि

[१]

पउमचरिउ

कइराय-सयम्भूएव-किउ

पउमचरिउ

णमह णव-कमल-कोमल-मणहर-वर-वहल-कन्ति-सोहिल्लं ।

उसहस्स पाय-कमलं स-सुरासुर-वन्दियं सिरसा ॥ १ ॥

दीहर-समास-णालं सद्द-दलं अत्थ-केसरुग्घवियं ।

बुह-महुयर-पीय-रसं सयम्भु-कव्वुप्पलं जयउ ॥ २ ॥

पहिलउ जयकारें वि परम-मुणि । मुणि-वयणें जाहँ सिद्धन्त-झुणि ॥ १ ॥
झुणि जाहँ अणिट्ठिय रत्तिदिणु । जिणु हियएँ ण फिट्टइ एक्कु खणु ॥ २ ॥
खणु खणु वि जाहँ ण विचलइ मणु । मणु मग्गइ जाहँ मोक्ख-गमणु ॥ ३ ॥

गमणु वि जहिँ णउ जम्मणु मरणु ॥ ४ ॥

मरणु वि कह होइ मुणीवरहँ । मुणिवर जे लग्गा जिणवरहँ ॥ ५ ॥
जिणवर जें लीय माण परहों । परु केव ढुक्कु जें परियणहों ॥ ६ ॥
परियणु मणें मण्णिउ जेहिं तिणु । तिण-समउ णाहिं लहु णरय-रिणु ॥ ७ ॥
रिणु केम होइ भव-भय-रहियं । भव-रहिय धम्म-संजम-सहिय ॥ ८ ॥

घत्ता

जे काय-वाय-मणें णिच्छिरिय जे काम-कोह-दुण्णय-तरिय ।
ते एक्क-मणेण स य भु एँ ण वन्दिय गुरु परमायरिय ॥ ९ ॥

पद्मचरित

मै नवकमल की तरह कोमल, सुन्दर और उत्तम घनकान्ति से शोभित, तथा देवों और असुरोके द्वारा वन्दित, श्रीऋषभ जिनके चरण-कमलोको सिरसे नमन करता हूँ ॥ १ ॥

मुझ स्वयंभू कविका यह काव्यरूपी कमल जयशील हो, लम्बे समास इसके मृणाल हैं, शब्द पत्ते हैं। अर्थरूपी पराग से यह सुवासित है और विद्वान् रूपी भ्रमर इसका रस-पान करते हैं ॥ २ ॥

सबसे पहले मैं उन परम मुनिकी जय करता हूँ जिनके मुखमे सिद्धान्त-ध्वनि रहती है और ध्वनि भी रात-दिन अविनश्वर रहती है, जिनके हृदयसे जिनेन्द्र एक भी क्षणके लिए दूर नहीं होते, क्षण क्षण जिनका मन विचलित नही होता और जो मोक्ष-गमनकी याचना करता रहता है। 'जहाँ जाने पर जन्म और मरण नही होता, और फिर उन मुनिवरोका मरण कैसे हो सकता है जो जिनवरमे अनुरक्त है। जिनवर भी वही है जिन्होने दूसरोका मान दूर कर दिया है, फिर वे दूसरोका धन कैसे चाह सकते हैं, वे तो दूसरोके धनको तिनकेके समान समझते हैं। उनके पास नरकका थोड़ा भी ऋण नहीं है, वे भव-भयसे मुक्त हैं, इसलिए ऋण हो भी नहीं सकता। वे ससारसे रहित, तथा धर्म और संयमसे परिपूर्ण हैं ॥ १-८ ॥

स्वयंभू कवि, एक मन होकर उन गुरुस्वरूप उत्कृष्ट आचार्योंकी वन्दना करता है जो काय, वचन और मनसे शुद्ध हैं और जो काम क्रोध और दुर्नयोसे तर चुके हैं ॥ ९ ॥

पढमो संधि

तिहुअणलग्गण-खम्भु गुरु परमेट्ठि णवेप्पिणु ।
पुणु आरम्भिय रामकह आरिसु जोएप्पिणु ॥ १ ॥

[१]

पणवेप्पिणु आइ-भडाराहों । ससार-समुद्दुत्ताराहों ॥ १ ॥
पणवेप्पिणु अजिय-जिणेसरहों । दुज्जय-कन्दप्प-दप्प-हरहों ॥ २ ॥
पणवेप्पिणु सभवसामियहों । तइलोक्क-सिहर-पुर-गामियहों ॥ ३ ॥
पणवेप्पिणु अहिणन्दण-जिणहों । कम्मट्ठ-दुट्ठ-रिउ-णिज्जिणहों ॥ ४ ॥
पणवेवि सुमइ-तित्थङ्करहों । वय-पञ्च-महादुद्धर-धरहों ॥ ५ ॥
पणवेप्पिणु पउमप्पह-जिणहों । सोहिय-भव-लक्ख-दुक्ख-रिणहों ॥ ६ ॥
पणवेप्पिणु सुरवर-साराहों । जिणवरहों सुपास-भडाराहों ॥ ७ ॥
पणवेप्पिणु चन्दप्पह-गुरुहों । भवियायण-सउण-कप्पतरुहों ॥ ८ ॥
पणवेप्पिणु पुप्फयन्त-मुणिहें । सुरभवणुच्छलिय-दिव्व-झुणिहें ॥ ९ ॥
पणवेप्पिणु सीयल-पुङ्गमहों । कल्लाण-झाण-णाणुग्गमहों ॥ १० ॥
पणवेप्पिणु सेयसाहिवहों । अच्चन्त-महन्त-पत्त-सिवहों ॥ ११ ॥
पणवेप्पिणु वासुपुज्ज-मुणिहें । विप्फुरिय-णाणचूडामणिहें ॥ १२ ॥
पणवेप्पिणु विमल-महारिसिहें । सदरिसिय-परमागम-दिसिहें ॥ १३ ॥
पणवेप्पिणु मङ्गलगाराहों । साणन्तहों धम्म-भडाराहों ॥ १४ ॥
पणवेप्पिणु सन्ति-कुन्थु-अरहँ । तिण्णि मि तिहुअण-परमेसरहँ ॥ १५ ॥
पणवेवि मल्लि-तित्थङ्करहों । तइलोक्क-महारिसि-कुलहरहों ॥ १६ ॥
पणवेप्पिणु मुणिसुव्वय-जिणहों । देवासुर-दिण्ण-पयाहिणहों ॥ १७ ॥

पहिली सन्धि

तीनो लोकोमे लगे स्तम्भस्वरूप गुरु परमेष्ठीको नमस्कार कर मै (स्वयंभू कवि) आर्प ग्रन्थको देखकर रामकथा आरम्भ करता हूँ ॥ १ ॥

[१] सबसे पहले संसार-समुद्रसे पार करनेवाले आदि भट्टारक ऋपभ जिनको प्रणाम करता हूँ। दुर्जेय कामके दर्पको हरने-वाले श्रीअजित जिनेश्वरको मैं प्रणाम करता हूँ। त्रिलोकोके शिखर स्वरूप शिवपुर जानेवाले सम्भव स्वामीको मै प्रणाम करता हूँ। आठ कर्मरूपी दुष्ट शत्रुओंके विजेता श्रीअभिनन्दन जिनको मैं प्रणाम करता हूँ। महादुर्धर पॉच महाव्रतोको धारण करनेवाले सुमति तीर्थङ्करको मैं प्रणाम करता हूँ। संसारके लाखो दु:खरूपी ऋणका शोधन करनेवाले पद्मप्रभ जिनको मैं नमस्कार करता हूँ। उत्कृष्ट देवोमे भी श्रेष्ठ जिनवर सुपार्श्व भट्टारकको प्रणाम करता हूँ। भव्यजनरूपी पक्षियोंके लिए कल्पतरुके समान श्रीचन्द्रप्रभ गुरुको मैं प्रणाम करता हूँ। अपनी दिव्य ध्वनिसे स्वर्गको भी उच्छलित करनेवाले पुष्पदन्त मुनिको मै प्रणाम करता हूँ। मै महान् शीतलनाथको प्रणाम करता हूँ जो कल्याण ध्यान और ज्ञानके उद्गम स्थान हैं। अत्यन्त महान् शिव (धाम) पानेवाले श्रेयासनाथ और प्रकाशमान ज्ञानरूपी चूडामणिसे युक्त वासुपूज्यको प्रणाम करता हूँ। मैं विमल महा-ऋपिको प्रणाम करता हूँ, क्योंकि वे परमागमका मार्ग प्रदर्शित करनेवाले है। जो मंगलके घर हैं ऐसे उन अनन्तनाथ और धर्मनाथ भट्टारकको मेरा प्रणाम है, तीनो लोकोके परमेश्वर शान्ति, कुंथु और अरनाथको प्रणाम करता हूँ। मैं तीन लोकके महाऋपि और कुलधर मल्लिनाथ तीर्थङ्करको प्रणाम करता हूँ। सुर और असुर जिनकी प्रदक्षिणा करते हैं ऐसे उन

पणवेप्पिणु णमि-णेमीसरहँ । पुणु पास-वीर-तित्थङ्करहँ ॥ १८ ॥

घत्ता

इय चउवीस वि परम-जिण पणवेप्पिणु भावें ।

पुणु अप्पाणउ पायडमि रामायण-कावें ॥ १६ ॥

[२]

वद्धमाण-मुह-कुहर-विणिग्गय । रामकहा-णइ एह कमागय ॥ १ ॥

अक्खर-वास-जलोह-मणोहर । सु-अलङ्कार-छन्द-मच्छोहर ॥ २ ॥

दीह-समास-पवाहावङ्किय । सक्कय-पायय-पुलिणालङ्किय ॥ ३ ॥

देसीभासा-उभय-तडुज्जल । क वि दुक्कर-घण-सद्द-सिलायल ॥ ४ ॥

अत्थ-वहल-कल्लोलाणिट्ठिय । आसासय-समतूह-परिट्ठिय ॥ ५ ॥

एह रामकह-सरि सोहन्ती । गणहर-देवहिं दिट्ठ वहन्ती ॥ ६ ॥

पच्छइ इन्दभूइ-आयरिएं । पुणु धम्मेण गुणालङ्करिएं ॥ ७ ॥

पुणु पहवें ससाराराए । कित्तिहरेण अणुत्तरवाए ॥ ८ ॥

पुणु रविसेणायरिय-पसाएं । वुद्धिएँ अवगाहिय कइराएं ॥ ६ ।

पउमिणि-जणणि-गब्भ-संभूएं । मारुयएव-रूव-अणुराएं ॥ १० ॥

अइ-तणुएण पईहर-गत्तें । छिव्वर-णासें पविरल-दन्तें ॥ ११ ॥

घत्ता

णिम्मल-पुण्ण-पवित्त-कह- कित्तणु आढप्पइ ।

जेण समाणिज्जन्तएँण थिर कित्ति विढप्पइ ॥ १२ ॥

[३]

वुहयण सयम्भु पइँ विण्णवइ । मइँ सरिसउ अण्णु णाहिं कुकइ ॥ १ ॥

वायरणु कयावि ण जाणियउ । णउ वित्ति-सुत्तु वक्खाणियउ ॥ २ ॥

मुनिसुव्रत जिनको मैं प्रणाम करता हूँ। नमि, नेमीश्वर, पार्श्वनाथ और महावीर तीर्थंकरको भी मै प्रणाम करता हूँ॥ १-१८॥

इसप्रकार इन चौबीस परम जिनोंकी भावसहित वन्दना कर मैं इस रामायण काव्यके माध्यमसे अपने आपको प्रकट करता हूँ।१९।

[२] यह रामकथारूपी नदी भगवान् महावीरके मुखपर्वत से निकल कर, क्रम से बहती हुई चली आ रही है। यह अक्षर-विन्यासके जल-समूहसे मनोहर, सुन्दर अलंकार तथा छंदरूपी मत्स्योंसे परिपूर्ण और लम्बे समासरूपी प्रवाहसे अङ्कित है। यह संस्कृत और प्राकृतरूपी पुलिनोंसे अलंकृत देशी भाषा रूपी दो कूलोंसे उज्ज्वल है। इसमे कही कठिन घन शब्द-रूपी शिलातल हैं, कही यह अनेक अर्थरूपी तरंगोंसे अस्त-व्यस्त-सी हो गई है और कहीं यह सैकड़ो आश्वासरूपी तीर्थोंसे प्रतिष्ठित है॥ १-५॥

सबसे पहले, इस प्रकार सुशोभित और बहती हुई इस राम-कथारूपी नदीको गणधर देवोंने देखो। उनके बाद आचार्य गौतम ने, फिर गुणालंकृत धर्माचार्य ने, फिर संसारसे अत्यंत भीत अनुत्तरवादी भट्टारक कीतिधरने देखी। तदनन्तर आचार्य रविसेनके प्रसादसे कविराज (स्वयंभू) ने अपनी बुद्धिसे इसका अवगाहन किया। कवि मरुदेवीके रूपके तुल्य पद्मिनी माताके गर्भ से उत्पन्न हुआ। उसका शरीर अत्यन्त कृश और लम्बा था तथा नाक चिपटी और दॉत विरल थे॥ ६-११॥

निर्मल पुण्यसे पवित्र हुई उस कथाका कीर्तन शुरू कर रहा हूँ, जिसको भली-भॉति जाननेसे स्थायी कीर्ति बढ़ती है॥ १२॥

[३] पंडित-जनोंसे स्वयंभूका केवल यह निवेदन है कि मेरे बराबर दूसरा कोई कुकवि नहीं है। मैं कोई भी व्याकरण नही जानता। वृत्ति और सूत्रोंकी व्याख्या भी मैंने नही की

णउ पच्चाहारहों तत्ति किय । णउ संधिहें उप्परि बुद्धि थिय ॥ ३ ॥
णउ णिसुअउ सत्त विहत्तियउ । छव्विहउ समास-पउत्तियउ ॥ ४ ॥
छक्कारय दस लयार ण सुय । वीसोवसग्ग पच्चय बहुय ॥ ५ ॥
ण बलाबल धाउ णिवाय-गणु । णउ लिङ्गु उणाइ वक्कु वयणु ॥ ६ ॥
णउ णिसुणिउ पञ्च-महाय-कव्वु । णउ भरहु गेउ लक्खणु वि सव्वु ॥
णउ बुज्झिउ पिङ्गल-पत्थारु । णउ भम्मह-दण्डि-अलङ्कारु ॥ ८ ॥
ववसाउ तो वि णउ परिहरमि । वरि रड्डावद्धु कव्वु करमि ॥ ९ ॥
सामण्ण भास छुडु सावडउ । छुडु आगम-जुत्ति का वि घडउ ॥ १० ॥
छुडु होन्तु सुहासिय-वयणाइँ । गामिल्ल-भास-परिहरणाइँ ॥ ११ ॥
एँहु सज्जण-लोयहों किउ विणउ । जं अवुहु पदरिसिउ अप्पणउ ॥ १२ ॥
जइ एम विरूसइ को वि खलु । तहों हत्थुत्थल्लिउ लेउ छलु ॥ १३ ॥

घत्ता

पिसुणें किं अब्भत्थिएँ ण जसु को वि ण रुच्चइ ।
किं छण-चन्दु महागहेँण कम्पन्तु वि मुच्चइ ॥ १४ ॥

[४]

अवहत्थेँवि खलयणु णिरवसेसु । पहिलउ णिरु वण्णमि मगहदेसु ॥ १ ॥
जहिं पक्क-कलमें कमलिणि णिसण्ण । अलहन्त तरणि थेर व विसण्ण ॥ २ ॥
जहिं सुय-पन्तिउ सुपरिट्ठियाउ । णं वणसिरि-मरगय-कण्ठियाउ ॥ ३ ॥
जहिं उच्छु-वणइँ पवणाहयाइँ । कम्पन्ति व पीलण-भय-गयाइँ ॥ ४ ॥

और न ही मैंने प्रत्याहारोका विचार किया है। संधियो के ऊपर भी मेरी बुद्धि कभी स्थिर नहीं रह सकी। न तो मैंने सात प्रकार की विभक्तियाँ सुनीं और न छह प्रकार की समास-प्रक्रिया। मैंने छह कारक, दस लकार, बीस उपसर्ग और बहुतसे प्रत्ययोको भी नहीं सुना। धातुओंका वलावल, निपात, गण, लिंग, उणादि, चक्रोक्तियाँ और एकवचन, द्विवचन तथा वहुवचन मैंने नहीं सुने। पाँच महाकाव्य और भरत के सभी नाट्य-लक्षण भी मैं नहीं सुन सका। न तो मैंने पिंगलशास्त्रके प्रस्तार को समझा और न भामह और दडीके अलकारोको ही समझा। फिर भी मैं इस (काव्य) व्यवसाय को नहीं छोड़ पा रहा हूँ, प्रत्युत रड्डा छदोवद्ध काव्यको निवद्ध कर रहा हूँ ॥ १-९ ॥

मैं सामान्य भापामें यत्नपूर्वक कुछ आगम-युक्ति गढ़ रहा हूँ और चाहता हूँ कि ग्रामीण-भापासे हीन, मेरे ये वचन सुभापित हो। सज्जन लोगोसे मैंने यह विनय की है। वैसे मैं अपना अज्ञान प्रकट कर ही चुका हूँ। फिर भी यदि कोई खल-जन (मेरे काव्य) से रुष्ट हो तो मैं उसकी उस प्रवचनाको भी हाथ जोड़कर स्वीकार करता हूँ ॥ १०-१३ ॥

वस्तुतः उस खलकी अभ्यर्थना करनेसे क्या लाभ है जिसे कुछ भी अच्छा नहीं लगता। क्या राहु काँपते हुए पूर्णिमाके चन्द्रमाको छोड़ देता है ॥ १४ ॥

[४] मैं समस्त खल-जनोंकी उपेक्षा कर सबसे पहले उस मगध देशका वर्णन करता हूँ जहाँ पके हुए धान्यो पर बैठी हुई लक्ष्मी (शोभा) तारुण्य न पानेवाली खिन्न वृद्धाके समान दिखाई देती थी। जहाँ बैठी हुई तोतोंकी कतार ऐसी मालूम होती थी मानो वन-लक्ष्मीके गलेमें मरकतमणिका हार पड़ा हो। जहाँ पवनसे हिलते-डुलते ईखके खेत, पीडनके भयसे काँपते

जहिं णन्दणवणइँ मणोहराइँ । णच्चन्ति व चल-पल्लव-कराइँ ॥ ५ ॥
जहिं फाडिम-वयणइँ दाडिमाइँ । णज्जन्ति ताइँ ण कइ-मुहाइँ ॥ ६ ॥
जहिं महुयर-पन्तिउ सुन्दराउ । केयइ-केसर-रय-धूसराउ ॥ ७ ॥
जहिं दक्खा-मण्डव परियलन्ति । पुणु पन्थिय रस-सलिलइँ पियन्ति ॥८॥

घत्ता

तहिं तं पट्टणु रायगिहु धण-कणय-समिद्धउ ।
णं पिहिविएँ णव-जोव्वणएँ सिरेँ सेहरु आइद्धउ॥ ९ ॥

[५]

चउ-गोउर-चउ-पायारवन्तु । हसइ व मुत्ताहल-धवल-दन्तु ॥ १ ॥
णच्चइ व मरुद्धुय-धय-करग्गु । धरइ व णिवडन्तउ गयण-मग्गु ॥ २ ॥
सूलग्ग-भिण्ण-देवउल-सिहरु । कणइ व पारावय-सद्द-गहिरु ॥ ३ ॥
घुम्मइ व गएँहिं मय-भिम्भलेहिं । उड्डइ व तुरङ्गहिं चञ्चलेहिं ॥ ४ ॥
ण्हाइ व ससिकन्त-जलोहरेहिं । पणवइ व हार-मेहल-भरेहिं ॥ ५ ॥
पक्खलइ व णेउर-णियलएहि । विप्फुरइ व कुण्डल-जुयलएहिं ॥ ६ ॥
किलिकिलइ व सव्वजणुच्छवेण । गज्जइ व मुरव-भेरी-रवेण ॥ ७ ॥
गायइ वालाविणि-मुच्छणेहिं । पुरवइ व धण्ण-धण-कञ्चणेहिं ॥ ८ ॥

घत्ता

णिवडिय-पण्णेंहि फोप्फलेंहिं छुह-चुण्णासङ्गें ।
जण-चलणग्ग-विमद्दिऍण महि रञ्जिय रङ्गें ॥ ९ ॥

[६]

तहिं सेणिउ णामें णय-णिवासु । उवमिज्जइ णरवइ कवणु तासु ॥ १ ॥
किं तिणयणु णं ण विसम-चक्खु । किं ससहरु णं णं एक्क-पक्खु ॥ २ ॥

हुए से जान पड़ते थे। जहाँ सुंदर नंदन वन अपने चचल पत्तो रूपी हाथोसे नाचते हुएसे लगते थे। खुले हुए अनारोके मुख कपि के मुखकी तरह जान पड़ते थे। जहाँ सुन्दर भौरोकी पंक्तियाँ केतकीके रजकणोसे धूसरित हो रही थीं। जहाँ हिलते-डुलते दाखोंके लतागृह पथिकोंको रसरूपी जल पिला रहे थे ॥ १–८ ॥

उस मगध देशमे धन-धान्य और सुवर्णसे समृद्ध राजगृह नामका नगर था। जो धरतीरूपी नवयुवतीके सिर पर बँधे हुए मुकुटके समान सुशोभित होता था ॥ ९ ॥

[५] उसमे चार गोपुर और चारो ओर परकोटा था जिससे वह मोतियोंके समान धवल दाँतोंसे हँसता-सा, हवासे उडती हुई पताकारूपी कराग्रसे नाचता-सा, गिरते हुए आकाश-मार्गको धारण करता-सा, शूलाग्रभिन्न देवकुलोंके शिखरो पर कबूतरोंकी गंभीर कलध्वनि को करता सा, मद-विह्वल हाथियोंसे घूमता सा, चंचल अश्वोसे उड़ता सा, चन्द्रकांतमणियोके जलउपगृहोमे नहाता सा, हार मेखलाओंके भारसे झुकता सा, नूपुरोकी शृंखलासे गिरता सा, कुंडलोके जोड़ोसे चमकता सा, सार्वजनिक-उत्सवो से किल-कारियाँ भरता सा, मृदंग और भेरीके शब्दोसे गरजता सा, वीणा विशेषकी मूर्छनासे गाता सा तथा धन धान्य और सोने से भरपूर किसी नगर सेठ की तरह जान पड़ता था ॥ १–८ ॥

वहाँकी धरती गिरे हुए पत्तो, सुगन्धित द्रव्य विशेष, सुधाचूर्णके आसंग और लोगोंके पैरोंकी अंगुलियोंसे रोंधे गये रंगोंसे रंगी हुई थी ॥ ९ ॥

[६] उस नगरमे नीति-निपुण श्रेणिक नामका राजा था। उसकी उपमा किससे दी जाय? क्या त्रिनेत्र शिवसे? नही नहीं, वह विषम आँखवाले हैं? क्या चंद्रमा से?

किं दिणयरु णं णं दहण-सीलु । किं हरि ण णं कम-भुअण-लीलु ॥ ३ ॥

किं कुञ्जरु ण ण णिच्च-मत्तु । किं गिरि ण ण ववसाय-चत्तु ॥ ४ ॥

किं सायरु णं ण खार-णीरु । कि वम्महु णं ण हय-सरीरु ॥ ५ ॥

किं फणिवइ णं णं कूर-भाउ । किं मारुउ णं णं चल-सहाउ ॥ ६ ॥

किं महुमहु ण ण कुडिल-वक्कु । किं सुरवइ णं णं सहस-अक्खु ॥ ७ ॥

अणुहरइ पुणु वि जइ सो जें तासु । वामद्धु व दाहिण-अद्धु जासु ॥ ८ ॥

घत्ता

ताव सुरासुर-वाहणेंहि गयणङ्गणु छाइउ ।

वीर-जिणिन्दहों समसरणु विउलइरि पराइउ ॥ ९ ॥

[७]

परमेसरु पच्छिम-जिणवरिन्दु । चलणग्गें चालिय-महिहरिन्दु ॥ १ ॥

णाणुज्जलु चउ-कल्लाण-पिण्डु । चउ-कम्म-डहणु कलि-काल-दण्डु ॥ २ ॥

चउतीसातिसय-विसुद्ध-गत्तु । भुवणत्तय-वल्लहु धवल-छत्तु ॥ ३ ॥

पण्णारह-कमलायत्त-पाउ । अल्ललल-फुल्ल-मण्डव-सहाउ ॥ ४ ॥

चउसट्ठि-चामरुद्धुव्वमाणु । चउ-सुरणिकाय-संथुव्वमाणु ॥ ५ ॥

थिउ विउल-महीहरें वद्धमाणु । समसरणु वि जसु जोयण-पमाणु ॥ ६ ॥

पायार तिण्णि चउ गोउराइँ । वारह गण वारह मन्दिराइँ ॥ ७ ॥

उब्भिय चउ माणव-थम्भ जाम । तुरमाणें केण वि णरेंण ताम ॥ ८ ॥

घत्ता

चलण णवेप्पिणु विण्णविउ सेणिउ महराओ ।

जं झायहि ज संभरहि सो जग-गुरु आओ ॥ ९ ॥

नहीं नहीं, वह एक ही पक्षवाला है। क्या दिनकरसे, नहीं नहीं, वह दहनशील है? क्या सिंहसे? नहीं नहीं, वह लीक तोड़कर चलता है। क्या हाथीसे? नहीं नहीं, वह हमेशा उन्मत्त रहता है। क्या पहाड़से, नहीं नहीं, वह व्यवसाय (गति या क्रिया) से रहित है। क्या समुद्रसे? नहीं नहीं, उसका पानी खारा है? क्या कामदेवसे, नही नही, वह शरीररहित है। क्या सर्पराजसे, नहीं नहीं, वह क्रूरस्वभाव है। क्या पवनसे, नही नहीं, वह चलस्वभाव है? क्या विष्णुसे, नहीं नही, वह कुटिल वक्र है। क्या इन्द्रसे, नही नहीं, वह हजार आँखोवाला है, केवल उसीसे उस राजाकी उपमा दी जा सकती है जिसका दाँया आधा भाग, बायें आधे-भाग के समान हो ॥ १-८ ॥

एक समय वीर जिनेन्द्र महावीरका समवशरण विपुलाचल पर जैसे ही पहुँचा वैसे ही आकाशरूपी आँगन सुर और असुरोंके वाहनोंसे भर गया ॥ ९ ॥

[७] अपने पैरकी अंगुलीसे सुमेरुपर्वतको भी चलित करनेवाले अन्तिम तीर्थंकर परमेश्वर महावीर विपुलाचलपर ठहर गये। वे ज्ञानसे उज्ज्वल, चार कल्याणों (गर्भ, जन्म, तप और केवलज्ञान) के निकेतन, चार कर्मोंको जलानेवाले, पापोंके लिए यमदंड, चौंतीस अतिशयोंसे विशुद्ध शरीर, तीन लोकके स्वामी, धवल-छत्रसे शोभित, पन्द्रह कमलोंपर पैर रखकर चलनेवाले, मयूर चन्द्रिकाके वितानकी तरह प्रभावाले थे। उन पर चौंसठ चमर डुलाये जा रहे थे। चारों निकायोंके देव उनकी स्तुति कर रहे थे। उनके समवशरणका विस्तार एक योजनका था। उसमें तीन परकोटे और चार मुख्य द्वार थे। बारह गणोंके बारह कोठे थे। जिस समय चार मानस्तम्भ बनकर तैयार हो रहे

[८]

जण-वयणाइँ कण्णुप्पलिकरेवि । सिंहासण-सिहरहों ओयरेवि ॥ १ ॥
गउ पयइँ सत्त रोमञ्चियङ्गु । पुणु महियलेँ णाविउ उत्तमङ्गु ॥ २ ॥
देवाविय लहु आणन्द-भेरि । थरहरिय वसुन्धरि जग-जणेरि ॥ ३ ॥
स-कलत्तु स-पुत्तु स-पिण्डवासु । स-परियणु स-साहणु सट्टहासु ॥ ४ ॥
गउ वन्दण-हत्तिएँ जिणवरासु । आसण्णीहूउ महीहरासु ॥ ५ ॥
समसरणु दिट्ठु हरिसिय-मणेण । परिवेढिउ वारह-विह-गणेण ॥ ६ ॥
पहिलएँ कोट्ठएँ रिसि-संघु दिट्ठु । वीयएँ कप्पङ्गण-जणु णिविट्ठु ॥ ७ ॥
तइयएँ अज्जिय-गणु साणुराउ । चउथएँ जोइस-वर-अच्छराउ ॥ ८ ॥
पञ्चमेँ विन्तरिउ सुहासिणीउ । छट्ठएँ पुणु भवण-णिवासिणीउ ॥ ९ ॥
सत्तमेँ भावण गिव्वाण साव । अट्ठमेँ विन्तर ससुद्ध-भाव ॥ १० ॥
णवमएँ जोइस णमिउत्तमङ्ग । दहमएँ कप्पामर पुलइयङ्ग ॥ ११ ॥
एयारहमए णरवर णिविट्ठ । वारहमए तिरिय णमन्त दिट्ठ ॥ १२ ॥

घत्ता

दिट्ठि भडारउ वीर-जिणु सिंहासण-संठिउ ।
तिहुवण-मत्थएँ सुह-णिलएँ णं मोक्खु परिट्ठिउ ॥ १३ ॥

[९]

सिर-सिहरेँ चडाविय-करयलग्गु । मगहाहिउ पुणु वन्दणहँ लग्गु ॥ १ ॥
'जय णाह सव्व-देवाहिदेव । किय-णाग-णरिन्द-सुरिन्द-सेव ॥ २ ॥
जय तिहुवण-सामिय तिविह-छत्त । अट्ठविह - परम-गुण- रिद्धि-पत्त ॥ ३ ॥

थे, उसी समय किसी मनुष्यने राजा श्रेणिकके पास जाकर माथा नवाते हुए निवेदन किया—तुम जिसका ध्यान और स्मरण किया करते हो वही जगद्गुरु आये हुए हैं ॥ १-९ ॥

[८] उस अनुचरके वचन सुनकर राजा सिंहासनके अग्रभागसे उतर पड़ा और पुलकित होकर सात पग धरती पर चलकर उसने अपना सिर झुका दिया, और साथ ही आनन्दकी भेरी बजवा दी। जगज्जननी वसुधरा (उसके शब्दसे) काँप उठी। स्त्री-पुत्र, नौकर-चाकर, परिजन और अपने साधनोंके साथ, वह, आनन्दसहित जिनवरकी वन्दनाके लिए गया। पर्वतके निकट पहुँचते ही प्रसन्नमन उसने बारह गणोंसे घिरा हुआ समवशरण देखा। पहले कोठेमे उसे ऋषि-संघ दिखाई दिया, दूसरेमें कल्पवासी देवियाँ, तीसरेमे अनुरागपूर्ण आर्यिकागण, चौथेमे ज्योतिषी देवोंकी देवियाँ, पाँचवेंमे व्यंतर देवोंकी देवांगनाएँ, छठेमे भवनवासिनी देवियाँ, सातवेंमे भवनवासी देव, आठवेंमें विशुद्ध भाववाले व्यन्तर देव, नवेंमे माथा झुकाये हुए ज्योतिषी देव, दसवेंमे पुलकित शरीर कल्पवासी देव, ग्यारहवेंमें श्रेष्ठ मनुष्य और बारहवेंमे नमन करते हुए तिर्यंच, बैठे थे ॥ १-१२ ॥

उसने सिंहासन पर आसीन, भट्टारक वीर जिनको ऐसे देखा मानो तीनों लोकोंके मस्तकपर सुख-निकेतन मोक्ष ही प्रतिष्ठित हो ॥ १३ ॥

[९] मगधराज श्रेणिक अपने माथेसे दोनो हाथ लगाकर, जिनकी इसप्रकार वन्दना करने लगा—"सब देवोंके अधिदेव हे नाथ, आपकी जय हो, नाग, नरेंद्र और सुरेन्द्र आपकी सेवा करते हैं, तीन लोकोंके स्वामी तीन छत्रोंसे शोभित और परम गुणस्वरूप आठ ऋद्धियोंको पानेवाले आपकी जय हो,

जय केवल-णाणुब्भिण्ण-देह । वम्मह-णिम्महण पणट्ठ-णेह ॥ ४ ॥
जय जाइ-जरा-मरणारि-छेय । वत्तीस-सुरिन्द-कियाहिसेय ॥ ५ ॥
जय परम परम्पर वीयराय । सुर-मउड-कोडि-मणि-घिट्ठ-पाय ॥ ६ ॥
जय सव्व-जीव-कारुण्ण-भाव । अक्खय अणन्त णहयल-सहाव' ॥ ७ ॥
पणवेप्पिणु जिणु तग्गय-मणेण । कुणु पुच्छिउ गोत्तमसामि तेण ॥ ८ ॥

घत्ता

'परमेसर पर-सासणेँहिँ सुव्वइ विवरेरी ।
कहेँ जिण-सासणेँ केम थिय कह राहव-केरी ॥ ९ ॥

[१०]

जगेँ लोएँहिँ ढक्करिवन्तएहिँ । उप्पाइउ भन्तिउ भन्तएहिँ ॥ १ ॥
जइ कुम्में धरियउ धरणि-वीढु । तो कुम्मु पडन्तउ केण गीढु ॥ २ ॥
जइ रामहोँ तिहुअणु उवरेँ माइ । तो रावणु कहिँ तिय लेवि जाइ ॥ ३ ॥
अण्णु वि खरदूसण-समरेँ देव । पहु जुज्झइ सुज्झइ भिच्चु केँव ॥ ४ ॥
किह तियमइ-कारणेँ कविवरेण । घाइज्जइ वालि सहोयरेण ॥ ५ ॥
किह वाणर गिरिवर उव्वहन्ति । वन्धेँवि मयरहरु समुत्तरन्ति ॥ ६ ॥
किह रावणु दह-मुहु वीस-हत्थु । अमराहिव-भुव-वन्धण-समत्थु ॥ ७ ॥
वरिसद्धु सुअइ किह कुम्भयण्णु । महिसा-कोडिहि मि ण धाइ अण्णु ॥ ८ ॥

घत्ता

जेँ परिसेसिउ दहवयणु पर-णारीहिँ समणु ।
सो मन्दोवरि जणणि-सम किह लेइ विहीसणु' ॥ ९ ॥

[११]

तं णिसुणेँवि वुच्चइ गणहरेण । सुणेँ सेणिय किं वहु-वित्थरेण ॥ १ ॥
पहिलउ आयासु अणन्तु साउ । णिरवेक्खु णिरञ्जणु पलय-भाउ ॥ २ ॥

काम और मोहका नाश करनेवाले, केवलज्ञानसे उद्भिन्न शरीर, आप की जय हो। जन्म जरा और मरण रूपी शत्रुओ का नाश करनेवाले तथा बत्तीस देवराजोसे अभिषिक्त आपकी जय हो। परम परात्पर वीतराग आपकी जय हो, आपके पैर, देवोकी कोटि-कोटि मुकुट-मणियोसे घिसे जाते हैं। अक्षय अनन्त, नभतल-स्वभाव वाले सब जीवोके प्रति करुणाभाव रखनेवाले आपकी जय हो, इस प्रकार एक निष्ठ भाव से जिन की वदना करके राजा श्रेणिकने गौतम गणधरसे पूछा—हे परमेश्वर दूसरो के शासन (सम्प्रदाय) मे रामकथा उल्टी सुनी जाती है, इसलिए कहिए जिनशासनमे राघवकी कथा कैसी है ? ॥ १–९ ॥

[१०] संसारमे हठवादी और संशयशील लोगोने तरह-तरहकी भ्रांतियाॅ उत्पन्न कर दी है। जैसे; वे कहते है कि धरती को कछुआ धारण करता है, पर गिरते हुए कछुएको कौन धारण करता है ? फिर, यदि रामके उदरमे तीनो लोक व्याप्त हैं तो रावण उनकी सीताको हरण करके कहाॅ ले गया ? यदि खरदूषणके युद्धमें प्रभु राम लड़े तो अनुचर कैसे शुद्ध हुए ? स्त्रीके लिए सुग्रीवने अपने भाईको कैसे मारा ? क्या बन्दर पहाड़ उठा सकते हैं, ओर क्या वे समुद्रको बाॅधकर पार जा सकते हैं, क्या रावणके दशमुख और बीस हाथ थे ? और क्या वह अमर लोकको बाॅधनेमे समर्थ था। कुभकर्ण छै माह कैसे सोता था, और क्या उसे करोड़ो भैसोका भी अन्न पूरा नहीं पड़ता था ? जिस विभीषणने परस्त्रीके अभिलाषी रावणको समाप्त कराया, उसने माॅ के समान मन्दोदरीको कैसे ग्रहण कर लिया ॥ १–९ ॥

[११] यह सुनकर, गौतम गणधर बोले—'हे श्रेणिक सुनो, अधिक विस्तारसे लाभ नहीं ? पहले सर्वव्यापी अनन्त आकाश

तइलोक्कु परिट्ठिउ मज्झें तासु । चउदह रज्जुय आयामु जासु ॥ ३ ॥
तेत्थु वि झल्लरि-मज्झाणुमाणु । थिउ तिरिय-लोउ रज्जुय-पमाणु ॥ ४ ॥
तहिँ जम्बूदीउ महा-पहाणु । वित्थरेँण लक्खु जोयण-पमाणु ॥ ५ ॥
चउ-खेत्त-चउद्दह-सरि - णिवासु । छव्विह-कुलपव्वय-तड - पयासु ॥ ६ ॥
तासु वि अब्भन्तरेँ कणय-सेलु । णवणवइ-उवरेँ सहसेक्क - मूलु ॥ ७ ॥
तहोँ दाहिण-भाएं भरहु थक्कु । छक्खण्डालङ्किउ एक्क-चक्कु ॥ ८ ॥

घत्ता

तहिँ ओसप्पिणि-कालेँ गएँ कप्पयरुच्छण्णा ।
चउदह-रयणविसेस जिह कुलयर - उप्पण्णा ॥ ९ ॥

[१२]

पहिलउ पहु पडिसुइ सुयवन्तउ । बीयउ सम्मइ सम्मइवन्तउ ॥ १ ॥
तइयउ खेमङ्करु खेमङ्करु । चउथउ खेमन्धरु रणेँ दुद्धरु ॥ २ ॥
पञ्चमु सीमङ्करु दीहर-करु । छट्ठउ सीमन्धरु धरणीधरु ॥ ३ ॥
सत्तमु चारु-चक्खु चक्खुब्भउ । तासु कालेँ उप्पज्जइ विब्भउ ॥ ४ ॥
सहसा चन्द-दिवायर-दसणेँ । सयलु वि जणु आसङ्किउ णिय-मणेँ ॥ ५ ॥
'अहोँ परमेसर कुलयर-सारा । कोउहल्लु महु एउ भडारा' ॥ ६ ॥
त णिसुणेवि णराहिउ घोसइ । कम्म-भूमि लइ एवहिँ होसइ ॥ ७ ॥
पुव्व-विदेहेँ तिलोयाणन्देँ । कहिउ आसि महु परम-जिणिन्देँ ॥ ८ ॥

घत्ता

णव-सञ्झारुण-पल्लवहोँ तारायण-पुप्फहोँ ।
आयइँ चन्द-सूर-फलइँ अवसप्पिणि-रुक्खहोँ ॥ ९ ॥

[१३]

पुणु जाउ जसुब्भउ अतुल-थामु । पुणु विमलवाहणुच्छलिय-णामु ॥ १ ॥
पुणु साहिचन्दु चन्दाहि जाउ । मरुएउ पसेणइ णाहिराउ ॥ २ ॥
तहोँ णाहिहेँ पच्छिम-कुलयरासु । मरुएवि सई व पुरन्दरासु ॥ ३ ॥

है, उसके बीचमें कर्तासे रहित निरञ्जन और परिवर्तनशील तीन लोक हैं। इनका विस्तार चौदह राजू है। उनमें भी, एक राजू-प्रमाण, झालरके मध्य भागके समान, तिर्यक् लोक है, उसमें एक लाख योजनका मुख्य जम्बूद्वीप है। जिसमें भरत ऐरावत और दो विदेह, कुल ये चार क्षेत्र, चौदह नदियाँ और छै कुल पर्वत हैं। उसके ठीक बीचों-बीच सोनेका सुमेरु पर्वत है। एक हजार योजन गहरा और निन्यानवे हजार योजन ऊँचा। उसके दाहिने भागमें छै खण्डका भरतक्षेत्र है, जिसमें एक ही चक्रवर्ती राजा है॥ १-८॥

इस भरतक्षेत्रमें अवसर्पिणी कालके प्रारम्भमें कल्पवृक्षके नष्ट होनेपर चोदह विशेष रत्नोंके समान चौदह कुलधर उत्पन्न हुए॥ ९॥

[१२] उनमें सबसे पहले श्रुतिवत प्रतिश्रुति थे, दूसरे सुमति सहित सन्मति, तीसरे कल्याणकारी क्षेमकर, चौथे रण में दुर्द्धर क्षेमंधर, पाँचवें महाबाहु सीमंकर, छठे धरणीधर सीमंधर, सातवें चारुनयन चक्षुष्मत्। इनके समय एक विस्मय की बात हुई। अचानक सूर्य और चन्द्रमाको देखकर सभी लोगोंके मनमें आशंका होने लगी। तब लोगोंने उनसे जाकर कहा "हे कुलधर-श्रेष्ठ, परमेश्वर! हमें बहुत बड़ा कुतूहल हो रहा है।" यह सुनकर, नराधिप चाक्षुष्मतने कहा "अबसे कर्मभूमि प्रारम्भ होगी, यह बात, पूर्व विदेहमें, तीनों लोकोंके आनन्ददायक परमजिनने मुझसे कही थी।" (साँझ का) वह नवीन सध्याराग (लाल) मानो अवसर्पिणी काल रूपी वृक्षके कोपल थे। तारा-समूह फूल और ये सूर्य-चाँद उसके फल थे।१-९

[१३] उसके अनन्तर अतुलशक्ति सम्पन्न यशस्वी कुलधर हुए। उनके बाद विमलवाहनका नाम चमका, फिर अमृत और चन्द्राभ ये कुलकर हुए। उनके बाद मरुदेव प्रसेनजित और

चन्दहों रोहिणि व मणोहिराम । कन्दप्पहो रइ व पसण्ण-णाम ॥ ४ ॥
सा णिरलंकार जि चारु-गत्त । आहरण-रिद्धि पर भार-मेत्त ॥ ५ ॥
तहँ णिय-लायण्णु जैँ दिण्ण-सोहु । मलु केवलु पर कुंकुम-रसोहु ॥ ६ ॥
पासेय-फुलिङ्गावलि जें चारु । पर गरुयउ मोत्तिय-हारु भारु ॥ ७ ॥
लोयण जि सहावें दल-विसाल । आडम्बरु पर कन्दोट्ट-माल ॥ ८ ॥

घत्ता

कमलासाएँ भमन्तएँण अलि-वलएं मन्दें ।
मुहलीहूयउ कम-जुयलु कि णेउर-सद्दें ॥ ६ ॥

[१४]

तो एत्थन्तरें माणव-वेसें । आइउ देविउ इन्दाएसें ॥ १ ॥
ससि-वयणिउ कन्दोट्ट-दलच्छिउ । कित्ति-बुद्धि-सिरि-हिरि-दिहि-लच्छिउ ।२।
सप्परिवारउ दुक्कउ तेत्तहें । सा मरुएवि भडारी जेत्तहें ॥ ३ ॥
का वि विणोउ किं पि उप्पायइ । पढइ पणच्चइ गायइ वायइ ॥ ४ ॥
का वि देइ तम्बोलु स-हत्थें । सव्वाहरणु का वि सहुँ वत्थें ॥ ५ ॥
पाडइ का वि चमरु कम धोवइ । का वि समुज्जलु दप्पणु ढोवइ ॥ ६ ॥
उक्खय-खग्ग का वि परिरक्खइ । का वि किं पि अक्खाणउ अक्खइ॥७॥
का वि जक्खकद्दमें ण पसाहइ । का वि सरीरु ताहें संवाहइ ॥ ८ ॥

घत्ता

वर-पल्लंकें पसुत्तियएँ सुविणावलि दिट्ठी ।
तीस पक्ख पहु-पङ्गणएँ वसुहार वरिट्ठी ॥ ६ ॥

[१५]

दीसइ मयगलु मय-गिल्ल-गण्डु । दीसइ वसहुक्खय-कमल-सण्डु ॥ १ ॥
दीसइ पञ्चमुहु पईहरच्छि । दीसइ णव-कमलारूढ लच्छि ॥ २ ॥

नाभिराय हुए। इन अन्तिम कुलधरोंमेंसे नाभिरायकी पत्नीका नाम मरुदेवी था, जो इन्द्रकी शची और चंद्रमाकी रोहिणी की तरह सुन्दर, तथा कामकी रतिकी तरह प्रसन्ननाम थी। अलंकारोंके विना ही उसका शरीर शोभन था। गहनोंकी समृद्धि उसे भार मात्र थी। अपने ही लावण्यसे उसकी इतनी शोभा थी कि केशरकी पराग उसे केवल मैल थी। पसीनेकी बूँदोंकी कतार उसपर इतनी सुंदर लगती थी कि भारी मोतियोंका हार उसे भार ही जान पड़ता था। विशाल कमलदलके समान उसके नेत्रोंके आगे नीले कमलोंकी माला आडम्बर ही जान पड़ती थी ॥ १-८ ॥

उस कमलमुखीके आसपास घूमते हुए भ्रमरसमूहसे उसके दोनों पैर मुखरित हो रहे थे। नूपुरोंकी झङ्कारसे क्या ? ॥ ९ ॥

[१४] इसी बीचमें इन्द्रके आदेशसे देवांगनाएँ मानवीवेशमें भट्टारिका (महादेवी) मरुदेवीके पास पहुँची। वे चंद्रमुखी और नील कमल-सी आँखोंवाली थीं। कीर्ति, बुद्धि, श्री, ह्री, धृति और लक्ष्मी उनके नाम थे, कोई कोई विनोद ही करती, कोई कुछ पढ़ती, कोई नाचती, गाती और बजाती, कोई अपने हाथों पान देती, कोई वस्त्रोंके साथ अलंकार देती, कोई चामर डुलाती, कोई पैर धोती, तो कोई समुज्ज्वल दर्पण ही लाकर देती। कोई कृपाण लिये रक्षा करती। कोई आख्यान सुनाती, तो कोई यक्षकर्दम (सुगन्धित द्रव्य) से प्रसाधन करती और कोई शरीर सहलाने लगती ॥ १-८ ॥

बढ़िया पलंग पर सोते हुए रातमें मरुदेवीने स्वप्नमाला देखी। तबसे लेकर पन्द्रह महीनों तक राजाके आंगनमें धनकी वर्षा होती रही ॥ ९ ॥

[१५] सबसे पहले उसे मद झरता हुआ हाथी दिखाई दिया। फिर कमलवनको उखाड़ता हुआ बैल, विशाल आँखोंका

दीसइ गन्धुक्कड-कुसुम-दामु । दीसइ छण-यन्दु मणोहिरामु ॥ ३ ॥
दीसइ दिणयरु कर-पज्जलन्तु । दीसइ झस-जुयलु परिब्भमन्तु ॥ ४ ॥
दीसइ जल-मङ्गल-कलसु वण्णु । दीसइ कमलायरु कमल-छण्णु ॥ ५ ॥
दीसइ जलणिहि गज्जिय-जलोहु । दीसइ सिंहासणु दिण्ण-सोहु ॥ ६ ॥
दीसइ विमाणु घण्टालि-मुहलु । दीसइ णागालउ सव्वु धवलु ॥ ७ ॥
दीसइ मणि-णियरु परिप्फुरन्तु । दीसइ धूमद्धउ धगधगन्तु ॥ ८ ॥

घत्ता

इय सुविणावलि सुन्दरिएँ मरुदेविएँ दीसइ ।
गम्पिणु णाहि-णराहिवहों सुविहाणएँ सीसइ ॥ ९ ॥

[१६]

तेण वि विहसेविणु एम वुत्तु । 'तउ होसई तिहुअण-तिलउ पुत्तु ॥ १ ॥
जसु मेरु-महागिरि-ण्हवणवीढु । णह-मण्डउ महिहर-खम्भ-गीढु ॥ २ ॥
जसु मङ्गल कलस महा-समुद्द । मज्जणय कालें बत्तीस इन्द' ॥ ३ ॥
तहों दिवसहों लग्गें वि अद्धु वरिसु । गिव्वाण पवरिसिय रयण-वरिसु ॥४॥
लहु णाहि-णरिन्दहों तणय गेहु । अवइण्णु भडारउ णाण-देहु ॥ ५ ॥
थिउ गब्भब्भिन्तरें जिणवरिन्दु । णव-णलिणि-पत्तें णं सलिल-बिन्दु ॥ ६ ॥
वसुहार पवरिसिय पुणु वि ताम । अण्णु वि अट्ठारह पक्ख जाम ॥ ७ ॥
जिण-सूरु समुट्ठिउ तेय-पिण्डु । वोहन्तु भव्व-जण-कमल-सण्डु ॥ ८ ॥

घत्ता

मोहन्धार-विणासयरु केवल-किरणायरु ।
उइउ भडारउ रिसह-जिणु स इं भु व ण-दिवायरु ॥ ९ ॥

इय एत्थ पउमचरिए धणञ्जयासिय-सयम्भुएव-कए ।
'जिण जम्मुप्पत्ति' इमं पढमं चिय साहियं पव्वं ॥ १० ॥

सिंह, नये कमलों पर बैठी हुई लक्ष्मी, उत्कट गंधवाली पुष्पमाला, मनोहर पूर्ण चंद्र, किरणोंसे प्रदीप्त सूर्य, घूमता हुआ मीनयुगल, जलसे भरा मंगल कलश, कमलोंसे ढका पद्मसरोवर, गरजता हुआ समुद्र, दिव्यसिंहासन, घंटावलियोंसे मुखरित विमान, सब ओरसे सफेद नागभवन, चमकता हुआ रत्नसमूह और धधकती हुई आग। जब मरुदेवीने यह स्वप्नावलि देखी तो सवेरे उसने नाभिरायको यह सब बताया ॥ १–९ ॥

[१६] उन्होंने हँसकर कहा "तुम्हारे तीनों लोकोंमें श्रेष्ठ पुत्र उत्पन्न होगा। मेरु पर्वत उसका स्नानपीठ होगा, पर्वतरूपी खंभों पर अवलंबित आकाश, मंडप और महासमुद्र मंगलकलश। बत्तीस इन्द्र अभिषेकके समय उपस्थित रहेंगे। उसी दिनसे लेकर छै महीनों तक देवोंने रत्नोंकी वर्षा की। शीघ्र ही (समय पूरा होने पर) ज्ञान शरीर भट्टारक ऋषभ, नाभिराय राजाके घर अवतीर्ण हुए। मरुदेवीके गर्भमें जिन ऋषभ ऐसे स्थित थे मानो नवकमलिनी पर जल-कण हो। उस दिनसे आधे वर्ष तक देवोंने और भी रत्नोंकी वर्षा की। अंतमें भव्यजनरूपी कमलवनको विकसित करता हुआ, तेजस्वी शरीर जिन सूर्य प्रकट हो गया ॥ १–८ ॥

ऋषभ जिन, ठीक भुवन सूर्यकी तरह उदित हुए, वह, मोहके अन्धकारको नष्ट करनेवाले, और केवलज्ञानकी किरणोंके आकर थे ॥ ९ ॥

इस प्रकार, यहाँ, धनञ्जयके आश्रित स्वयंभूदेवकविकृत पद्म-चरितमें यह 'जिन जन्म उत्पत्ति' नामका पहला पर्व पूरा हुआ ? ॥ १० ॥

बिईओ संधि

जग-गुरु पुण्ण-पवित्तु तइलोकहों मङ्गलगारउ।
सहसा णेवि सुरेहिँ मेरुहिँ अहिसित्तु भडारउ ॥ १ ॥

[१]

उप्पण्णएँ तिहुअण-परमेसरें। अट्ठोत्तर-सहास-लक्खण-धरें ॥ १ ॥
भावण-भवणें हिँ सङ्खु पवज्जिय। णं णव-पाउसें णव घण गज्जिय ॥ २ ॥
विन्तर-भवणें हिँ पडह-सहासइँ। दस-दिसिवह-णिग्गय-णिग्घोसइँ ॥ ३ ॥
जोइस-भवणन्तरें हिँ अहिट्ठिय। भीसण-सीहणिणाय समुट्ठिय ॥ ४ ॥
कप्पामर-भवणहिँ जय-घण्टउ। सइँ जि गरुअ-टङ्कार-विसट्टउ ॥ ५ ॥
आसण-कम्पु जाउ अमरिन्दहों। जाणें वि जम्मुप्पत्ति जिणिन्दहों ॥ ६ ॥
चडिउ तुरन्तु सक्कु अवराइएँ। कण्ण-चमर-उड्डाविय-छप्पएँ ॥ ७ ॥
मेरु-सिहरि-सण्णिह-कुम्भ-त्थलें। मय-सरि-सोत्त-सित्त-गण्ड-त्थलें ॥ ८ ॥

घत्ता

सुरवइ दस-सय-णेत्तु रेहइ आरूढउ गयवरें।
विहसिय-कोमल-कमलु कमलायरु णाइँ महीहरें ॥ ९ ॥

[२]

अमर-राउ संचल्लिउ जावँहिँ। धणएं किउ कञ्चणमउ तावँहिँ ॥ १ ॥
पट्टणु चउ-गोउर-संपुण्णउ। सत्तहिँ पायारेहिँ रवण्णउ ॥ २ ॥
दीहिय-मढ-विहार-देवउलें हिँ। सर-पोक्खरिणि तलाएँहिँ विउलेंहिँ॥३॥
कञ्छाराम-सीम-उज्जाणें हिँ। कञ्चण-तोरणेहिँ अपमाणें हिँ ॥ ४ ॥
लहु सक्केय-णयरि किय जक्खें। परियञ्चिय ति-वार सहसक्खें ॥ ५ ॥
पीण-पओहराएँ ससि-सोमएँ। इन्द-महाएविएँ पउलोमएँ ॥ ६ ॥
सव्व-जणहो उवसोवणि देप्पिणु। अग्गएँ माया-बालु थवेप्पिणु ॥ ७ ॥
णिउ तिहुअण-परमेसरु तेत्तहें। सप्परिवारु पुरन्दरु जेत्तहें ॥ ८ ॥

दूसरी सन्धि

जगद्गुरु, पुण्य-पवित्र, त्रिलोकका मंगल करनेवाले, ऋषभ भट्टारकका, सुमेरु पर्वत पर ले जाकर अभिषेक किया गया ॥१॥

[१] एक हजार आठ लक्षणोसे सहित त्रिभुवन-परमेश्वर जिनके उत्पन्न होने पर भवनवासी देवोंने शंख बजाये, मानो नयी वर्षा ऋतुमे, नये मेघ गरज उठे हो। व्यन्तर वासी देवोंने हजारो पटह बजाये, दसो दिशापथोंमें उनका शब्द फैल गया। ज्योतिष भवनवासी देवोंने हर्षसे भरकर सिंहनाद किया, कल्प-वासी देवोके भवनोमे भारी टंकार करते हुए जयघंट बज उठे। देवेन्द्रका आसन कॉप उठा, जिनेन्द्रका जन्म जानकर, तुरंत ही वह ऐरावत हाथी पर चढ़ गया। वह हाथी अपने कानोके चवरोसे भौंरोंको उड़ा रहा था। उसका गण्डस्थल मेरुके समान विशाल था। और जो मद झरनेवाले झरनोंसे गीला हो रहा था। उस ऐरावत हाथी पर बैठा हुआ सहस्रनयन इन्द्र ऐसा सोह रहा था मानो पहाड़ पर, विकसित हजारो कोमल कमलोका सरोवर हो ॥ १-९ ॥

[२] इन्द्रके चलते ही, कुवेरने एक स्वर्णिम नगरीकी रचना की, चार मुख्य द्वारोसे संपूर्ण और सात परकोटोसे सुन्दर। उसमे लम्बे मठ विहार, और देवकुल, बहुतसे सरोवर, पुष्करिणी, तालाव, गृहवाटिका, सीमा-उद्यान और अगणित सुवर्णतोरण थे। ऐसा लगता था मानो कुवेरने छोटी-सी अयोध्या नगरी ही रच दी हो। इन्द्रने तीन बार प्रदक्षिणा की। पीनपयोधरा, शशिकी तरह सौम्य, इन्द्रकी पटरानी इन्द्राणीने सबको मायासे चकित कर, बाल जिनको उठा लिया। उसकी जगह दूसरा मायावी बालक रखकर, उन्हें वहॉ ले गई, जहॉ परिवारके साथ इन्द्र

घत्ता

झत्ति सुरेहिँ विमुक्क चरणोवरि दिट्ठि विसाला।
भत्तिएँ अच्चण-जोग्गु णावइ णीलुप्पल-माला ॥ ९ ॥

[३]

वाल-कमल-दल-कोमल-वाहउ । अङ्कें चडाविउ तिहुअण-णाहउ ॥ १ ॥
सुरवइणाऽरुण-वाल-दिवायरु । संचालिउ तं मेरु-महीहरु ॥ २ ॥
सत्तहिँ जोयण-सयहिँ तहिँविउ । सण्णवइहिँ तारायण-पन्तिउ ॥ ३ ॥
उप्परि दस-जोयणेंहिँ दिवायरु । पुणु असीहिँ लक्खिज्जइ ससहरु ॥ ४॥
पुणु चउहिँ णक्खत्तहँ पन्तिउ । वुह-मण्डलु वि चउहिँ तहिँतिउ ॥ ५ ॥
असुर-मन्ति तिहिँ तिहिँ संवच्छरु। तिहिँ अङ्गारउ तिहिँ जि सणिच्छरु ॥६॥
अट्ठाणवइ सहास कमेप्पिणु । अण्णु वि जोयण-सउ लङ्घेप्पिणु ॥ ७ ॥
पण्डु-सिलोवरि सुरवर-सारउ । लहु सिहासणें ठविउ भडारउ ॥ ८ ॥

घत्ता

णावइ सिरेंण लएवि मन्दरु दरिसावइ लोयहों।
'एहउ तिहुअण-णाहु कि होइ ण होइ व जोयहों' ॥ ९ ॥

[४]

ण्हवणारम्भ-भेरि अप्फालिय । पडहाऽमर-किङ्कर-कर-ताडिय ॥ १ ॥
पूरिय धवल सङ्ख किउ कलयलु । केहि मि घोसिउ चउविहु मङ्गलु॥२॥
केहि मि आढत्तइँ गेयाइ मि । सरगय-पयगय-तालगयाइ मि॥ ३ ॥
केहि मि वाइउ वज्जु मणोहरु । वारह-तालउ सोलह-अक्खरु ॥ ४ ॥
केहि मि उव्वेल्लिउ भरहुत्तउ । णव-रस-अट्ठ-भाव-सजुत्तउ ॥ ५ ॥
केहि मि उब्भियाइँ धय-चिन्धइँ । केहि मि गुरु-थोत्तइँ पारद्धइँ ॥ ६ ॥
केहि मि लइयउ मालइ-मालउ । परिमल-वहलउ भसल-वमालउ ॥७॥
केहि मि वेणु केहिँ वर-वीणउ । केहि मि तिसरियाउ सर-लीणउ ॥८॥

था। शीघ्र ही देवोंकी विशाल ऑखें, भगवान् ऋषभके चरणो पर ऐसी जा पड़ी, मानो भक्तिसे पूजा-योग्य नील कमलोकी माला ही आ पड़ी हो ॥ १–९ ॥

[३] इन्द्रने भी, बाल कमलकी तरह सुकुमार बाहुवाले त्रिभुवन नाथ जिनको अपनी गोदमे ले लिया, और वह सुमेरु-पर्वतकी ओर चल पड़ा। वहॉसे सात सौ छियानवे योजन दूर तारोंकी पंक्ति है। उसके ऊपर दस योजन पर सूर्य है, उससे अस्सी योजन पर चन्द्र है। वहॉसे चार योजन पर नक्षत्रमण्डल है, वहॉसे चार योजन पर बुध-मण्डल है ॥ १–५ ॥

फिर बृहस्पति, शुक्र, मंगल और शनि नक्षत्र हैं। वहॉ से अंठानवे हजार तथा सौ योजन और चलकर, पाण्डुक शिला पर बाल जिनको, इंद्र ने शीघ्र सिंहासन पर विराजमान कर दिया। जिन उसपर ऐसे लग रहे थे, मानो मन्दराचल उन्हें अपने सिर पर लेकर, लोगोंको दिखा रहा था कि लो, यह है त्रिभुवन नाथ ? है या नहीं देख लो ॥ ६–९ ॥

[४] अभिषेकके प्रारंभ होनेकी भेरी बजा दी गई। देव-किंकरों द्वारा ताड़ित नगाड़े भी बज उठे। सफेद शंखोंकी कल-कल ध्वनि सब ओर भर गई। कोई चार प्रकारके मंगलोंकी घोषणा कर रहा था, तो किसीने स्वर पद और तालके अनुसार अपना गीत प्रारम्भ कर दिया। कोई बारह ताल और सोलह अक्षरोंका वाद्य बजा रहा था, तो किसीने नौ रस और आठ भावोंसे युक्त भरतके नाट्यका प्रदर्शन शुरू कर दिया। कही पताकाएँ उड़ रही थीं और कहीं बड़े-बड़े स्तोत्र पढ़े जा रहे थे, कोई, परागभरी, भौंरोंकी कलकलसे व्याप्त मालतीमाला लिये खड़ा था। किसीने वेणु ले लिया तो किसीने वीणा। कोई वीणाके ही स्वरमे लीन हो गया। जिसे जो आता था, उसने वह सब उस

घत्ता

जं परियाणिउ जेहिँ तं तेहिँ सव्वु विण्णासिउ।
तिहुअण-सामि भणेवि णिय-णिय-विण्णाणु पयासिउ ॥ ६ ॥

[५]

पहिलउ कलसु लइउ अमरिन्दें। वीयउ हुअवहेण साणन्दें ॥ १ ॥
तइयउ सरहसेण जमराएं। चउथउ णेरिय-देवें आएं ॥ २ ॥
पञ्चमु वरुणें समरें समत्थें। छट्ठउ मारुएण सइँ हत्थें ॥ ३ ॥
सत्तमउ वि कुवेर अहिहाणें। अट्ठमु कलसु लइउ ईसाणें ॥ ४ ॥
णवमउ सभाविउ धरणिन्दें। दसमउ कलसु लइज्जइ चन्दें ॥ ५ ॥
अण्ण कलस उच्चाइय अण्णेंहिँ। लक्ख-कोडि-अक्खोहणि-गण्णेंहिँ ॥ ६ ॥
सुरवर-वेल्लि अच्छिण्ण रएप्पिणु। चत्तारि वि समुद्द लङ्घेप्पिणु ॥ ७ ॥
खीर-महण्णवें खीरु भरेप्पिणु। अण्णहों अण्णु समप्पइ लेप्पिणु ॥ ८ ॥

घत्ता

ण्हाविउ एम सुरेहिँ वहु-मङ्गल-कलसेँहिँ जिणवरु।
णं णव-पाउस-कालें मेहेंहिँ अहिसित्तु महीहरु ॥ ९ ॥

[६]

मङ्गल-कलसेंहिँ सुरवर-सारउ। जय-जय-सद्दें ण्हविउ भडारउ ॥ १ ॥
तो एत्थन्तरें हय-पडिवक्खें। गेण्हेंवि वज्ज-सूइ सहसक्खें ॥ २ ॥
कण्ण-जुअलु जग-णाहहों विज्झइ। कुण्डल-जुअलु झत्ति आइज्झइ ॥ ३ ॥
सेहरु सीसे हारु वच्छत्थलें। करें कङ्कणु कडिसुत्तउ कडियलें ॥४॥
तिहुअण-तिलयहों तिलउ थवन्तें। मणें आसङ्किउ दससयणेत्तें ॥ ५ ॥
पुणु आढत्त जिणिन्दहों वन्दण। जय तिहुअण-गुरु णयणाणन्दण ॥६ ॥
जय देवाहिदेव परमप्पय। जय तियसिन्द-विन्द-वन्दिय-पय ॥७॥
जय णह-मणि-किरणोह-पसारण। तरुण-तरणि-कर-णियर-णिवारण ॥ ८ ॥

अवसर पर प्रकट किया। उन्हें त्रिभुवन-स्वामी समझकर सबने अपनी-अपनी कला प्रकाशित की ॥ १–९ ॥

[५] (अभिषेकका) पहला कलश देवेन्द्रने लिया और दूसरा आनन्दपूर्वक अग्निने। तीसरा वेगके साथ यमराजने, चौथा नैऋत्य देवोंने, पाँचवाँ युद्धमें समर्थ वरुण ने, छठा अपने हाथसे पवनने, सातवाँ बड़े अभिमानसे कुवेरने, आठवाँ ईशानेंद्रने, नौवाँ धरणेन्द्रने और दसवाँ कलश चन्द्रमाने लिया। दूसरे-दूसरे कलश, लाखों-करोड़ों अक्षौहिणी गणोंने उठा लिये। चारों समुद्रोंको लाँघकर, यहाँसे वहाँ तक देवोंने अपनी, अविच्छिन्न कतार ही खड़ी कर दी। क्षीर-महासमुद्रसे दूध भरकर वे एकसे लेकर दूसरेको दे रहे थे ॥ १–८ ॥

इस तरह, नाना मंगलकलशोंसे देवोंने—जिन वरका अभिषेक किया। मानो नव-पावसकालमें मेघोंने मिलकर महीधरका ही अभिषेक किया हो ॥ ९ ॥

[६] सुरश्रेष्ठोंने, जय-जय करते हुए, मंगल-कलशोंसे ऋषभ भट्टारकको नहलाया। उसी समय इन्द्रने वज्रकी सूईसे जगन्नाथ जिनके दोनों कान वेधकर शीघ्र ही कुण्डल पहना दिये। साथ ही सिरपर मुकुट, गलेमें हार, हाथोंमें कंगन और कमरमें करधनी भी पहना दी। त्रिभुवनतिलकजिन के भाल पर तिलक लगाते समय इन्द्रका मन आशंकासे भर गया। फिर उसने जिनकी वन्दना प्रारम्भ की—"हे त्रिभुवन-गुरु, नेत्रोंको आनन्ददायक आपकी जय हो, परमपदमें स्थित, देवाधिदेव आपकी जय हो। देव और इन्द्रसमूहोंसे वंदित चरण, आपकी जय हो। नभमणि (सूर्यकी) तरह (ज्ञानके) किरण-जालको फैलानेवाले, और तरुणसूर्यके किरण-प्रसारको भी रोक देनेवाले आपकी जय हो। नमिके द्वारा नमित आपकी जय हो? बताओ फिर, अर्हन्तकी उपमा किससे दी जा सकती है ॥ १–८ ॥

जय णमिएहिँ णमिय पणविज्जहि । अरुहु वुत्तु पुणु कहों उवमिज्जहि ॥९॥

घत्ता

जग-गुरु पुण्ण-पवित्तु तिहुअणहों मणोरह-गारा ।
भवेँ भवेँ अम्हहुँ देज्ज जिण गुण-सम्पत्ति भडारा ॥ १० ॥

[७]

णाय-णरामर-णयणाणन्दहों । वन्दण-हत्ति करन्तहों इन्दहों ॥ १ ॥
रूवालोयणेँ रूवासत्तइँ । तित्ति ण जन्ति पुरन्दर-णेत्तइँ ॥ २ ॥
जहिँ णिवडियइँ तहिँ जेँ पडुत्तइँ । दुब्बल-ढोरइँ पङ्केँ व खुत्तइँ ॥३॥
वामकरङ्गुट्ठउ णिहारेँवि । वालहों तेत्थु अमिउ संचारेँवि ॥ ४ ॥
पुणु वि पडीवउ मयण-वियारउ । गम्पि अउज्झहेँ थविउ भडारउ ॥ ५ ॥
सूरेँ मेरु-गिरि व परियञ्चिउ । पुणु दस-सय कर करेँवि पणच्चिउ ॥ ६॥
सालङ्कारु स-दोरु स-णेउरु । सच्छरु सप्परिवारन्तेउरु ॥ ७ ॥
जणणिएँ जं जि दिट्ठु अहिसित्तउ । रिसहु भणेँवि पुणु रिसहु जेँ वुत्तउ ॥८॥

घत्ता

कालें गलन्तएँ णाहु णिय-देह-रिद्धि परियड्ढइ ।
विवरिज्जन्तु कईहिँ वायरणु गन्थु जिह वड्ढइ ॥ ९ ॥

[८]

अमर-कुमारेँहिँ सहुँ कीलन्तहों । पुव्वहुँ वीस लक्ख लङ्घन्तहों ॥ १ ॥
एक्क-दिवसेँ गय पय कूवारेँ । 'देवदेव सुअ भुक्खा-मारेँ ॥ २ ॥
जाहँ पसाए अम्हे धण्णा । ते कप्पयरु सव्व उच्छण्णा ॥ ३ ॥
एवहिँ को उवाउ जीवेवएँ । भोयणेँ खाणेँ पाणेँ परिहेवएँ ॥ ४ ॥
तं णिसुणेँवि वयणु जग-सारउ । सयल-कलउ दक्खवइ भडारउ ॥ ५ ॥
अण्णहुँ असि मसि किसि वाणिज्जउ । अण्णहुँ विविह-पयारउ विज्जउ ॥६॥

हे जगद्गुरु, पुण्य-पवित्र, तीनों लोकोंके मनोरथोंके पूरक भट्टारक, मुझे भव-भवमें जिनगुणोंकी संपदा देते रहें।" ॥ ९ ॥

[७] नाग, मनुष्य और देवोंके नेत्रोंको आनन्द देनेवाले इन्द्रने खूब वंदना भक्ति की। फिर भी रूपके अवलोकनमें रूपासक्त, इन्द्रके नेत्रोंको तृप्ति नहीं हुई। जहाँ उसके नेत्र जाते वहीं गड़कर रह जाते। मानो दुर्बल पशुके खुर कीचड़में फँस गये हों। फिर उसने बायें हाथकी अङ्गुलीको मुखमें डालकर उसमें अमृतका संचार किया। बादमें जितकाम भट्टारक ऋषभको अयोध्यामें ले जाकर जहाँका तहाँ रख दिया। और फिर वह अपने हजार हाथ बनाकर खूब नाचा, वह ऐसा लगता था मानो सूर्य ही मेरु पर्वतकी प्रदक्षिणा कर रहा हो। अलंकार, करधनी, नूपुर, अप्सरा-परिवार और अन्तःपुरसे सहित उन्हें माँने जब अभिषिक्त देखा तो उन्हें धर्मवान् समझकर, 'ऋषभ' कहकर पुकारा ॥ १-८ ॥

समय बीतने पर स्वामी ऋषभके शरीरकी कान्ति वैसे ही बढ़ने लगी, जैसे पंडितों-द्वारा व्याख्या करनेपर व्याकरणका ग्रन्थ विकसित होने लगता है ॥ ९ ॥

[८] देवपुत्रोंके साथ खेल-खेलमें ही उनको बीस लाखपूर्व बीत गये। तब (कल्पवृक्षोंके नष्ट होने पर) एक दिन प्रजाजन विलाप करते हुए आये और कहने लगे, "देव-देव, जिन कल्पवृक्षोंके प्रसादसे हम धन्य थे, वे अब उच्छिन्न हो चुके हैं। हम भूखसे तड़प रहे हैं, जीनेका क्या उपाय है, और भोजन खान पान तथा ताम्बूलादिका भी। यह सुनकर, जगश्रेष्ठ भट्टारक ऋषभने उन्हें सब कलाओंकी शिक्षा दी। कुछको असि, मसि, कृषि और वाणिज्य सिखाया और दूसरोंको नाना प्रकार की विद्याएँ बताईं ॥ १-६ ॥

कइहिँ दिणेँहिँ परिणाविउ देविउ । णन्द-सुणन्दाइउ सिय-सेविउ ॥ ७ ॥
सउ पुत्तहुँ उप्पण्णु पहाणहँ । भरह-बाहुबलि-अणुहरमाणहँ ॥ ८ ॥

घत्ता

पुव्वहँ लक्ख तिसट्ठि गय रज्जु करन्तहोँ जावेँहिँ ।
चिन्ता मणे उप्पण्ण सुरवइ-महरायहोँ तावेँहिँ ॥ ९ ॥

[९]

तिहुअण-जण-मण-णयण-पियारउ । भोयासत्तउ णिएँवि भडारउ ॥ १ ॥
मणेँ चिन्ताविउ दससयलोयणु । करमि किं पि वइरायहोँ कारणु ॥२॥
जेण करइ मुहि-सत्त-हियत्तणु । जेण पवत्तइ तित्थ-पवत्तणु ॥ ३ ॥
जेण सीलु वउ णियमु ण णासइ । जेण अहिंसा-धम्मु पयासइ ॥ ४ ॥
एम वियप्पेँवि छण-चन्दाणण । पुण्णाउस कोक्किय णीलञ्जण ॥ ५ ॥
तिहुअण-गुरुहेँ जाहि ओलग्गएँ । णट्टारम्भु पदरिसहि अग्गएँ' ॥ ६ ॥
त आएसु लहेँवि गय तेत्तहेँ । थिउ अत्थाणेँ भडारउ जेत्तहेँ ॥ ७ ॥
पाउञ्जिएँहिँ पउञ्जिउ तक्खणेँ । गेउ वज्जु ज वुत्तउ लक्खणेँ ॥ ८ ॥

घत्ता

रङ्गेँ पइट्ठ तुरन्ति कर-दिट्ठि-भाव-रस-रञ्जिय ।
विब्भम-भाव-विलास दरिसन्तिएँ पाण विसज्जिय ॥ ९ ॥

[१०]

जं णीलञ्जण पाणेँहिँ मुक्की । जाय जिणहोँ ता सङ्क गुरुक्की ॥ १ ॥
'धिद्धिगत्थु संसारु असारउ । अण्णहोँ अण्णु होइ कम्मारउ ॥ २ ॥
अण्णहोँ अण्णु करइ भिच्चत्तणु' । त जि हूउ वइरायहोँ कारणु ॥ ३ ॥
लोयन्तियहिँ ताम पडिवोहिउ । 'चारु देव ज सइँ उम्मोहिउ ॥ ४ ॥
उवहिहिँ णव-णव-कोडाकोडिउ । णट्ठउ धम्मु सत्थु परिवाडिउ ॥ ५ ॥
णट्ठइँ दंसण-णाण-चरित्तइँ । दाण-झाण-संजम-सम्मत्तइँ ॥ ६ ॥

कुछ समयके अनन्तर उनका नन्दा और सुनन्दा नामकी कुमारियोंसे विवाह हो गया। दोनों ही शोभासे सम्पन्न थीं। उनसे कुल मिलाकर सौ पुत्र हुए। पर उनमें भरत और बाहुबली मुख्य थे। दोनों समान बलशाली थे। इस तरह जब उन्हें राज्य करते करते त्रेसठ लाख पूर्व बीत चुके, तो अचानक इन्द्रराजके मनमें चिन्ता उत्पन्न हुई। ॥ ७-९ ॥

[९] तीनों लोकोंके मनुष्योंके नेत्रों और मनके लिए आनन्ददायक, भट्टारक ऋषभ जिनको भोगमें आसक्त देखकर इंद्र मन ही मन चिंता करने लगा कि वैराग्यका कोई न कोई उपाय सोचना चाहिए, जिससे पण्डित-जनोंका भला हो, तीर्थका प्रवर्तन हो, शील व्रत और नियमोंका नाश न हो और अहिंसा धर्मका (जगमें) प्रकाशन हो। यही सोचकर, उसने पूनोंके चाँद-सी मुखवाली पुण्यायुष्मती नीलांजना अप्सराको बुलाकर कहा— "जाओ और त्रिभुवननाथको रिझाओ, उनके आगे नृत्यका प्रदर्शन करो।" आदेश पाते ही, वह वहाँ पहुँची जहाँ भट्टारक ऋषभ जिन बैठे हुए थे। भरतके नाट्यशास्त्रमें अंकित गान और वाद्यका गाने बजाने वाले देवोंने वहाँ प्रदर्शन प्रारंभ किया ॥ १-८ ॥

शीघ्र ही नीलांजना रंगशालामें प्रविष्ट हुई। उसके हाथ और दृष्टि दोनों रस और भावसे ओतप्रोत थे। परन्तु विभ्रम तथा हाव-भावसे नाचते-नाचते उसने अपने प्राण छोड़ दिये ॥ १-९ ॥

[१०] नीलांजनाके इस तरह प्राण छोड़ देनेसे जिनके मनमें बड़ी भारी शंका उठ खड़ी हुई। वह मन ही मन गुनने लगे। सारहीन संसारको धिक्कारते हुए वह सोचने लगे, कि "कर्मके अधीन होकर जीव कुछका कुछ हो जाता है। एक दूसरेकी चाकरी करता फिरता है" बस यही बात उनकी विरक्तिका कारण

पञ्च महव्वय पञ्चाणुव्वय । तिण्णि गुणव्वय चउ सिक्खावय ॥७॥
णियम-सील-उववास-सहासइँ । पइँ होन्तेण हवन्तु असेसइँ ॥ ८ ॥

घत्ता

ताम विमाणारूढ चउ-दिसु चउ देव-णिकाया ।
'पइँ विणु सुण्णउ मोक्खु' ण जिण-हक्कारा आया ॥ ६ ॥

[११]

सिविया-जाणें सुरवर-सारउ । जय-जय-सद्दें चडिउ भडारउ ॥ १ ॥
देवेंहिँ खन्धु देवि उच्चाइउ । णिविसें तं सिद्धत्थु पराइउ ॥ २ ॥
तहिँ उववणें थोवन्तरु थाएँवि । भरहहों राय-लच्छि करें लाएँवि ॥३॥
'णमह परम-सिद्धाण' भणन्तें । किउ पयागें णिक्खवणु तुरन्तें ॥ ४ ॥
मुट्ठिउ पञ्च भरेप्पिणु लइयउ । चामीयर-पडलोवरें थवियउ ॥ ५ ॥
गेण्हेंवि जण-मण-णयणाणन्दें । घित्तउ खीर-समुद्दें सुरिन्दें ॥ ६ ॥
तेण समाणु सणेहें लइया । रायहँ चउ सहास पव्वइया ॥ ७ ॥
परिमिउ ससि जिह गह-सघाएं । अद्धु वरिसु थिउ काओसाएं ॥ ८ ॥

घत्ता

पवणुद्धुयउ जडाउ रिसहहों रेहन्ति विसालउ ।
सिहिहें वलन्तहों णाइँ धूमाउल-जाला-मालउ ॥ ६ ॥

वन बैठी । ठीक इसी समय लौकान्तिक देवोंने आकर उन्हें इस तरह प्रतिबोधित किया 'हे देव, यह बहुत अच्छा हुआ जो आप मोहजालसे अलग हो गये, इस मोहमहासमुद्रमें नियान्नबे कोड़ा-कोड़ी जीव, धर्मशास्त्र और परपराएँ सब कुछ नष्ट हो जाते है। दर्शनज्ञान और चारित्र भी नष्ट हो जाते हैं। तथा दान, ध्यान, सयम और सम्यक्त्व भी। आपके होनेसे पॉच महाव्रत, पॉच अणुव्रत, तीन गुणव्रत, चार शिक्षाव्रत, तथा और भी दूसरे हजारो शील नियम उपवास आदि बने रहेंगे ॥ १–८ ॥

(यह पता लगते ही) चारो निकायोके देव अपने-अपने विमानोंमे बैठकर चल पड़े। मानो जिनको यह पुकारा आया हो कि तुम्हारे बिना मोक्ष सूना है ॥ ९ ॥

[११] सुरवरश्रेष्ठ भट्टारक जिन जय-जय ध्वनिके बीच, पालकीमे बैठे। देवोने उन्हें अपने कधो पर उठा लिया, और पलभरमे वे सिद्धार्थ नामके उपवनमे पहुँच गये। उस वनमे थोड़े फासलेपर बैठकर, भरतके हाथमे राज्य-लक्ष्मी देकर 'परमसिद्धोंको नमस्कार' कहते हुए, तुरत दानमें सब कुछ त्याग दिया। पॉच मुट्ठियोसे केश लोचकर उन्हे सुवर्णपटल पर रख दिया। जनमनके आनन्ददायक, इन्द्रने उन्हें ले जाकर क्षीरसमुद्रमे क्षेप दिया। उनके साथ, स्नेह होने के कारण चार हजार राजाओने भी दीक्षा ग्रहण कर ली। राहुके आक्रमणसे सीमित शशिकी तरह वह छः महीने कायोत्सर्गसे खड़े रहे ॥ १–८ ॥

हवामे उड़ती हुई तपस्वी ऋषभकी लम्बी जटाएँ ऐसी जान पड़ती थीं मा ो जलती हुई आगसे धूमधूसरित ज्वालमाला निकल रही हो ॥ ९ ॥

[१२]

जिणु अविउलु अविचलु वीसत्थउ । थिउ छम्मासु पलम्बिय-हत्थउ ॥ १ ॥
जे णिव तेण समउ पव्वइया । ते दारुण-दुव्वाएं लइया ॥ २ ॥
सीउण्हेंहिं तिस-भुक्खेंहिं खामिय । जिम्भण-णिद्दालसेंहिं विणामिय ॥ ३ ॥
चालण-कण्डुयण२ अलहन्ता । अहि-विच्छिय-परिवेढिज्जन्ता ॥ ४ ॥
घोर-वीर-तव-चरणेंहिं भग्गा । णासेंवि सलिलु पिएवएँ लग्गा ॥ ५ ॥
केण वि महियलें वत्तिउ अप्पउ । 'हो हो केण दिट्ठु परमप्पउ ॥ ६ ॥
पाण जन्ति जइ एण णिओएं । तो किर तेण काइँ परलोएं ॥ ७ ॥
को वि फलइँ तोडेप्पिणु भक्खइ । 'जाहुँ' भणेवि को वि कोणेक्खइ ॥ ८ ॥

घत्ता

को वि णिवारइ किं पि आमेल्लेंवि चलण जिणिन्दहों ।
'कल्लएँ देसहुँ काइँ पच्चुत्तरु भरह-णरिन्दहों' ॥ ९ ॥

[१३]

तहिं तेहएँ पडिवन्नएँ अवसरें । दइवी वाणि समुट्ठिय अम्बरें ॥ १ ॥
अहों अहों कूड-कवड-णिग्गन्थहों । कापुरिसहों अणाय-परमत्थहों ॥ २ ॥
एण महारिसि-लिङ्ग-ग्गहणें । जाइ-जरा-मरण-त्तय-डहणें ॥ ३ ॥
फलइँ म तोडहों जलु मा डोहहों । णं तो णीसङ्गत्तणु छण्डहों' ॥ ४ ॥
तं णिसुणेंवि तिस-भुक्खाद्दण्णेंहि । उद्धलिउ अप्पाणउ अण्णेंहि ॥ ५ ॥
अण्णेंहिं अण्ण समय उप्पाइय । तहिं अवसरें णमि-विणमि पराइय ॥ ६
कच्छ-महाकच्छाहिव-णन्दण । वर-करवाल-हत्थ णीसन्दण ॥ ७ ॥
बेण्णि वि विहिं चलणेंहिं णिवडेप्पिणु । थिय पासेंहिं जिणु जयकारेप्पिणु ॥ ८

घत्ता

चिन्तिउ णमि-विणमीहिं 'वुत्तउ वि ण बोल्लइ णाहो ।
एउ ण जाणहुँ आसि किउ अम्हहिँ को अवराहो ॥ ९ ॥

[१२] छः माहतक, ऋषभनाथ इसी तरह, अविकल, अविचल और विश्वस्त होकर स्थित रहे। इस बीचमें जो दूसरे राजा दीक्षित हुए थे, वे दारुण दुर्वातमे पड़ गये। कई शीत गर्मी और भूख-प्याससे क्षुब्ध हो उठे, कई जिभाई नींद और आलससे थक गये, किसीको चलना और खुजलाना नहीं मिला तो किसीको साँप और बिच्छुओंने घेर लिया। वे घोर वीर तपसे भ्रष्ट हो गये। कोई तड़फकर पानी पीने लगा, कोई धरती पर गिर पड़ा, और कहने लगा, हो हो परमपद किसने देखा है? यदि इस नियोगमे ही प्राण चले गये, तो परलोकसे क्या? कोई फल तोड़कर खाने लगा, तो कोई 'मैं जाता हूँ' कहकर तिरछी आँख से देख रहा था॥ १-८॥

कोई किसीको मना कर रहा था कि जिनेद्रके चरण छोड़-कर मत जाओ, नहीं तो कल भरत नरेशको क्या उत्तर दोगे?॥९॥

[१३] तब उस विपन्न प्रतिकूल अवसर पर आकाशमे यह देववाणी हुई "अरे भयंकर कपटी कायर साधुओ, तुम परमार्थ नहीं जानते! जन्म-जरा और मरणको भस्म कर देने-वाले, महामुनियोंके इस वेशको धारणकर, इस तरह फल मत तोड़ो और पानी न हिलाओ, नहीं तो इस वेशका त्याग कर दो" यह सुनकर भूख-प्याससे पीड़ित कितनोंने अपने ही ऊपर धूल डाल ली, और दूसरोंने दूसरा ही पथ बना लिया, ठीक इसी अवसर पर कच्छ और महाकच्छपके लड़के नमि और विनमि वहाँ पहुँचे। बिना रथके ही पैदल। दोनोंके हाथोंमे बढ़िया नगी तलवारें थीं। दोनो ही ऋषभके पैरो पर गिरकर, जय-जयकार करते हुए उनके निकट बैठ गये। बैठे-बैठे नमि और विनमि मनमें सोच रहे थे कि बोलनेपर भी नाथ हमसे नही बोल रहे हैं, हम नहीं जानते कि हमने ऐसा कौन-सा भारी अपराध किया है॥ १-९॥

[१४]

जइ वि ण किं पि देहि सुर-सारा । तो वरि एक्कसि वोल्लि भडारा ॥ १ ॥
अण्णहुँ देसु विहञ्जेंवि दिण्णउ । अम्हहुँ किं पहु णिद्दाखिण्णउ ॥ २ ॥
अण्णहुँ दिण्ण तुरङ्गम गयवर । अम्हहुँ काइँ कियउ परमेसर ॥ ३ ॥
अण्णहुँ दिण्णउ उत्तिम-वेसउ । अम्हहुँ आलावेण वि ससउ' ॥ ४ ॥
एम जाम गरहन्ति जिणिन्दहों । आसणु चलिउ ताम धरणिन्दहों ॥ ५ ॥
अवहि पउञ्जेंवि सप्परिवारउ । आउ खणद्धें जेत्थु भडारउ ॥ ६ ॥
लक्खिउ विहि मि मज्झें परमेसरु । ससि सूरन्तरालें णं मन्दरु ॥ ७ ॥
तुरिउ ति-वारउ भामरि देप्पिणु । जिणवर-वन्दणहत्ति करेप्पिणु ॥ ८ ॥

घत्ता

पुच्छिय धरणिधरेण 'विण्णि वि उण्णाविय-मत्था ।
थिय कज्जें कवणेण उक्खय-करवाल-विहत्था' ॥ ९ ॥

[१५]

त णिसुणेवि दिण्णु पच्चुत्तरु । 'पेसिय वे वि आसि देसन्तरु ॥ १ ॥
दूरट्ठाणु जाम लं पावहुं । जाम वलेवि पडीवा आवहुं ॥ २ ॥
ताम पिहिमि णिय-पुत्तहँ देप्पिणु । अम्हहँ थिउ अवहेरि करेप्पिणु ॥ ३ ॥
त णिसुणेंवि विहसिय-मुह-यन्दें । दिण्णउ विज्जउ वे धरणिन्दें ॥ ४ ॥
'गिरि-वेयड्ढहों होहु पहाणा । उत्तर-दाहिण-सेढिहिँ राणा' ॥ ५ ॥
तं णिसुणेंवि णमि-विणमिहिँ वुच्चइ । अण्णें दिण्णी पिहिवि न रुच्चइ ॥ ६ ॥
जइ णिग्गन्थु देइ सइँ हत्थें । तो अम्हे वि लेहुँ परमत्थें ॥ ७ ॥
त णिसुणेवि वे वि अवलोएँवि । थिउ अग्गएँ सो मुणिवरु होएँवि ॥ ८ ॥

घत्ता

हत्थुत्थल्लिउ तेण गय वे वि लएप्पिणु विज्जउ ।
उत्तर-सेढिहिँ एक्कु थिउ दाहिण-सेढिहिँ विज्जउ ॥ ९ ॥

[१४] हे सुरसार, यदि आप कुछ नहीं दे सकते, तो (कम से कम) एक बार बोल तो लीजिए, दूसरोंको आपने बॉट कर देश दे दिये, तो क्या निद्राके कारण हमसे खिन्न हो गये आप। दूसरोंको आपने बढ़िया घोड़े और हाथी दिये, पर हे परमेश्वर, हमने ऐसा क्या किया ? दूसरों को आपने उत्तम वेश दिया, पर हमारे साथ बात करनेमे भी आशंका। वे इस तरह जिनेंद्रकी निन्दा कर ही रहे थे कि धरणेन्द्रका आसन कंपित हो उठा। अवधिज्ञानसे सब कुछ जानकर वह आधे ही पलमे अपने परिवारके साथ भट्टारक ऋषभके पास आ पहुँचा। उसने उन्हे उन दोनोंके बीच ऐसे देखा मानो सूर्य और शशिके बीच मंदराचल हो। आते ही उसने जिनकी तीन बार प्रदक्षिणा देकर वंदना की। फिर उसने नतमस्तक हो उन दोनोंसे पूछा— "हाथमे तलवार उठाये हुए, तुम लोग यहॉ किसलिए बैठे हो?"

[१५] यह सुनकर, उन्होंने प्रत्युत्तर दिया "हमे किसी दूसरे स्थान पर भेजा था। लेकिन हम वहॉ पहुँचकर वापस आ सके, इसके पहले ही इन्होंने सारी धरती अपने पुत्रोंको दे दी, और इस तरह हमारी एकदम उपेक्षा कर दी। उनकी बात सुनकर विद्याधर धरणेन्द्र हँस पड़ा !—उसने उन्हे दो विद्या देकर कहा—'जाओ तुम दोनो विजयार्ध पर्वत की उत्तर और दक्षिण श्रेणियोंके राजा बनाये जाते हो"। यह सुनकर नमि और विनमि ने कहा—"दूसरेकी दी हुई धरती हमें नही भाती, यदि ऋषभ जिन अपने हाथसे दे तो परमार्थमे हम भी ले लेंगे"। तब— धरणेन्द्र उन दोनोंको देखकर मायावी मुनिका रूप बनाकर उनके आगे बैठ गया। उसकी आज्ञासे वे दोनों, विद्या लेकर चले गये। एक, विजयार्धकी उत्तर श्रेणिमे और दूसरा दक्षिण श्रेणिमें।१-९।

[१६]

तहिँ अवसरेँ उच्चाइय-वाहहोँ । महि-विहरन्तहोँ तिहुअण-णाहहोँ ॥ १ ॥
बहु-लायण्ण-वण्ण-संपण्णउ । आणइ को वि पसाहेँवि कण्णउ ॥ २ ॥
चेलिउ को वि को वि हय चञ्चल । रयणइँ को वि को वि वर मयगल ॥३॥
को वि सुवण्णइँ रुप्पय-थालइँ । को वि धणइँ धण्णइँ असरालइँ ॥ ४ ॥
को वि अमुल्लाहरणइँ ढोयइ । ताइँ भडारउ णउ अवलोयइ ॥ ५ ॥
सव्वइँ धूलि-समइँ मण्णन्तउ । पट्टणु हत्थिणयरु संपत्तउ ॥ ६ ॥
जहिँ सेयसें दसणु पाहिउ । छुडु छुडु णिय-परिवारहोँ साहिउ ॥ ७ ॥
'अज्जु पइट्ठु अणङ्ग-वियारउ । मइँ पाराविउ रिसहु भडारउ ॥ ८ ॥
इक्खु-रसहोँ भरियञ्जलि जं जे । घरेँ वसु-हार पवरिसिय तं जे ॥ ९ ॥
ताम चउद्दिसु लोएँ छाइउ । सच्चउ जेँ जिणु वारेँ पराइउ ॥ १० ॥

घत्ता

णिग्गउ 'थाहु' भणन्तु स-कलत्तु स-पुत्तु स-परियणु ।
भमिउ ति-भामरि दिन्तु मन्दरहोँ जेम तारायणु ॥ ११ ॥

[१७]

वन्देँवि पइसारियउ णिहेलणु । किउ चलणारविन्द-पक्खालणु ॥ १ ॥
अण्णु वि गोमएण संमज्जणु । दिण्ण जलेण धार पुणु चन्दणु ॥ २ ॥
पुप्फइँ अक्खयाउ वलि दीवा । धूव-वास जल-वास पडीवा ॥ ३ ॥
कर-पक्खालणु देवि कुमारेँ । ससहर-सण्णिहेण भिङ्गारेँ ॥ ४ ॥
अहिणव-इक्खुरसहोँ भरियञ्जलि । ताव सुरेहिँ मुक्कु कुसुमञ्जलि ॥ ५ ॥
साहुकारु देव-दुन्दुहि-सरु । गन्ध-वाउ वसु-वरिसु णिरन्तरु ॥ ६ ॥
कञ्चण-रयणहँ कोडिउ वारह । पडिय लक्ख वत्तीसट्ठारह ॥ ७ ॥
अक्खय-दाणु भणेँवि सेयंसहोँ । अक्खयतइय णाउ किउ दिवसहोँ ॥ ८॥

[१६] तपके बाद दोनों हाथ ऊपर किये हुए, त्रिभुवन-नाथ, धरती पर विहार कर रहे थे, तो कोई उन्हें प्रसन्न करने के लिए, अत्यंत रूप रंगसे भरी-पूरी लड़की ले आया। कोई वस्त्र ले आया। कोई चंचल घोड़ा। कोई रत्न लेकर आया तो कोई मदान्ध गज। कोई सोने-चाँदीके थाल लेकर आया तो कोई बहुत-सा धन-धान्य। कोई अमूल्य आभरण ही ढोकर ले आया। पर भट्टारक ऋषभजिनने उनकी तरफ देखा तक नहीं। सबको धूल बराबर समझते हुए वह, हस्तिनापुर नगर पहुँचे। इतनेमें वहाँके राजा श्रेयासने यह सपना देखा कि, जितकाम ऋषभजिन उसके घरमें प्रविष्ट हुए हैं, उसने परिवारके साथ पड़गाहा, ईखरससे भरी हुई जितनी अजलि उन्हें दी, उसके घरमें उतना ही धन बरसा"। वह यह सपना देख ही रहा था कि चारो दिशाओंमें लोग छा गये। क्योंकि सचमुचमें ऋषभजिन द्वारपर आये हुए थे। 'ठहरो' कहता हुआ, वह स्त्री, पुत्र और परिजनोंके साथ एकदम निकल पड़ा, तीन बार घूमकर उसने प्रदक्षिणा की वैसे ही जैसे, तारागण सुमेरुपर्वतकी परिक्रमा करते हैं ॥ १-११ ॥

[१७] वन्दना करके वह उन्हें अपने घरमें ले गया। उसने उनके चरण-कमलोंका प्रक्षालन किया। गोमय (श्रीखड) से संमर्दनकर उसने जल और चन्दनकी धारा छोड़ी। फिर पुष्प, अक्षत, नैवेद्य, दीप-धूप और पुष्पांजलिसे बार-बार पूजा की। हाथ धुलाकर, चन्द्रतुल्य कुमार श्रेयांसने भृंगारसे नये ईखके रसकी अजलि भरकर ज्योंही जिनेन्द्रको दी, त्योंही देवोंने पुष्पवृष्टि प्रारंभ कर दी। साधुकार होने लगा। देव-दुन्दुभियोंका स्वर गूँज उठा, सुगन्धित हवा बहने लगी और निरन्तर धनकी वृष्टि होती रही ? तदनन्तर राजा श्रेयांसने बारह

घत्ता

जिमिउ भडारउ जं जे सेयंसें अप्पउ भावेंवि ।
वन्दिउ रिसह-जिणिन्दु सिरें स इं भु व-जुवलु चडावेंवि ॥ ९ ॥

* * * *

इय एत्थ प उ म च रि ए धणञ्जयासिय-सय म्भु ए व-कए ।
'जिणवर-णिक्खमण' इम वीय चिय साहिय पव्व ॥

[३. तईओ संधि]

तिहुअण-गुरु तं गयउरु मेल्लेंवि खीण-कसाइउ ।
गय-सन्तउ विहरन्तउ पुरिमतालु सपाइउ ॥

[१]

दीहर-कालचक्क-हएँण वरिस-सहासे पुण्णएँण ।
सयडामुह-उजाण-वणु ढुक्कु भडारउ रिसह-जिणु ॥ १ ॥

रम्म महा जं च पुण्णाय-णाएहिँ ।कुसुमिय-लया-वेल्लि-पल्लव-णिहाएहिँ ॥२॥
कप्पूर-कक्कोल-एला-लवङ्गेहिँ । महु-माहवी-माहुलिङ्गी-विडङ्गेहिँ ॥ ३ ॥
मरियल्ल-जीरुच्छ-कुङ्कुम-कुडङ्गेहिँ। णव-तिलय-वउलेहिँ चम्पय-पियङ्गेहिँ॥४॥
णारङ्ग-णग्गोह-आसत्थ-रुक्खेहिँ । कङ्केल्लि पउमक्ख-रुद्दक्ख-दक्खेहिँ॥ ५ ॥
खज्जूरि-जम्बिरि-घण-फणिस-लिम्बेहिँ। हरियाल-ढउएहिँ-वहु-पुत्तजीवेहिँ ॥६॥
सत्तच्छायाऽगत्थि-दहिवण्ण-णन्दीहिँ । मन्दार-कुन्दिन्दु-सिन्दूर-सिन्दीहिँ ।७।

करोड़ पचास लाख सुवर्ण-रत्नोंका अक्षय दान किया। इससे उस दिनका नाम अक्षयतृतीया पड़ गया।

श्रेयांसने भावपूर्वक जो-जो अर्पित किया, भट्टारक जिनने वह सब खाया। और तब, अपने दोनों हाथ माथेसे लगाकर राजाने उनकी वन्दना की।

× × × ×

इस प्रकार, धनञ्जयके, आश्रित स्वयभू कवि विरचित पद्म-चरितमें यह जिननिष्क्रमण नामका दूसरा पर्व समाप्त हुआ।

—:—

तीसरी संधि

त्रिभुवनगुरु, क्षीण-कषाय, अभिमानरहित जिन हस्तिनापुरको छोड़कर, थकान दूरकर, विहार करते हुए पुरिमतालनगर में आये।

[१] एक हजार-वर्षका लम्बा कालचक्र बीतनेपर, भट्टारक जिन शकटमुख नामके उद्यानवनमें पहुँचे। पुनांग नाग कुसुमित लताओं, वेलों और पल्लवोंसे वह उपवन अत्यंत सुन्दर था। उसमें कई जातिके तरह-तरहके पेड़-पौधे थे। जैसे कपूर, कक्कोल, इलायची, लौंग, महुआ, माधवी, मातुलिंगी, विडग, मारियल्ल, जीरु, नारंग, वट, पीपल, अशोक, पद्माक्ष, रुद्राक्ष, दाख, खजूर, जभीरी, पनस, निम्ब, हरताल, ढउक, वधु, पुत्रजीव, सप्तच्छद, अगस्त, दधिवर्ण, नंदी, मंदार, कुंद, इंदु, सिंदूर, सिंदी, पाटल,

वर-पाडली-पोप्फली-णालिकेरीहिं। करमन्दि-कन्थारि-करिमर-करीरेहिं ॥ ८ ॥
कणियारि-कणवीर-मालूर-तरलेहिं। सिरिखण्ड-सिरिसामली-साल-सरलेहिं॥९॥
हिन्ताल-तालेहिं ताली-तमालेहिं । जम्बू-वरम्बेहिं कञ्चण-कयम्बेहिं ॥ १०॥
भुव-देवदारूहिं रिट्ठेहिं चारेहिं । कोसम्भ-सज्जेहिं कोरण्ट-कोज्जेहिं ॥११॥
अच्चइय-जूहीहिं जासवण-मल्लीहिं । केयइएँ जाएहिं अवरहि मि जाईहिं१२

घत्ता

तहिँ दिट्ठउ सुमणिट्ठउ वड-पायउ थिर-थोरउ ।
वण-वणियहेँ सुह-जणियहेँ उप्परि धरिउ व मोरउ ॥ १३ ॥

[२]

तहिँ थाएँवि परमेसरेँण आइ-पुराण-महेसरेँण ।
विसय-सेण्णु सचूरियउ सुक्क-झाणु आऊरियउ ॥ १ ॥
एक्क-सुक्क-झाणग्गि-पलित्तहोँ । दो-गुण-धरहोँ दुविह-तव-तत्तहोँ ॥ २ ॥
तियगारहोँ ति-सल्ल फेडन्तहोँ । चउविह-कम्मिन्धणइँ डहन्तहोँ ॥ ३ ॥
पञ्चिन्दिय-दणु-दप्पु हरन्तहोँ । छ-विह-रस-परिचाउ करन्तहोँ ॥ ४ ॥
सत्त-महाभय परिसेसन्तहोँ । अट्ठ दुट्ठ मय णिण्णासन्तहोँ ॥ ५ ॥
णवविहु बम्भचेरु रक्खन्तहोँ । दसविहु परम-धम्मु पालन्तहोँ ॥ ६ ॥
सुइ एयारहंग जाणन्तहोँ । बारह अणुवेक्खउ चिन्तन्तहोँ ॥ ७ ॥
तेरसविहु चारित्तु चरन्तहोँ । चउदसविह-गुणथाणु चडन्तहोँ ॥ ८ ॥
पण्णारह पमाय वज्जन्तहोँ । सोलहविह कसाय मुच्चन्तहोँ ॥ ९ ॥
सत्तारह संजम पालन्तहोँ । अट्ठारह वि दोस णासन्तहोँ ॥ १० ॥

घत्ता

सुह-झाणहोँ गय-माणहोँ अ-प्पसण्ण-मुहयन्दहोँ ।
धवलुज्जलु तं केवलु णाणुप्पण्णु जिणिन्दहोँ ॥ ११ ॥

[३]

साहिय-णिय-सहाव-चरिउ चउतीसाइसय-परियरिउ ।
थिउ जिणु णिद्धुय-कम्म-रउ णं ससहरु णिज्जलहरउ ॥ १ ॥

पूगफल, नारिकेल, करमर्दी, कंथारी, करिमर, करीर, कर्णिकार, कर्णवीर, मालूर, धतूरा, श्रीखड, शिरीष, अमली, साल, सरल, हिताल, ताल, ताड़ी, तमाल, जम्बु, वराम्र, कंचन, कदम्ब, भूर्ज, देवदारु, रिष्ठ, पायाल, कोशाम्र, सर्ज, कोरण्ट, कोंज, अच्छय ? जूही, जया, मल्लिका और केतकी ॥ १-१२ ॥

वहीं सामने उन्होंने एक सुन्दर स्थिर बड़ा बड़का पेड़ देखा, जो ऐसा लगता था मानो सुख देनेवाली वनरूपी स्त्रीके सिरपर मोरपंख ही हो। आदिपुराणके नायक भगवान् ऋषभजिन उस उद्यानमे ठहर गये। वहाँपर उन्होंने विषय भोगोकी सेनाका संहारकर अपना शुक्लध्यान पूरा किया ॥ १३ ॥

[२] दो गुणधारी, द्विविध-तपका आचरण करनेवाले उन ऋषभजिनने एक शुक्लध्यानकी अग्निको प्रज्वलित किया। तिय-कार (तियगारहो[1]) उन्होंने तीनो शल्ये नष्ट कर दी, चार प्रकारके कर्मोंके ईंधनको जला दिया। पॉच इन्द्रियोरूपी दानवो-का दर्प चूर-चूर कर दिया, छः प्रकारके रसोको छोड़ दिया। सात महाभयोको समाप्त कर दिया। आठ दुष्टमदोको नष्ट कर दिया। नौ प्रकारके ब्रह्मचर्यके रक्षक, दशविध परमधर्मोंका पालन करनेवाले, एकादशाग श्रुतके ज्ञाता, बारह अनुप्रेक्षाओंका चिंतन करनेवाले, तेरह प्रकारके चारित्रमे पूर्ण निष्ठ, चौदह गुण-स्थानोंमे पूर्णरूपसे आरूढ़, पन्द्रह प्रमादोसे दूर रहनेवाले, सोलह कषायोका वर्जन करनेवाले, सत्तरह संयमोके पालक, अठारह दोषोंके नाशकर्ता, शुभ ध्यानमे स्थित, गतमान और प्रसन्नमुख-चन्द्र ऋषभजिनेन्द्रको अत्यन्त शुभ्र केवलज्ञान उत्पन्न हो गया ॥ १-११ ॥

[३] अब वह आत्म-स्वभाव और चारित्रमे स्थित थे। चौतीस अतिशयोसे परिवेष्ठित कर्मधूलिको नष्ट करनेवाले वह ऐसे लगते थे, मानो मेघरहित निर्मल चन्द्र ही हो। इतनेमे एक

1. स्त्रीत्व का बंध करानेवाली।

पुण्ण-पवित्तु पाव-णिण्णासणु । अण्णुप्पण्णु धवलु सिंहासणु ॥ २ ॥
किसलय-कुसुम-रिद्धि-संपण्णउ । अण्णेत्तहेँ असोउ उप्पण्णउ ॥ ३ ॥
दिणयर-कोडि-पयाव-समुज्जलु । अण्णेत्तहेँ पसण्णु भामण्डलु ॥ ४ ॥
अण्णेत्तहेँ ओणामिय मत्था । चामरिन्द थिय चमर-विहत्था ॥ ५ ॥
अण्णेत्तहेँ तिहुअणु धवलन्तउ । थिउ उद्दण्ड-धवल छत्त-त्तउ ॥ ६ ॥
अण्णेत्तहेँ सुर-दुन्दुहि वज्जइ । णं पक्खुहणेँ महोवहि गज्जइ ॥ ७ ॥
दिव्व भास अण्णेत्तहेँ भासइ । अण्णेत्तहेँ कम्म-रउ-पणासइ ॥ ८ ॥
। कुसुम वासु अण्णेत्तहेँ वासइ ॥ ९ ॥
अट्ठ वि पाडिहेर उप्पण्णा । ण थिय पुण्ण-पुञ्ज आसण्णा ॥ १० ॥

घत्ता

इय-चिन्धइँ जसु सिद्धइँ पर-समाणु जसु अप्पउ ।
गह चक्कहोँ तइलोक्कहोँ सो जेँ देउ परमप्पउ ॥ ११ ॥

[४]

बारह-जोयण-पोढिमउ मणहरु सव्वु सुवण्णमउ ।
चउदिसु चउरुज्जाण वणु सुर णिम्मविउ समोसरणु ॥ १ ॥
तिविहु कणय-पायारु पभाविउ । बारह कोट्ठा सोलह वाविउ ॥ २ ॥
माणव-थम्भ चयारि परिट्ठिय । कञ्चण-तोरण णिवह समुट्ठिय ॥ ३ ॥
चउ गोउरइँ हेम-परियरियइँ । णव णव थूहइँ तहिँ वित्थरियइँ ॥ ४ ॥
दह धय पउम-मोर-पञ्चाणण । गरुड-मराल-वसह वर-वारण ॥ ५ ॥
अण्णु वि वत्थ चक्क छत्त द्धय । फरहरन्त अच्चन्त समुण्णय ॥ ६ ॥
एक्केक्कएँ धएँ अहिणव-छायहुँ । सउ अट्ठोत्तरु चित्त-पडायहुँ ॥ ७ ॥
तं समसरणु परिट्ठिउ जावहिँ । अमर-राउ संचल्लिउ तावहिँ ॥ ८ ॥
चलियइँ आसणाइँ अहमिन्दहुँ । विसहरिन्द-अमरिन्द-णरिन्दहुँ ॥ ९ ॥

घत्ता

जिणसंपइ जाणावइ सुरवइ सुरवर-विन्दहुँ ।
'किं अच्छहु आगच्छहु जाहुँ भडारउ वन्दहुँ' ॥ १० ॥

ओर पुण्य-पवित्र और पापनाशक सिंहासन उत्पन्न हुआ तो दूसरी ओर पल्लव और पुष्पोंसे समृद्ध अशोक वृक्ष। एक ओर सूर्यकी कोटि-कोटि किरणोंसे झलमलाता प्रशस्त भामण्डल उत्पन्न हुआ तो दूसरी ओर चमर लिये हुए, नतमस्तक चामरेन्द्र खड़े थे। एक ओर, तीनों भुवनोंको धवलित करनेवाले ऊँचे दण्डपर स्थित तीन छत्र थे, तो दूसरी ओर देवता-गण दुन्दुभिनाद कर रहे थे, मानो पूर्णिमाके दिन महासमुद्र ही गरज रहा हो ॥ १-७ ॥

एक ओरसे भगवान्‌की दिव्य ध्वनि बिखर रही थी तो दूसरी ओरसे उनकी कर्मधूलि बिखर रही थी। किसी ओर फूलोंकी सुगंध फैल रही थी। इस तरह पुण्य समूहके समान आठों प्रातिहार्य भी प्रकट हो गये ॥ ८-१० ॥

जिसको ये चिह्न प्रकट हो जाते हैं और जो अपनी आत्मा को दूसरेके समान समझने लगता है निश्चय ही वह ग्रहचक्रसे मुक्त होकर, परमपदमें पहुँच जाता है ॥ ११ ॥

[४] बारह योजन विस्तारकी सारी धरती सोनेकी हो गई। देवोंने आकर समवसरणकी रचना की। उसमें चारों ओर चार उद्यानवन और तीन सोनेके परकोटे, बारह कमरे और सोलह वापियाँ, चार मानस्तंभ, सोनेके तोरणोंका समूह, और सोनेसे जड़े चार मुख्य द्वार थे। उसमें और भी नौ-नौ विस्तृत खंभे थे। कमल, मोर, सिंह, गरुड़, हंस, बैल, गजवर, वस्त्र-चक्र तथा छत्रसे अंकित ध्वजाएँ अत्यन्त समुन्नतरूपसे फहरा रही थीं। एक-एक ध्वजामें अभिनवकान्तिकी एक सौ आठ चित्र-पताकाएँ थीं। जैसे ही समवसरण बना, वैसे ही अमरराज इन्द्र चल पड़ा। उसके चलते ही अहमिन्द्र, नागेन्द्र और अमरेन्द्रके आसन कंपायमान हो उठे ॥ १-९ ॥

इन्द्रने देव-समूहको जिनका वैभव बताते हुए कहा, 'क्या बैठे हो, आओ मेरे साथ! जिन की वन्दनाके लिए चलें।' ॥१०॥

[५]

तं णिसुणेँ वि पउरामरें हिँ कडय मउड-कुण्डल-धरें हिँ ।
मणि-रयण-प्पह रञ्जियइँ णिय-णिय-णाणइँ सज्जियइँ ॥ १ ॥

केहि मि मेस महिस विस कुंजर । केहि मि तच्छ रिच्छ मिग सम्बर ॥ २ ॥
केहि मि करह वराह तुरङ्गम । केहि मि हस मऊर विहङ्गम ॥ ३ ॥
केहि मि सस सारङ्ग पवङ्गम । केहि मि रहवर णरवर जङ्गम ॥ ४ ॥
केहि मि वग्घ सिंघ गय गण्डा । केहि मि गरुड कोञ्च कारण्डा ॥ ५ ॥
केहि मि सुंसुआर मच्छोहर । एम पराइय सयल वि सुरवर ॥ ६ ॥
दस पयार वर भवण-णिवासिय । विन्तर अट्ठ पञ्च जोइसिय ॥ ७ ॥
बहुविह कप्पामर कोकन्तउ । ईसाणिन्दु वि आउ तुरन्तउ ॥ ८ ॥
विब्भम-हाव-भाव-संखोडिहिँ । परिमिउ चउवीसऽच्छर-कोडिहिँ ॥ ९ ॥

पेक्खेँवि बलु किय-कलयलु चउविह-देव-णिकायहोँ ।
धाइय णर कट्ठिय-धर सुरवर-वल्लह-रायहोँ ॥ १० ॥

[६]

ताव गलिय-दाणोज्झरउ कण्ण-चमर-हय-महुयरउ ।
जिण वन्दण-भावणमणउ परिवड्ढिउ अइरावणउ ॥ १ ॥

जोयण-लक्ख-पमाणु परिट्ठिउ । वीयउ मन्दरु णाइँ समुट्ठिउ ॥ २ ॥
उप्परि पेक्खणाइँ पारद्धइँ । चामीयर तोरणइँ णिवद्धइँ ॥ ३ ॥
उब्भिय धय धुवन्तइँ चिन्धइँ । कियइँ वणइँ फल-फुल्ल-समिद्धइँ ॥ ४ ॥
पोक्खरिणिउ णव पङ्कय सरवर । दीहिय वावि तलाय लयाहर ॥ ५ ॥
तहिँ अइरावणेँ गलगज्जन्तएँ । दीहर-कर-सिक्कार मुअन्तएँ ॥ ६ ॥
विज्जिज्जन्तु चमर-परिवाडिहिँ । सत्तावीसहिँ अच्छर-कोडिहिँ ॥ ७ ॥
चडिउ पुरन्दरु मणेँ परिओसेँ । जय-मङ्गल दुन्दुहि-णिग्घोसेँ ॥ ८ ॥
वन्दिण-फ फावयहिँ पढन्तेँहिँ । कट्ठियवालेँहिँ ढोउ ण दिन्तेँहिँ ॥ ९ ॥
इन्दहोँ तणिय रिद्धि अवलोएँवि । के वि विसूरिय विमुहा होएँवि ॥ १० ॥

[५] यह सुनते ही करधनी, मुकुट और कुण्डल पहने हुए पौर-अमर, मणि और रत्नोंकी प्रभासे रंजित, अपने-अपने-वाहनों पर चढ़ गये—कोई मेष, महिष, वृष और कुञ्जर पर, तो कोई तक्षक, रीछ, मृग और सम्बर पर। कोई ऊँट, वराह और घोड़ो पर, तो कोई हंस, मोर, विहंगम पर। कोई शशक, सारंग और लवङ्गम पर तो कोई श्रेष्ठ रथ, मनुष्य पर। कोई बाघ, सिंह, गज और गैंडे पर, कोई गरुड़, क्रौंच और कारण्डव पर और कोई शिंशुमार और मच्छ पर। इस प्रकार, सभी देव-गण वहाँ पहुँचे। दस प्रकारके भवनवासी, आठ प्रकारके व्यंतरवासी, पाँच प्रकारके ज्योतिषदेव और बहुविध कल्पवासी-देवोंको बुलाता हुआ ईशानेन्द्र भी तुरन्त आ गया। वह विभ्रम-हाव-भावसे क्षुब्ध २४ करोड़ अप्सराओंसे घिरा हुआ था। चारों प्रकारके देव-निकायोंको कल कल करते देखकर दण्डधर, देवराजके पास दौड़ा गया ॥ १–१० ॥

[६] जिनवरकी वन्दनाके मनसे ऐरावत हाथी भी आगे बढ़ा। उसके सिरसे मद झर रहा था, कानोंके चमरोंसे वह भौंरोंको उड़ा रहा था, एक लाख योजनका वह हाथी, दूरसे मन्दराचलके समान ही जान पड़ता था। उसके ऊपर प्रदर्शन हो रहे थे और सोनेके सुन्दर तोरण बँधे हुए थे। उसपर फहराती हुई ध्वजा और पताकाएँ, फल-फूलोंसे सपन्न वनोंकी तरह जान पड़ती थीं। उनमें पुष्करणी, नये कमलोंके सरोवर, लम्बी वापियाँ, तालाब और लतागृह भी थे। गर्जनशील, अपनी लम्बी सूँडसे जलकण छोड़ते हुए उस ऐरावत हाथीपर संतुष्टमनसे इन्द्र बैठ गया। सत्ताईस करोड़ अप्सराएँ उसपर चमर डुला रही थीं। दुंदुभियोंका जयमङ्गल-घोष हो रहा था। जयगान करते हुए बन्दी और चारणगण उसका स्तुति पाठ कर रहे थे। दण्डधर प्रणाम कर रहे थे, इन्द्रका वह वैभव देख कर, कितनो ही ने खिन्न होकर मुँह फेर लिया। वे मनसे यह सोच रहे थे कि वह सुदिन कब आयगा, जब मल धोनेवाले तपको साधकर, इस दुर्लभ इन्द्र पदको वे भी पा सकेंगे।१–१०।

घत्ता

'मल-धरणइँ तव-चरणइँ कं दिवु भरहँ करेसहुँ।
जें दुल्लहु जण-वल्लहु इन्दत्तणु पावेसहुँ ॥ ११ ॥

[७]

ताम सुरासुर-वाहणइँ फलइँ व सग्ग-दुमहों तणइँ।
जिणवर-पुण्ण-वाय-हयइँ हेट्ठामुहइँ समागयइँ ॥ १ ॥
अवरोप्परु चूरन्त महाइय । गिरि-मणुसोत्तर-सिहरु पराइय ॥२॥
णिय-करेँ खञ्चेँवि भणइ पुरन्दरु । उच्चासण-आरुहणु असुन्दरु ॥ ३ ॥
जाइँ विउव्वण-सत्तिएँ हूयइँ । तुरिउ ताइँ आमेल्लहु रूअइँ ॥ ४ ॥
थिय देवासुर इन्दाएसें । सव्व पडीवा तेण जि वेसें ॥ ५ ॥
णाणा-जाण-विमाणों हिँ तेत्तहेँ । ढुक्क समोसरणेँ जिणु जेत्तहेँ ॥ ६ ॥
सयल वि दूरोणाविय-मत्था । सयल वि कर-मउलञ्जलि-हत्था ॥७॥
सयल वि जयजयकारु करन्ता । सयल वि थोत्त-सयाइँ पढन्ता ॥ ८ ॥
सयल वि अप्पाणउ दरि सन्ता । णामु गोत्तु णिय-णिलउ कहन्ता ॥ ९ ॥
तहिँ वेलएँ सुर-मेलएँ तेय-पिण्डु जिणु छज्जइ ।
गयणङ्गणेँ तारायणेँ छण-मयलञ्छणु णज्जइ ॥ १० ॥

[८]

सुर-करि-खन्धुत्तिण्णएँण वहु-रोमञ्चुब्भिण्णएँण ।
सप्परिवारेँ सुन्दरेण थुइ आढत्त पुरन्दरेंण ॥ १ ॥
'जय अजरामर-पुर-परमेसर । जय जिण आइ पुराण महेसर ॥ २ ॥
जय दय-धम्म-रयण-रयणायर । जय अण्णाण-तमोह-दिवायर ॥ ३ ॥
जय ससि भव्व-कुमुय-पडिवोहण । जय कल्लाण-णाण-गुण-रोहण ॥ ४ ॥
जय सुरगुरु तइलोक्क-पियामह । जय-संसार महाडइ-हुयवह ॥ ५ ॥
जय वम्मह-णिम्महण महाउस । जय कलि-कोह-हुआसणेँ पाउस ॥६॥

[७] इतनेमें, देवताओंके वाहन एकदम नीचे उतर आये। वे ऐसे जान पड़ते थे, मानो जिनवरके पुण्यपवनके झकझोरेसे स्वर्गरूपी वृक्षके फल ही नीचे गिर पड़े हों। महनीय वे देव एक दूसरेको धक्का देते हुए, जब सुमेरुपर्वतकी मानुषोत्तर शिखरपर पहुँचे, तब अपने हाथसे रोकते हुए इन्द्रने उनसे कहा, "यहाँ ऊँचे आसन पर बैठना सुन्दर नहीं। जिन्हें जो विक्रियाऋद्धि प्राप्त है, वे उन्हें तुरन्त छोड़ दें। इन्द्रके आदेशसे सभी सुर-असुर फिरसे अपने-अपने रूपमें स्थित हो गये। और अपने नाना वाहनोंसे वहाँ जा पहुँचे, जहाँ जिनका समवशरण था। सबने दूरसे ही अपने मस्तक झुका लिये और सबने दूरसे ही हाथ भी जोड़ लिये? सभी जय-जयकार कर रहे थे। सभी सैकड़ों स्तोत्र पढ़ रहे थे। सभी नाम गोत्र और अपने-अपने विमानका नाम कहकर, अपने आपको प्रकट कर रहे थे ॥ १–९ ॥

उस समय, देवोंके संगममें ऋषभजिन ऐसे सोह रहे थे, जैसे आकाशमें तारोंके बीच पूर्णिमाका चन्द्रमा जान पड़ता है ॥ १० ॥

[८] ऐरावत हाथीके पीठसे उतरकर, अत्यन्त पुलकित, सुन्दर पुरन्दरने अपने परिवारके साथ जिनकी स्तुति शुरू की—

"हे देवलोकके अधिपति आपकी जय हो, आदिपुराण परमेश्वर आपकी जय हो, दया और धर्मरूपी रत्नोंके सागर, अज्ञानतमके लिए दिवाकर, भव्यजनरूपी कुमुदके प्रबोधके लिए चन्द्रमा तथा कल्याणज्ञान और गुणोंको आरोहण करनेवाले आपकी जय हो! देवोंके गुरु, त्रिलोकपितामह, संसाररूपी महाअटवीके लिए अग्नितुल्य, आपकी जय हो। आप कषाय-रूपी मेघोंके लिए प्रलय-समीर हैं, मान-रूपी पहाड़के

जय कसायघण-पलयसमीरण । जय माणइरि-पुरन्दरपहरण ॥ ७ ॥
जय इन्दिय-गयउलें पञ्चाणण । जय तिहुअण-सिरि-रामालिङ्गण ॥८॥
जय कम्मारि-मडप्फर-भञ्जण । जय णिक्कल णिरवेक्ख णिरञ्जण ॥९॥

घत्ता

तुह सासणु दुह-णासणु एवहिँ उप्पणइ चडियउ ।
जें होन्तेंण पहवन्तेंण जगु संसारें ण पडियउ ॥ १०॥

[९]

तं वलु तं देवागमणु सो जिणवरु तं समसरणु ।
पेक्खेंवि उववणें अवयरिउ जाउ महन्तउ अच्छरिउ ॥ १ ॥
पट्टणें पुरिमतालें जो राणउ । रिसहसेणु णामेण पहाणउ ॥ २ ॥
सो देवागमु णिऍवि पहासिउ । 'को सयडामुह-वणें आवासिउ ॥३ ॥
कासु एउ एवड्डु पहुत्तणु । जेण विमाणहिँ णवइ णहङ्गणु' ॥ ४ ॥
तं णिसुणेवि केण अप्फालिउ । एम देव मइँ सव्वु णिहालिउ ॥ ५ ॥
भरहेसरहों वप्पु जो सुव्वइ । महि-वल्लहु भणेवि जो थुव्वइ ॥ ६ ॥
केवल-णाणु तासु उप्पण्णउ । अट्ठ-महागुणड्ढि-संपण्णउ' ॥ ७ ॥
तं णिसुणेवि मरट्टें मेल्लिउ । स-वलु स-वन्धुवग्गु संचल्लिउ ॥ ८ ॥
तं समसरणु पइट्ठु तुरन्तउ । 'जय देवाहिदेव' पभणन्तउ ॥ ९ ॥

घत्ता

तेएं तेंण पइसन्तेंण सुरह मि विब्भमु लाइउ ।
'एं वेसेंण उहें सेंण किं मयरद्धउ आइउ' ॥ १० ॥

[१०]

पेक्खेंवि त देवागमणु सो जिणु तं जि समोसरणु ।
भव-भय-सऍहिँ समल्लइउ रिसहसेणु पहु पव्वइउ ॥ १ ॥

लिए इन्द्रके वज्र है, इन्द्रियोंके गोकुलके लिए सिंह है। त्रिभुवनकी शोभा—लक्ष्मीका आलिंगन करनेवाले, कर्मशत्रुओंके अहंकारको चूर-चूर करनेवाले, निष्कल निकलंक और निरञ्जन आपकी जय हो ॥ १–९ ॥

हे जिनवर, आपका शासन दुःखनाशक है, इस समय वह उन्नति पर है। इस शासनके प्रवाहशील बने रहनेसे लोग ससारके प्रवाहमें नहीं पड़ेंगे ॥ १० ॥

[९] वह सेना, वह देवताओंका आगमन यह सब उपवनमें अवतरित देखकर सबको बड़ा भारी आश्चर्य हुआ ॥ १ ॥

उस पुरिमताल नगरके राजा ऋषभसेनने देवगणको देखकर पूछा—"शकटमुख उपवनमें कौन ठहरा है? किसकी इतनी प्रभुता है कि जिससे देवोंके विमान आकाशमें ही झुक जाते हैं।" यह सुनकर किसीने कहा, 'हे देव' हमने सब कुछ देख लिया है, राजा भरतके जो पिता सुने जाते है, और जिनको पृथ्वीवल्लभ कहकर स्तुति की जाती है, आज उन्हीं ऋषभ-जिन को आठ प्रातिहार्य और ऋद्धियोंसे सम्पूर्ण केवलज्ञान उत्पन्न हुआ है"। यह सुनते ही, सब अभिमान छोड़कर, वह राजा सेना और बन्धुवर्गको साथ लेकर चला और 'जय देवाधिदेव" कहते हुए उसने समवशरणमें प्रवेश किया ॥ २–९॥

वेगपूर्वक प्रवेश करते हुए उसे देखकर, देवोंको भी मनमें यह भ्रम हो गया कि कहीं यह इस वेष और उद्देश्यसे कामदेव तो नहीं आ गया है ॥ १० ॥

[१०] देवगण, जिनवर और समवशरणका वह ठाठ देखकर, भव-भयसे आकुल ऋषभसेन राजाने जिन दीक्षा ले ली ॥ १ ॥

तेण समाणु परम गब्भेसर । दिक्खहँ ठिय चउरासी णरवर ॥ २ ॥
चउ-कल्लाण-विहूइ-सणाहहोँ । गणहर ते जि हूअ जग-णाहहोँ ॥ ३ ॥
अवर वि जे जे भावें लइया । चउरासी सहास पव्वइया ॥ ४ ॥
एयारह-गुणठाण-समिद्धहुँ । तिण्णि लक्ख सावयहुँ पसिद्धहुँ ॥ ५ ॥
अज्जिय-गणहोँ संख कें वुज्झिय । देव वि दुक्किय-कम्म-मलुज्झिय ॥ ६ ॥
थिय चउपासें परम-जिणिन्दहोँ । णं तारा-गह पुण्णिम-चन्दहोँ ॥७॥
वइरइँ परिसेसवि थिय वणयर । महिस तुरङ्गम केसरि कुञ्जर ॥८॥

घत्ता

अहिं णउल वि थिय सयल वि एक्कहिँ उवसम-भावेँण ।
किय-सेवहोँ पुरएवहोँ केवल-णाण-पहावेँण ॥ ९ ॥

[११]

ताम विणिग्गय दिव्व झुणि कहइ तिलोअहोँ परम-मुणि ।
वन्ध-विमोक्ख-कालवलइँ धम्माहम्म-महाफलइँ ॥ १ ॥
पुग्गल-जीवाजीव-पउत्तिउ । आसव-संवर-णिज्जर-गुत्तिउ ॥ २ ॥
सजम-णियम-लेस-वय-दाणइँ । तव-सीलोववास-गुणठाणइँ ॥ ३ ॥
सम्मदंसण-णाण-चरित्तइँ । सग्ग-मोक्ख-ससार-णिमित्तइँ ॥४॥
णव पयत्थ सज्झाय-ज्झाणइँ । सुर-णर-उच्छेहाउ-पमाणइँ ॥ ५ ॥
सायर-पल्ल-पुव्व-कोडीयउ । लोयविहाय-कम्मपयडीयउ ॥ ६ ॥
कालइँ खेत्त-भाव-परदव्वइँ । वारह अङ्गइँ चउदह पुव्वइँ ॥ ७ ॥
णरय-तिरय-मणुअत्त-सुरत्तइँ । कुलयर-हलहर-चक्कहरत्तइँ ॥ ८ ॥
तित्थयरत्तणाइँ इन्दत्तइँ । सिद्धत्तणइ मि कहइ समत्तइँ ॥ ९ ॥

घत्ता

किं वहुवेँण आलावेँण तिहुअणेँ सयलेँ गविट्ठउ ।
णउ एक्कु वि तिल-मेत्तु वि तं जि जिणेण ण दिट्ठउ ॥ १० ॥

[१२]

धम्मक्खाणु सयलु सुणेँवि चञ्चलु जीविउ मणेँ मुणेँवि ।
भव-भव-भय-सय-पगय-मणहोँ उवसमु जाउ सव्व-जणहोँ ॥ १ ॥

उसके साथ, उसी जैसे, दर्पमें चूर, चौरासी दूसरे श्रेष्ठ नरेश दीक्षित हुए। ये ही बादमें, चार कल्याणोंकी विभूतिसे संपन्न ऋषभ जिन के गणधर बने। इसके सिवा, अपने-अपने भावसे चौरासी हजार व्यक्ति और भी प्रव्रजित हुए। ग्यारह गुण-स्थानोंसे समृद्ध, तीन लाख प्रसिद्ध श्रावक वहाँ उपस्थित थे। आर्यिकासंघोंकी तो कोई बात ही नहीं पूछ रहा था। दुष्कृतकर्म-मलसे रहित होकर देव भी, जिनके चारों ओर ऐसे बैठे हुए थे, मानो पूर्णचंद्रके आस-पास तारे हों। महिष, अश्व, हाथी और सिंह आदि, जंगली पशुतक, आपसी वैर-भाव भूलकर वहाँ बैठे हुए थे। ऋषभ जिनके केवल ज्ञानके प्रभावसे साँप और नेवले भी सेवक रूपमें शांत भावसे रहने लगे॥ १–९॥

[११] तदनन्तर उनकी दिव्य ध्वनिका खिरना शुरू हुआ। त्रिलोक महामुनि, उन्होंने, बंधमोक्षकालकी शक्ति, धर्म अधर्मका फल, पुद्गल जीव और अजीवकी उत्पत्ति, आस्रव, संवर, निर्जरा, गुप्ति, संयम, नियम, लेश्या, व्रत, दान, तप, शील, उपवास, गुण-स्थान, सम्यक् दर्शन, ज्ञान, चारित्र, स्वर्ग-मोक्ष, संसार और उनके कारण, नौ प्रसिद्ध ध्यान, सुर और मनुष्योंकी मृत्यु और आयुके प्रमाण, सागर पूर्व पल्य, कोड़ाकोड़ी लोकालोक विभाग, कर्मों-का प्रकट होना, काल क्षेम भाव, पर द्रव्य बारह अंग, चौदह पूर्व नरक-तिर्यंच मनुष्यत्व, देव, कुलधर, हलधर, चक्रधर, तीर्थंकरत्व, इन्द्रत्व और सिद्धत्व सभी बातोंका कथन किया। अधिक बकवाद व्यर्थ है, सचमुच उन्होंने तीनों लोकोंमें सब कुछ देख लिया था। उसमें तिलमात्र भी ऐसा नहीं था जो उन्होंने न देखा हो॥ १–१०॥

[१२] धर्मका पूरा प्रवचन सुनकर, सभीने अपने मनमें जीवनको चंचल समझ लिया। उनका भव-भय और संशय सब शांत हो गया॥ १॥

केण वि पञ्चाणु-वय लइया । लोउ करेवि के वि पव्वइया ॥ २ ॥
केहि मि गुणवयाइँ अणुसरियइँ । केहि मि सिक्खावयइँ पधरियइँ ॥३॥
मउणाणत्थमियइँ अवरेकहिँ । अण्णेँहिँ किय णिवित्ति अण्णेकहिँ ॥ ४ ॥
जो जं मग्गइ तं तहोँ देइ । हत्थु भडारउ णउ खञ्चेइ ॥ ५ ॥
अमर वि गय सम्मत्तु लएप्पिणु । णिय णिय-जिय-वाहणहिँ चडेप्पिणु ॥६॥
जिण-धवलहोँ वि धवलु सिहासणु । पण्णारस-विसट्ट-थेरासणु ॥ ७ ॥
उब्भिय सेय छत्त सिय-चामरु । दिव्व भास भामण्डलु सेहरु ॥ ८ ॥

घत्ता

तिहुअण-पहु हय-वम्महु केवल-किरण-दिवायरु ।
तहोँ थाणहोँ उज्जाणहोँ गउ तं गङ्गा-सायरु ॥ ९ ॥

[१२]

तहिँ अवसरेँ भरहेसरहोँ सयल-पुहइ-परमेसरहोँ ।
पर-चक्केहि मि णविय कम जाय रिद्धि सुर-रिद्धि-सम ॥ १॥
मालूर-पवर-पीवर-थणाहँ । छण्णवइ सहास वरङ्गणाहँ ॥ २ ॥
तहोँ दह-पञ्चासउ णन्दणाहुँ । चउरासी लक्खइँ सन्दणाहुँ ॥ ३ ॥
चउरासी लक्खइँ गयवराहुँ । अट्ठारह कोडिउ हयवराहुँ ॥ ४ ॥
कोडीउ तिण्णि वर-धेणुवाहँ । वत्तीस सहास णराहिवाहँ ॥ ५ ॥
वत्तीस सहासइँ मण्डलाहुँ । कम्मन्तेँ कोडि पवहइ हलाहुँ ॥ ६ ॥
णव णिहियउ रयणइँ सत्त सत्त । छक्खण्ड इ मेइणि एक्क-छत्त ॥ ७ ॥

घत्ता

जिह वप्पेँण माहप्पेँण लइउ णाणु त केवलु ।
तिह पुत्तेँण जुज्झन्तेँण स इँ भु य-वलेँण महीयलु ॥ ८ ॥

❀

किसीने पाँचों महाव्रत ग्रहण कर लिये, तो कोई केश लोंच करके दीक्षित हो गया, किसीने गुणव्रतोंका पालन शुरू कर दिया। किसीने शिक्षा व्रत धारण किया, और किसीने मौन रहकर अनर्थ दण्डव्रत। कितनोंने और दूसरी बातोंसे निवृत्ति ग्रहण की, इस तरह जिसने जो माँगा भट्टारक जिनने उसे वह दिया, किसी भी बातसे अपना हाथ नहीं खींचा। देवता लोग भी सम्यक्त्व ग्रहणकर अपने-अपने वाहनोंपर बैठकर चले गये। धवल जिनका सिंहासन अत्यन्त धवल था; उसपर कमलोंसे विशिष्ट उनका पद्मासन था। दोनों ओर सफेद छत्र और चँवर थे। सिर पर, उनके भामंडल था, चारों ओर दिव्य ध्वनि खिर रही थी॥ २-८॥

कुछ कालके बाद, कर्मजयी, केवलज्ञान-दिवाकर त्रिभुवन-स्वामी परम जिनने उस उद्यानसे गंगासागरकी ओर विहार किया॥ ९॥

[१३] ठीक इसी समय, सम्पूर्ण धरतीको अपने पैरोंपर झुकानेवाले भरतेश्वरका भी वैभव, देवोंसे बढ़कर हो गया। उनके पास बेलफलकी तरह पीवरस्तनी ९६ हजार सुंदर रानियाँ थीं और उनसे उत्पन्न पचास हजार पुत्र। चौरासी लाख रथ, चौरासी लाख हाथी, अठारह करोड़ घोड़े, तीन करोड़ उत्तम धनुर्धारी, बत्तीस हजार राजा, बत्तीस हजार मंडलाधिपति, खेतीपातीके लिए एक करोड़ हल, नौ निधियाँ और चौदह रत्न उनके पास थे। वह छ खंड धरतीके एकच्छत्र चक्रवर्ती सम्राट् थे। जिस तरह पिता ऋषभने अपने माहात्म्यसे केवलज्ञान प्राप्त किया उसी तरह उनके पुत्र भरतने भी अपने बाहुबलसे लड़कर धरती अर्जित की॥ १-८॥

—❀—

[४. चउत्थो संधि]

सट्ठिहुँ वरिस-सहासहिँ पुण्ण-जयासहिँ भरहु अउज्झ पईसरइ ।
णव-णिसियर-धारउ कलह-पियारउ चक्क-रयणु ण पईसरइ ॥ १ ॥

[१]

पइसरइ ण पट्टणेँ चक्क-रयणु । जिह अवुहब्भन्तरेँ सुकइ-वयणु ॥ १ ॥
जिह वम्भयारि-मुहेँ काम-सत्थु । जिह गोट्ठङ्गणेँ मणि-रयण-वत्थु ॥ २ ॥
जिह वारि-णिवन्धणेँ हत्थि-जूहु । जिह दुज्जण-जणेँ सज्जण-समूहु ॥ ३ ॥
जिह किविण-णिहेलणेँ पणइ-विन्दु । जिह वहुल-पक्खेँ खय-दिवस-चन्दु॥४॥
जिह कामिणि-जणु माणुसेँ अदव्वेँ । जिह सम्मदंसणु दूर-भव्वेँ ॥ ५ ॥
जिह महुअरि-कुलु दुग्गन्धेँ रण्णेँ । जिह गुरु-गरहिउ अण्णाण-कण्णेँ ६ ॥
जिह परम-सोक्खु संसार-धम्मेँ । जिह जीव-दया-वरु पाव-कम्मेँ । ७ ॥
पढम-विहत्तिहेँ तप्पुरिसु जेम । ण पईसइ उज्झहेँ चक्कु तेम ॥ ८ ॥

घत्ता

तं पेक्खेँवि थक्कन्तउ विग्घु करन्तउ णरवइ वेहाविद्धउ ।
'कहहु मन्ति-सामन्तहोँ जय-जय-मन्तहोँ किं महु को वि असिद्धउ' ॥९॥

[२]

त णिसुणेँवि मन्तिहि वुत्तु एम । 'जं चिन्तहि तं तं सिद्धु देव ॥ १ ॥
छक्खण्ड वसुन्धरि णव णिहाण । चउदह-विहेहिँ रयणेँहिँ समाण ॥ २ ॥
णवणवइ सहास महागराहुँ । वत्तीस सहास देसन्तराहुँ ॥ ३ ॥
अवराइ मि सिद्धइँ जाइँ जाइँ । को लक्खेँवि सक्कइ ताइँ ताइँ ॥ ४ ॥
पर एक्कु ण सिज्झइ साहिमाणु । सय-पञ्च-सवाय-धणु-प्पमाणु ॥ ५ ॥
तित्थङ्कर-णन्दणु तुह कणिट्ठु । अट्ठाणवइहिँ भाइहिँ वरिट्ठु ॥ ६ ॥
पोअण-परमेसरु चरम-देहु । अखलिय-मरट्टु जयलच्छि-गेहु ॥ ७ ॥

चौथी संधि

[१] साठ हजार वर्षकी पुनीत और जयशील विजय-यात्रा कर, भरतने अयोध्यामे प्रवेश किया, परंतु उनका पैनी धारका नया युद्धप्रिय चक्र अयोध्याकी सीमापर रुक गया। किसी भी तरह, वह चक्ररत्न नगरके भीतर प्रवेश नहीं कर रहा था। वैसे ही जैसे मूर्ख लोगोंके भीतर सुकविके वचन, ब्रह्मचारीके मुखमे कामशास्त्रका प्रवचन, गोठमे मणि और रत्नोका समूह, द्वारके निबधनमे हाथियोका झुण्ड, दुर्जनोंके बीच सज्जन-समूह, कंजूस-के घर याचक-जन, शुक्लपक्षमे कृष्णपक्षका चंद्रमा, निर्धन व्यक्तिके निकट कामुक स्त्रियाँ, दूर भव्यजनमे सम्यक् दर्शन, दुर्गंधित उपवनमे भ्रमर, अन्यायशील जनमे गुरुका उपदेश, सांसारिक धर्मोमे मोक्ष-सुख, पापकर्ममे उत्तम जीव-दया और प्रथमा विभक्तिमें तत्पुरुष समास, प्रवेश नहीं कर सकता, ऐसे ही उस चक्ररत्नने अयोध्या नगरीमे प्रवेश नहीं किया ॥ १–८ ॥

चक्रको इस तरह निरुद्ध और विघ्नकारक देखकर सम्राट् भरतने क्रुद्ध होकर जय और यशसे युक्त महामंत्रियो तथा मंत्री-सामंतोंसे पूछा—'बताइये मुझे अब क्या सिद्ध करना (जीतना) बाकी रह गया है' ॥ ९ ॥

[२] यह सुनकर मंत्री बोले—'हे देव, आपने जो जो सोचा वह सब सिद्ध हो गया। छ खड धरती, नौ निधियाँ, चौदह रत्न, निन्यानवे हजार निधान (खदानें) और बत्तीस हजार दूसरे देश ? और भी जो सफलताएँ आपने प्राप्त कीं उन्हें कौन गिन सकता है, केवल एक व्यक्ति अभी सिद्ध करनेके लिए बाकी बचा है और वह है आपका छोटा भाई वीर तीर्थंकर ऋषभका पुत्र बाहुबली। वह सवा पाँच सौ धनुष लम्बा, चरम शरीरी स्वाभिमान और लक्ष्मीका निकेतन, अजेय शत्रुओंको

दुव्वार-वइरि-वीरन्त-कालु　। णामेण वाहुवलि वल-विसालु ॥ ८ ॥

घत्ता

सीहु जेम पक्खरियउ खन्तिएँ धरियउ जइ सो कह वि वियट्टइ ।
तो सहुँ खन्धावारें एक्क-पहारें पइ मि देव दलवट्टइ ॥ ९ ॥

[३]

तं वयणु सुणेंवि दट्ठाहरेण । भरहेण भरह-परमेसरेण ॥ १ ॥
पट्ठविय महन्ता तुरिय तासु । 'वुच्चइ करें केर णराहिवासु ॥ २ ॥
जइ णउ पडिवण्णु कयावि एम । ता तेम करहु महु भिडइ जेम' ॥३॥
सिक्खविय महन्ता गय तुरन्त । णिवसिद्धें पोयणु-णयरु पत्त ॥ ४ ॥
पुज्जें वि पुच्छिय 'आगमणु काइँ' । तेहि मि कहियइँ वयणाइँ ताइँ ॥५॥
'को तुहुँ को भरहु ण भेउ को वि । पुहवीसरु दीसइ गम्पि तो वि ॥६॥
जिह भायर अट्ठाणवइ इयर । जीवन्ति करेंवि तहाँ तणिय केर ॥७॥
तिह तुहुँ मि मडप्फरु परिहरेवि । जिउ रायहोँ केरी केर लेवि ॥ ८ ॥

घत्ता

तं णिसुणेंवि भय-भीसें वाहुवलीसें भरह-दूअ णिब्भच्छिय ।
'एक्क केर वप्पिक्की पिहिमि गुरुक्की अवर केर ण पडिच्छिय　९ ॥

[४]

पवसन्तें　परम-जिणेसरेण । जं किं पि विहज्जेंवि दिण्णु तेण ॥ १ ॥
तं अम्हहुँ सासणु सुह-णिहाणु । किउ विप्पिउ णउ केण वि समाणु ॥२॥
सो पिहिमिहेँ हउँ पोयणाहोँ सामि । णउ देमि ण लेमि ण पासु जामि ॥३॥
दिट्ठें ण तेण किर कवणु कज्जु । किं तासु पसाएं करमि रज्जु ॥ ४ ॥

काल के समान, विशाल बलशाली और पोदनपुरका राजा है ॥ १-८ ॥

सिंहकी तरह संनद्ध परम क्षमाशील उसे किसी तरह विघटित करना चाहिए। हे देव, वह समस्त स्कधावार सहित आप को एक ही प्रहारमें चूर चूर कर देगा ॥ ९ ॥

[३] यह वचन सुनकर भरत क्रोधसे दाँत किटकिटाने लगा। तुरन्त ही उसने मंत्रियोंको यह सदेश देकर भेजा "उससे कहो कि वह मेरी आज्ञा माने" और यदि किसी तरह वह इस बात पर राजी न हो तो ऐसी युक्ति करना जिससे दोनों का युद्ध हो'। भरत के सिखाये हुए मत्री वहां से चले, और आधे ही पलमें पोदनपुर पहुँच गये। तब आदरपूर्वक बाहुबलिने उनसे पूछा—कहिए कैसे आना हुआ? उन्होंने (भरतने) मेरे लिए क्या कहा है, इस पर, मन्त्रीने उत्तर दिया, "क्या आप और क्या भरत—दोनोंमें कोई अन्तर नहीं है, तो भी आप चलकर पृथ्वीश्वर भरतसे भेंट कर लीजिए? जिस प्रकार दूसरे अट्ठानवे भाई उनकी आज्ञा मानकर रहते हैं वैसे ही आप भी, अहकार छोड़कर उनकी आज्ञा मानकर रहिए ॥ १-८ ॥

यह सुनते ही, भयसे भी अत्यंत भयंकर, बाहुबलि भरतके दूत पर बिगड़ उठे और बोले, "यह विशाल धरती, केवल हमारे पिताजी की है और किसीकी इसे मैं नहीं जानता ॥ ९ ॥

[४] दीक्षा लेते समय पिताजीने बटवारेमें जितनी धरती मुझे दी थी, उस पर मेरा सुखद शासन है, किसीके साथ मैंने कुछ बुरा भी नहीं किया। वह भरत तो सारी धरती का स्वामी है, मैं तो केवल पोदनपुरका अधिपति हूँ, न तो

किं तहों वलेण हउँ दुण्णिवारु । किं तहों वलेण महु पुरिसयारु ॥ ५ ॥
किं तहों वलेण पाइक्क-लोउ । किं तहों वलेण सम्पय-विहोउ' ॥ ६ ॥
जं गज्जिउ वाहुवलीसरेण । पोयण - पुरवर - परमेसरेण ॥ ७ ॥
तं कोवाणल - पजलन्तएहिँ । णिब्भच्छिउ भरह-महन्तएहिं ॥ ८ ॥

घत्ता

'जइ वि तुज्झु इमु मण्डलु वहु-चिन्तिय-फलु आसि समप्पिउ वप्पें ।
गामु सीमु खलु खेत्तु वि सरिसव-मेत्तु वि तो वि णाहिँ विणु कप्पें ॥६॥

[५]

तं वयणु सुणेवि पलम्ब-वाहु । णं चन्दाइच्चहुँ कुविउ राहु ॥ १ ॥
'कहों तणउ रज्जु कहों तणउ भरहु । जं जाणहु तं महु मिलेंवि करहु ॥ २॥
सो एक्कें चक्कें वहइ गव्वु । किर वसिकिउ मइँ महिवीढु सव्वु ॥३॥
णउ जाणइ होसइ केम कज्जु । कहों पासिउ णीसावण्णु रज्जु ॥ ४ ॥
परियलइ जेण तहों तणउ दप्पु । तं तेहउ कल्लएँ देमि कप्पु ॥ ५ ॥
वावल्ल-भल्ल-कण्णिय-करालु । मुग्गर-भुसुण्ढि-पट्टिस-विसालु' ॥ ६ ॥
तं सुणेंवि महन्ता गय तुरन्त । णिविसद्धें भरहहों पासु पत्त ॥ ७ ॥
जं जेम चविउ तं कहिउ तेम । 'पइँ तिण-सरिसो वि ण गणइ देव ॥८॥

घत्ता

ण करइ केर तुहारी रिउ-खय-कारी णिब्भउ माणें महाइउ ।
मेइणि-रयणु समुद्दुवि रण-पिढु मण्डेंवि जुज्झ-सज्जु थिउ ढाइउ ॥६॥

मैं कुछ देता हूँ और न लेता हूँ। और न उसके पास जाता हूँ। उससे भेंट करनेमें मेरा कौन-सा काम बनेगा। क्या मैं उसके प्रसादसे राज्य करता हूँ? क्या मैं दुर्वार और अजेय—उसके बलसे हूँ? क्या उसके बलपर मेरा पुरुषार्थ टिका है? क्या उसके बलसे मेरा जनलोक है? क्या उसके बलसे मैं सम्पत्तिका भोग कर रहा हूँ।" पोदनपुर-स्वामी बाहुबलिके इस तरह गरजने पर, भरतके मंत्रियोंने भी क्रोधसे भड़ककर कहा, "यदि तुम समझते थे कि यह धरती-मंडल, तुम्हें पिता जीने बहुत सोच-विचार कर दिया है, तो (याद रक्खो) गाँव सीमा, खलियान और खेत, एक सरसों भर भी, बिना कर दिये तुम्हारा नहीं हो सकता ॥ १–९ ॥

[५] यह सुनकर बाहुबलि क्रोधसे लाल हो उठा, मानो राहु ही सूर्य और चन्द्रमा पर झपट पड़ा हो। उसने कहा, "ओ" किसका राज्य? और किसका भरतद्वीप? जो समझो, वह तुम सब मिलकर मेरा कर लो। एक चक्रसे ही वह यह गर्व कर रहा है कि मैंने समस्त धरा-पीठको वशमें कर लिया। वह नहीं जानता कि इससे क्या काय बनेगा, और किसके पास एकछत्र राज्य रहा है ॥ १–४ ॥

मैं कल ही परावर्तित भाला, कराल कर्णिका, मुद्गर, भुसुण्डि और विशाल पट्टिश आदि शस्त्रोंसे ऐसा प्रतिकार करूँगा कि उसका सब मान गलित हो जायगा।" यह सुन कर मंत्री लोग फौरन वहाँसे चल पड़े और पलभरमें भरतके पास जा पहुँचे। जो कुछ उसने कहा था, वह सब भरतको बताते हुए मन्त्रियोंने कहा कि 'हे देव वह आपको तिनकेके बराबर भी नही मानता, महामानी वह अपने घमंडमें इतना चूर है कि शत्रुक्षयकारी वह आपकी सेवा नहीं करना चाहता, धरतीरमण और युद्धसंनद्ध वह रणपट मांड कर दाँव चुकाना चाहता है' (?) ॥ ५–९ ॥

[६]

त णिसुणेंवि झत्ति पलित्तु राउ। ण जलणु जाल-माला-सहाउ ॥ १ ॥
देवाविउ लहु सण्णाह-तूरु । सण्णज्झइ न-रहसु सुहड-सूरु ॥ २ ॥
आऊरिउ वलु चउरङ्गु ताम । अट्ठारह अक्खोहणिउ जाम ॥ ३ ॥
परिचिन्तिय णव णिहि सचलन्ति । जे सन्दण-वेगें परिभमन्ति ॥ ४ ॥
महाकालु कालु माणवउ पण्डु । पउमक्खु सङ्खु पिङ्गलु पचण्डु ॥ ५ ॥
णइसप्पु रयणु णव णिहिउ एय । ण थिय बहु-भायहिँ पुण्ण-भेय ॥६॥
णव-जोयणाइँ तुङ्गत्तणेण । बारह सण्पासङ्गत्तणेण ॥ ७ ॥
अट्ठोयर गम्भीरत्तणेण । सहुँ जक्ख-सहासें रक्खणेण ॥ ८ ॥
कों वि वत्थइँ कों वि भोयणइँ देइ । कों वि रयणइँ कों वि पहरणइँ णेइ॥९॥
कों वि हय गय कों वि ओसहिउ धरइ। विण्णाणाहरणइँ को वि हरइ ॥१०॥

घत्ता

चम्म-चक्क-सेणावइ हय-गय-गहवइ छत्त-दण्ड-णेमित्तिय ।
कागणि-मणि-त्थवइ थिय सग्ग-पुरोहिय ते वि चउद्दह चिन्तिय ॥११॥

[७]

गउ भरहु पयाणउ देवि जाम । हेरियँहिँ कणिट्ठहों कहिउ ताम ॥ १ ॥
'सहसा णीसरु सण्णहेंवि देव । दीसइ पडिवक्खु समुद्दु जेम' ॥ २ ॥
तं सुणेंवि स-रोसु पलम्ब-वाहु । सण्णज्झइ पोयण-णयर-णाहु ॥ ३ ॥
पडु पडह समाहय दिण्ण सङ्ख । धय दण्ड छत्त उब्भिय असङ्ख ॥ ४ ॥
किउ कलयलु लइयइँ पहरणाइँ । कर-पहर-पयट्टइँ वाहणाइँ ॥ ५ ॥
णीसरिउ सत्त अक्खोहणीउ । एक्कएँ सेण्णएँ अक्खोहणीउ ॥ ६ ॥
भरहेसर-वाहुवली वि ते वि। आसण्णइँ दुक्कइँ वलइँ वे वि ॥ ७ ॥

[६] यह सुनकर, राजा भरत तुरन्त भड़क उठा ? मानो लपटोंसे सहित आग ही भड़क उठी हो। फौरन उसने तैयारी की भेरी बजवा दी। वह सुभट सूर स्वयं भी तैयार होने लगा। चतुरंग सेना इकट्ठी होने लगी, अठारह अक्षौहिणी सेनाएँ आ पहुँची। ध्यान करते ही नौ निधियाँ रथका रूप धारण किये हुए घूमने लगीं। ये निधियाँ थीं—महाकाल, काल, माणव, पाडुक, पद्म, शंख, पिंगल, नैसर्प और सर्वरत्न। वे ऐसी जान पड़ती थीं मानो पुण्यका रहस्य ही अनेक भागों मे विभक्त हो गया हो। उनकी ऊँचाई ९ योजन, लम्बाई-चोड़ाई १२ योजन और गहराई ८ योजन थी। प्रत्येक निधि एक हजार यक्षोंसे रक्षित थी। कोई निधि वस्त्र देती थी, कोई भोजन, और कोई रत्न। कोई आयुध लाती थी, कोई अश्व और गज। कोई औषधि धारण करने वाली थी, कोई विज्ञान और तरह तरह के आभूषण धारण करती थी। भरत ने चर्म, चक्र सेनापति हय गज गृहपति छत्र-दण्ड नैमित्तिक, काकिणी मणि स्थपति खड्ग और पुरोहित इन चौदह रत्नों का ध्यान किया ॥१–११॥

[७] जैसे ही भरतने अभियानके लिए प्रस्थान किया, वैसे ही बाहुबलिके दूतोंने उसे खबर देते हुए कहा, "तैयार होकर शीघ्र निकलिए देव। प्रतिपक्ष समुद्रकी भाँति दीख पड़ रहा है।" यह सुनते ही पोदनपुरनरेश, महाबाहु बाहुबलि भी रोषपूर्वक तैयारी करने लगा। पटु और पटह बज उठे, शख भी फूँक दिये गये। असख्य ध्वज-दण्ड और छत्र उठने लगे। कल-कल होने लगा, हथियार ले लिये गये, हाथोंके प्रहारसे वाहन चलने लगे। बाहुबलि निकल पड़ा। उसकी एक ही सेनाने भरतकी सात अक्षौहिणी सेनाको क्षुब्ध

। सवडंमुह धय धयवडहुँ देवि ॥ ८ ॥
हय हयहुँ महा-गय गयवराहुँ । भड भडहुँ महा-रह रहवराहुँ ॥ ९ ॥

घत्ता

देवासुर-वल-सरिसइँ वड्डिय-हरिसइँ कञ्चुय-कवय-विसट्टइँ ।
एक्कमेक्क कोक्कन्तइँ रणेँ हक्कन्तइँ उभय-वलइँ अब्भिट्टइँ ॥ १० ॥

[८]

अब्भिट्टइँ वड्डिय-कलयलाइँ । भरहेसर-वाहुवली-वलाइँ ॥ १ ॥
वाहिय-रह-चोइय-वारणाइँ । अणवरयामेल्लिय-पहरणाइँ ॥ २ ॥
लुअ-जुण्ण-जोत्त-खण्डिय-धुराइँ । दारिय-णियम्व-कप्पिय-उराइँ ॥ ३ ॥
णिव्वट्टिय-भुअ-पाडिय-सिराइँ । धुय-खन्ध-कवन्ध-पणच्चिराइँ ॥ ४ ॥
गय-दन्त-च्छोह-भिण्णुब्भडाइँ । उच्चाइय-पडिपेल्लिय-भडाइँ ॥ ५ ॥
पडिहय-विणिवाइय-गयघडाइँ । अच्छोडिय-मोडिय-धयवडाइँ ॥ ६ ॥
मुसुमूरिय-चूरिय-रहवराइँ । दलवट्टिय-लोट्टिय-हयवराइँ ॥ ७ ॥
रुहिरोल्लइँ सरेँहिँ विहावियाइँ । ण वे वि कुसुम्भेँहिँ रावियाइँ ॥ ८ ॥

घत्ता

पेक्खेँवि वलइँ धुलन्तइँ महिहिँ पडन्तइँ मन्तिहिँ धरिय म भण्डहों ।
किं वहिएण वराएं भड-संघाएं दिट्ठि-जुज्झु वरि मण्डहों ॥ ९ ॥

[९]

पहिलउ जुज्झेवउ दिट्ठि-जुज्झु । जल-जुज्झु पडीवउ मल्ल-जुज्झु ॥ १ ॥
जो तिण्णि मि जुज्झइँ जिणइ अज्जु । तहोँ णिहि तहोँ रयणइँ तासु रज्जु ॥ २ ॥
तं णिसुणेँवि दुक्खु णिवारियाइँ । साहणइँ वे वि ओसारियाइँ ॥ ३ ॥

कर दिया ? भरत और बाहुबलि, तथा उनकी सेनाएँ, पास-पास पहुँचीं। आमने-सामने ध्वजके आगे ध्वज कर दिये गये। अश्वके सामने अश्व। महागजोंके सामने महागज, योद्धाओंके आगे योद्धा, महारथोंके आगे महारथ, खड़े कर दिये गये ॥ १-९ ॥

देव और राक्षसोंकी सेनाकी तरह सम्पन्न, खूब हर्षित होकर, विशेष कंचुक और कवच पहने हुए, एक दूसरे को ललकार कर दोनों सेनाएँ आपसमें टकरा गईं ॥ १० ॥

[८] भरत और बाहुबलिकी सेनाओंके भिड़ते ही कलकल शब्द बढ़ने लगा। रथ हाँके जाने लगे, हाथी उकसाये जाने लगे। एक दूसरे पर लगातार हमले होने लगे। पैर छिन्न-भिन्न होने लगे। रथ के धुरे टूटने लगे। गडस्थल विदीर्ण हो गये और छाती फटने लगी। भुजाएँ कटकर गिरने लगीं, सिर लोटने लगे, छिन्न-भिन्न रुण्ड-मुड नाच रहे थे। हाथियों के दाँतोंके प्रहारसे छिन्न होकर योद्धा हट रहे थे। प्रतिहत होकर गजसेना धरती पर पड़ने लगी। ध्वजपट खण्डित होकर उड़ रहे थे। बड़े-बड़े रथ मसले जाकर चकना चूर हो गये। बड़े-बड़े अश्व नष्ट होकर लोटपोट हो गये। रक्तरंजित तीरोंसे दोनों ही सेनाएँ भयङ्कर हो उठीं, मानो दोनों कुसुम्भ राग में रँग गई हों ॥ १-८ ॥

'इस तरह नष्टप्राय दोनों सेनाओंको भिड़ते और धरती पर गिरते देखकर मंत्रियोंने निवेदन किया।' "अभागे सैनिकों के संहार से क्या ? अच्छा हो यदि आप दोनों आपस में दृष्टि युद्ध कर लें" ॥ १० ॥

[९] पहले दृष्टि युद्ध होना चाहिए फिर जलयुद्ध और मल्लयुद्ध। जो तीनों युद्धोंमें आज विजयी होगा उसी की निधियाँ, राज्य और रत्न होंगे। यह सुनकर, दोनों सेनाएँ बड़े

लहु दिट्ठि-जुज्फु पारद्धु तेहिँ । जिण-णन्द-सुणन्दा-णन्दणेहिँ ॥ ४ ॥
अवलोइउ भरहें पढमु भाइ । कइलासें कञ्चण-सइलु णाइँ ॥ ५ ॥
असिय-सियायम्ब विहाइ दिट्ठि । णं कुवलय-कमल-रविन्द-विट्ठि ॥ ६ ॥
पुणु जोइउ वाहुवलीसरेण । सरें कुमुय-सण्डु णं दिणयरेण ॥ ७ ॥
अवरामुह-हेट्ठामुह-मुहाइँ । णं वर-वहु-वयण-सरोरुहाइँ ॥ ८ ॥

घत्ता

उवरिल्लियएँ विसालएँ भिउडि-करालएँ हेट्ठिम दिट्ठि परज्जिय ।
णं णव-जोव्वणइत्ती चञ्चल-चित्ती कुलवहु इज्जएँ लज्जिय ॥ ६ ॥

[१०]

जं जिणेंवि ण सक्किउ दिट्ठि-जुज्फु । पारद्धु खणद्धें सलिल-जुज्फु ॥ १ ॥
जलें पइट्ठ पिहिमि-पोयण-णरिन्द । णं माणस-सरवरें सुर-गइन्द ॥ २ ॥
एत्थन्तरें महि-परमेसरेण । आडोहेंवि सलिलु समच्छरेण ॥ ३ ॥
पमुक्क फलक्क सहोयरासु । णं वेल समुद्दें महिहरासु ॥ ४ ॥
छुडु वाहुवलिहें वच्छयलु पत्त । णिव्भच्छिय असइ व पुणु णियत्त ॥ ५ ॥
परिथिय उरें तोय तुसार-धवल । णं णहें तारा णिउरुम्व वहल ॥ ६ ॥
पुणु पच्छएँ वाहुवलीसरेण । आमेल्लिय सलिल-फलक्क तेण ॥ ७ ॥
उद्धाइय चल-णिम्मल-तरङ्ग । ण सचारिम आयास-गङ्ग ॥ ८ ॥

घत्ता

ओहट्टिउ भरहेसरु थिउ मुह-कायरु गरुअ-रहल्लएँ लइयउ ।
सुरयारुहण-वियक्कएँ विरह-फलक्कएँ भग्गु व दुप्पव्वइयउ ॥ ९ ॥

दुःखसे दूर-दूर हट गईं। और तुरन्त ही उन्होंने (नन्दा और सुनन्दाके पुत्रोंने) दृष्टि-युद्ध प्रारम्भ किया, सबसे पहले भरतने अपने भाईको देखा, मानो कैलाश पर्वतने सुमेरु पर्वतको देखा हो। काले और सफेद बादलोंके समान उसकी दृष्टि उस समय ऐसी सोह रही थी मानो नीले और सफेद कमलोंकी वर्षा हो रही हो, उसके बाद बाहुबलिने भरत पर दृष्टिपात किया मानो सूर्यने सरोवरमें कुमुद-समूहको देखा हो, पराजित भरतका मुख, उत्तम कुल-वधूकी तरह सहसा नीचे झुक गया। बाहुबलिकी विशाल भौंहोंवाली दृष्टिसे भरतकी दृष्टि ऐसी नीची हो गई जैसे साससे ताड़ित, चचलचित्त नवयौवना कुल-वधू नम्र हो जाती है ॥ १–९ ॥

[१०] जब भरत दृष्टि-युद्धमें नहीं जीत सका, तो पल भरमें ही जलयुद्ध प्रारम्भ हुआ। पोदनपुरनरेश बाहुबलिने सबसे पहले जलमें ऐसे प्रवेश किया मानो मानसरोवरमें ऐरावत हाथी ही घुसा हो। तब ईर्ष्यासे भरकर, महीपति भरतने पानी हिलोरकर अपने ही भाई पर पानीकी बौछार छोड़ी, मानो महीधरों पर समुद्रने अपनी वेला छोड़ी हो, शीघ्र ही वह जलधारा बाहुबलिकी छाती तक पहुँचकर, असती स्त्रीकी तरह भर्त्सित होकर लौट आई। उसके वक्षस्थल पर हिमकणोंकी तरह स्वच्छ जल ऐसा सोह रहा था मानो आकाशमें तारा-समूह ही घना छिटका हो। फिर बादमें बाहुबलिने भी जलकी धारा भरत पर छोड़ी, उसकी चचल निर्मल उठती हुई तरंग ऐसी लगी मानो आकाश-गंगा ही जा रही हो ॥१–८॥

उतनी बड़ी धारामें पड़कर, कातरमुख भरतेश्वर पीछे हटकर रह गया, और वह वैसे ही नष्ट-सा हो गया जैसे आलिंगनके लिए विकल कोई खोटा संन्यासी विरहकी धारा में पड़कर भग्न हो जाता है ॥ ९ ॥

[११]

ज जिणेँ वि ण सक्किउ सलिल-जुज्झु। पारद्धु पडीवउ मल्ल-जुज्झु ॥ १ ॥
आवील-विकच्छउ वल-महल्ल । अक्खाडएँ णाइँ पइट्ठ मल्ल ॥ २ ॥
ओवग्गिय पुणु किय वाहु-सद्द । णं भिडिय सुवन्त-तियन्त सद्द ॥३॥
वहु-वन्धहिँ दुक्कर-कत्तरीहिँ । विण्णाणहिँ करणहिँ भामरीहिँ ॥ ४ ॥
सहुँ भरहें सुइरु करेवि वासु । पुणु पच्छएँ दरिसिउ णियय-थासु॥५॥
उच्चाइउ उभय-करँहिँ णरिन्दु ।। सक्केण व जम्मणेँ जिण-वरिन्दु ॥६ ॥
एत्थन्तरेँ वाहुवलीसरासु । आमेल्लिउ देवेँहिँ कुसुम-वासु ॥ ७ ॥
किउ कलयलु साहणेँ विजउ घुट्ठु । णरणाहु विलक्खीहूउ सुट्ठु ॥ ८ ॥

घत्ता

चक्क-रयणु परिचिन्तिउ उप्परि घत्तिउ चरम-देहु तें वञ्चिउ ।
पसरिय-कर-णिउरुम्बें दिणयर-विम्बें णाइँ मेरु परिअञ्चिउ ॥ ९ ॥

[१२]

जं मुक्कु चक्कु चक्केसरेण । तं चिन्तिउ वाहुवलीसरेण ॥ १ ॥
'किं पहु अप्फालमि महिहिँ अज्जु । णं णं धिगत्थु परिहरमि रज्जु ॥ २ ॥
रज्जहोँ कारणेँ किज्जइ अजुत्तु । घाएवउ भायरु वप्पु पुत्तु ॥ ३ ॥
कि आएं साहमि परम-मोक्खु । जहिँ लब्भइ अचलु अणन्तु सोक्खु'॥४॥
परिचिन्तेँवि सुइरु मणेण एम । पुणु थविउ णराहिउ डिम्भु जेम ॥५॥
'महु तणिय पिहिमि तुहुँ भुञ्जेँ भाय । सोमप्पहु केर करेइ राय' ॥ ६ ॥

[११] जब जलयुद्धमे भरत नहीं जीत सके तो फिर मल्लयुद्ध प्रारम्भ हुआ ॥ १ ॥

आपील विकथक (काछ कसे हुए) श्रेष्ठ बली वे दोनो मल्ल की भाँति अखाड़े मे घुसे । अपने बाहु ठोककर वह ऐसे लड़े मानो सुबंत तिडंत शब्द ही भिड़ गये हो । बहुबध, कुक्कुट, कर्तरी विज्ञान करण और भामरी (मल्लयुद्धकी क्रियाएँ) के द्वारा उन्होंने भरतके साथ मनमाना खूब व्यायाम किया, फिर बादमे अपने स्थैर्यका प्रदर्शन किया । उन्होंने अपने दोनो हाथोंसे नरेन्द्र भरतको वैसे ही उठा लिया जैसे जन्मके समय इन्द्र बालजिनको उठा लेता है । इसी बीच बाहुबलि पर देवोंने फूलोंकी वर्षा की । विजयहृप्त उसकी सेना कोलाहल करने लगी । राजा भरत अत्यन्त दु.खी हो उठा ॥ १-८ ॥

उसने चिन्तनकर अपना चक्र बाहुबलिके ऊपर छोड़ा पर चरम शरीर वह उससे साफ बच गये । वह ऐसा लगा मानो फैले हुए किरण-जालसे सहित दिनकर-बिम्ब सुमेरु पर्वतकी प्रदक्षिणा करके रह गया हो ॥ ९ ॥

[१२] चक्रवर्तीके इस तरह चक्र चलानेपर, बाहुबलि के मनमे तरह-तरहके विचार आये । उन्होंने सोचा—"क्या मैं प्रभु भरतको धरतीपर गिरा दूँ, नहीं नहीं मुझे धिक्कार है, मैं राज्य छोड़ दूँगा । क्योंकि राज्यके लिए ही अनुचित किया जाता है, इसीके लिए भाई पुत्र और बापका घात किया जाता है । इस धरतीसे क्या ? मै मोक्ष साधूँगा, जहाँ अचल अनत और शाश्वत सुख मिलता है । अपने मनमे यह सब विचार कर, एक दम निश्चिन्त वह गजशिशुकी तरह स्थित हो गये । उन्होंने कहा—"हे भाई, तुम धरतीका भी उपभोग करो, सोमप्रभ भी तुम्हारी सेवा

सुणिसल्लु करेंवि जिणु गुरु भणेवि । थिउ पञ्च मुट्ठि सिरें लोउ देवि ॥७॥
ओलम्बिय-करयलु एक्कु वरिसु । अविओलु अचलु गिरि-मेरु सरिसु ॥८॥

घत्ता

वेढिउ सुट्ठु विसालेंहिँ वेल्ली-जालेंहिँ अहि-विच्छिय-वम्मीयहिँ ।
खणु वि ण मुक्कु भडारउ मयण-वियारउ णं संसारहोँ भीयहिँ ॥ ९॥

[१३]

एत्थन्तरें केवल-णाण-वाहु । कइलासें परिट्ठिउ रिसहणाहु ॥ १ ॥
तइलोक्क-पियामहु जग-जणेरु । समसरणु वि स-गुण स-पाडिहेरु ॥२॥
थोवेंहिँ दिवसेंहिँ भरहेसरो वि । तहोँ वन्दण-हत्तिएँ आउ सो वि ॥३॥
थोत्तुग्गीरिय गुरु-पुरउ भाइ । परलोय-मूलें इहलोउ णाइँ ॥ ४ ॥
वन्देप्पिणु दसविह-धम्म-पालु । पुणु पुच्छिउ तिहुवण-सामिसालु ॥५॥
'वाहुवलि भडारा सुह-णिहाणु । कें कज्जें अज्जु ण होइ णाणु' ॥ ६ ॥
तं णिसुणेंवि परम-जिणेसरेण । वज्जरिउ दिव्व-भासन्तरेण ॥ ७ ॥
'अज्ज वि ईसीसि कसाउ तासु । जं खेत्तें तुहारएँ किउ णिवासु ॥ ८ ॥

घत्ता

जइ भरहहोँ जि समप्पिउ तो किं चप्पिउ मइँ चलणेंहिँ महि-मण्डलु ।
एण कसाएं लइयउ सो पव्वइयउ तेण ण पावइ केवलु' ॥ ९ ॥

[१४]

त वयणु सुणेंवि गउ भरहु तेत्थु । वाहुवलि-भडारउ अचलु जेत्थु ॥ १॥
सव्वङ्गु पडिउ चलणेहिँ तासु । 'तउ तणिय पिहिमि हउँ तुम्ह दासु'२

करेगा"। यह कहकर और निशल्य होकर, उन्होंने जिन-गुरु का नाम ले, पॉच मुष्टियोसे अपने केश उखाड़ लिये। इस तरह बाहुवलि, दोनो हाथ लम्बे कर, एक वर्ष तक, मेरु पर्वतकी तरह अचल और शान्त चित्त होकर खड़े रहे। बड़ी-बड़ी लताओंके जालो, सॉप-विच्छुओ और बॉबियोसे वे अच्छी तरह घिर गये, कामनाशक भट्टारक बाहुवलि एक क्षण भी उनसे मुक्त नहीं हुए मानो जैसे ससारकी भीतियो ही ने उन्हे न छोड़ा हो ॥ १-९ ॥

[१३] इसी के कुछ अनंतर केवलज्ञानबाहु, तीनो लोको को प्रिय लगने वाले जगत्पिता, भगवान् ऋषभ, अपने समवशरण, प्रातिहार्य और गणधरोंके साथ कैलाश पर्वत पर पहुँचे। थोड़े ही दिनोंके बाद सम्राट् भरत उनकी वंदनाभक्तिके लिए वहाँ गया। जिन गुरुके आगे स्तुति करता हुआ वह ऐसा सोह रहा था मानो परलोकके मूलमे इहलोक हो। इस प्रकार दस धर्मों के पालक ऋषभकी वदना करके उसने स्वामिश्रेष्ठ उनसे पूछा—"सुखनिधान बाहुबलिको किस कारण से आज भी केवलज्ञान नहीं हो रहा है ?" यह सुनकर, परम जिनेश्वर ऋषभनाथने अपनी दिव्य भारतीमे कहा, "आज भी थोड़ी सी यह कपाय उसके मनमे है कि मै तुम्हारी (भरत की) धरती पर रह रहा हूँ। जब मैंने अपनी धरती भरतको अर्पित कर दी तो फिर मै पैरकी अगुलियोंसे उसके महिमंडलको क्यो चॉप रहा हूँ ? इसी कषायके कारण उसने दीक्षा ली और इसीसे उसे केवलज्ञान भी उत्पन्न नही हो रहा है ॥ १—९ ॥

[१४] यह वचन सुनकर भरत वहाँ गये जहां बाहुबलि अचल भावसे खड़े हुए थे। साष्टांग उनके पैरो पर गिर कर उसने कहा, "यह धरती तुम्हारी है, मै तुम्हारा किंकर हूँ ।

त्रिणवइ खमावइ एम जाम। चउ घाइ-कम्म गय खयहों ताम ॥३॥
उप्पण्णउ केवल-णाणु विमलु। थिउ देहु खणद्धे दुद्ध-धवलु ॥ ४ ॥
पउमासणु भूसणु सेय-चमरु। भा-मण्डलु एक्कु जें छत्तु पवरु ॥ ५ ॥
अत्थक्कएँ आइउ सुर-णिकाउ। तित्थयर-पुत्तु केवलिउ जाउ ॥ ६ ॥
थोवहिँ दिवसहिँ तिहुअण-जणारि। णासिय घाइय कम्म वि चयारि ॥ ७ ॥
अट्ठविह-कम्म-बन्धण-विमुक्कु। सिद्धउ सिद्धालउ णवर ढुक्कु ॥ ८ ॥

घत्ता

रिसहु वि गउ णिव्वाणहों साणय-थाणहों भरहु वि णिव्वुइ पत्तउ।
अक्ककित्ति थिउ उज्झहें रणु दुग्गेज्झहें रज्जु स इं भु ञ्जन्तउ ॥ ६ ॥

[५. पञ्चमो संधि]

अक्खइ गोत्तम-सामि तिहुअण-लद्ध-पससहुं ।
सुणि सेणिय उप्पत्ति रक्खस वाणर-वंसहुं ॥ १ ॥

[१]

तहिँ जें अउज्झहिँ बहवें कालें। उच्छण्णे णरवर-तरु-जालें ॥ १ ॥
विमलेक्खुक्खु-वंसें उप्पण्णउ। धरणीधरु सुरूव-संपण्णउ ॥ २ ॥
तासु पुत्तु णामें तियसञ्जउ। पुणु जियसत्तु रणङ्गणें दुज्जउ ॥ ३ ॥
तासु विजय महएवि मणोहर। परिणिय थिर-मालूर-पओहर ॥ ४ ॥
ताहें गब्भें भव-भय-खय-गारउ। उप्पज्जइ सुउ अजिय-भडारउ ॥ ५ ॥
रिसहु जेम वसुहार-णिमित्तउ। रिसहु जेम मेरुहिँ अहिसित्तउ ॥ ६ ॥
रिसहु जेम थिउ बालकीलएँ। रिसहु जेम परिणाविउ लीलएँ ॥७॥

क्षमापति भरतके यह निवेदन करते ही बाहुबलिके चार घातिया कर्मों का नाश हो गया। उनको केवलज्ञान उत्पन्न हो गया। क्षण भरमे उनकी देह दूधकी तरह धवल हो उठी। पद्मासन, अलंकार, सफेद चमर, भामंडल, छत्र, प्रकट हो गये। तीर्थकर पुत्र बाहुबलिको केवलज्ञान उत्पन्न हुआ, यह जानकर देवनिकाय तुरत वहाँ गये। कुछ समयके बाद, त्रिभुवन पिता ऋषभ जिन, शेष चार अघातिया कर्मोंका नाश करके, आठ कर्मोंके बधनसे मुक्त हो गये। वह सिद्ध हो चुके थे पर अभी सिद्धालयमे नहीं पहुँचे थे। कुछ समयके अनंतर ऋषभनाथने शाश्वत् निर्वाण लाभ किया। भरतको भी विरक्ति हो गई। और तब राजा अर्ककीर्ति, दानवोसे दुर्ग्राह्य अयोध्याकी राजगद्दी पर आसीन हुआ। वह स्वयं राज्यका उपभोग करने लगा ॥ १–९ ॥

* * *

पाँचवीं संधि

गौतम स्वामीने कहा, 'राजा श्रेणिक तुम तीनों लोकोमे प्रशसा पाने वाले राक्षस और वानरवशकी उत्पत्ति सुनो ॥ १ ॥

[१] अयोध्यामे बहुत समयके बाद, श्रेष्ठ पुरुषरूपी वृक्षजालके उच्छिन्न होने पर, इक्ष्वाकु कुलमे धरणीधर नामका सुन्दर और पुण्यशील राजा हुआ। उसके एक पुत्रका नाम त्रिदशंजय था और दूसरेका जितशत्रु। वह युद्ध-प्रांगणमे अजेय था। उसकी पत्नी विजया अत्यंत सुदरी और बेलफलकी तरह गोल स्तनों वाली थी। उसके गर्भसे भट्टारक अजितका जन्म हुआ। ससारके भयको नष्ट करने वाले उनके जन्मके समय, ऋषभकी भाँति रत्नोकी वर्षा होती रही। ऋषभकी ही तरह मेरु पर्वत पर उनका भी अभिषेक हुआ। इसी तरह बालक्रीड़ा

रिसहु जेम रज्जु इ भुञ्जन्तें । एक्क-दिवसें णन्दणवणु जन्तें ॥ ८ ॥

घत्ता

पवणुद्धुउ सरु दिट्ठु पप्फुल्लिय-सयवत्तउ ।
णाइँ विलासिणि-लोउ उब्भिय-करु णच्चन्तउ ॥ १ ॥

[२]

सो जि महासरु तहिँ जेँ वणालऍ । दिट्ठु जिणाहिवेण वेत्तालऍ ॥ १ ॥
मउलिय-दलु विच्छाय-सरोरुहु । णं दुज्जण-जणु ओहुल्लिय-मुहु ॥ २ ॥
त णिएवि गउ परम-विसायहों । 'लइ एह जि गइ जीवहों जायहों॥ ३
जो जीवन्तु दिट्ठु पुव्वण्हऍ । सो अङ्गार-पुञ्जु अवरण्हऍ ॥ ४ ॥
जो णरवर-लक्खेँहिँ पणविज्जइ । सो पहु सुमउ अवारेँ णिज्जइ ॥ ५ ॥
जिह सञ्झाऍ एउ पङ्कय-वणु । तिह जराऍ घाइज्जइ जोव्वणु ॥ ६ ॥
जीविउ जमेण सरीरु हुआसें । सव्वइँ कालें रिद्धि विणासें' ॥ ७ ॥
चिन्तइ एम भडारउ जावेँहिँ । लोयन्तियहिँ विवोहिउ तावेँहिँ ॥ ८॥

घत्ता

चउविह-देव-णिकाए आएं कलि-मल-रहियउ ।
जिणु पव्वइउ तुरन्तु दसहिँ सहासहिँ सहियउ ॥ ९ ॥

[३]

थिउ छट्ठोववासेँ सुर-सारउ । वम्हयत्त-घरेँ थक्कु भडारउ ॥ १ ॥
रिसहु जेम पारणउ करेप्पिणु । चउदह सवच्छर विहरेप्पिणु ॥ २ ॥
सुक्क-झाणु आऊरिउ णिम्मलु । पुणु उप्पण्णु णाणु तहों केवलु ॥ ३ ॥
अट्ठ वि पाडिहेर समसरणउ । जिह रिसहहों तिह देवागमणउ ॥ ४ ॥
गणहर णवइ लक्खु वर-साहुहुँ । वम्मह-मल्ल-णिसुम्भण-वाहुहुँ ॥ ५ ॥
तहिँ जेँ कालेँ जियसत्तु सहोयरु । तियसञहों पुत्तु जयसायरु ॥ ६ ॥
जयसायरहों पुत्तु सुमणोहरु । णामेँ सयरु सयल-चक्केसरु ॥ ७ ॥

और विवाह भी। एक दिन, नंदन वनको जाते हुए अजितको एक सरोवर मिला उसमे कमल खिले हुए थे। पवनसे हिलता हुआ वह ऐसा जान पड़ता था मानो हाथ ऊपर करके विलासिनियोका समूह ही नाच रहा हो ॥ १-९ ॥

[२] लेकिन उसी वनमे जब सायंकाल उन्होने उस महा-सरोवरको देखा तो कमल मुकुलितदल और कांतिहीन हो रहे थे, मानो अधोमुख दुर्जनजन ही हो। वह दृश्य देखकर उन्हे बहुत विषाद हुआ। वह सोचने लगे, "संसारमे उत्पन्न प्रत्येक जीवकी यही दशा होगी। दिनके पूर्वभागमे जो सूरज जीवित दिखाई देता है उसके अन्तिम भागमे वही अगारोका पुंज-मात्र रह जाता है, जिसे लाखों श्रेष्ठ व्यक्ति प्रणाम करते हैं वही स्वामी असमयमे अकेला ही मर जाता है? जीवका यमसे, शरीरका आगसे, शक्तिका समयसे, ऋद्धिका विनाशसे अन्त हो जाता है।" जब भट्टारक अजित इस तरह चिंता कर ही रहे थे कि लौकान्तिक देवोने आकर उन्हें प्रबोधित किया ॥१-८॥

चारो निकायोंके देवोंके आने पर कलिमल रहित, जिनने दस हजार लोगोके साथ तुरन्त प्रव्रज्या ग्रहण कर ली ॥ ९ ॥

[३] उपवास करनेके अनन्तर, सुरश्रेष्ठ वह, ब्रह्मदत्तके घर पहुँचे। वहाँ उन्होने ऋषभ जिनकी तरह आहार ग्रहण किया। चौदह वर्ष विहार कर वह निर्मल शुक्ल ध्यानमे स्थित हुए। तब फिर उन्हें केवलज्ञान उत्पन्न हुआ। फलत. ऋषभ जिनकी तरह, आठ प्रातिहार्य, समवशरण और देवागमन आदि वाते उनको भी हुई। उनके नौ गणधर, और कामदेवरूपी मल्लके नाशक बाहुवाले एक लाख साधु, उनके भी साथ थे। उनके समयमे त्रिदशंजयका पुत्र, जयसागर हुआ। उसका एक भाई जितशत्रु भी था। जयसागरके पुत्रका नाम सगर था, जो अत्यन्त सुन्दर और सकल चक्रवर्ती था। भरतके

भरहु जेम सहुँ णवहिँ णिहाणहिँ । रयणेँहि चउदह-विहहिँ-पहाणहिँ ॥८॥

घत्ता

सयल-पिहिमि-परिपालु एक्क-दिवसँ चडुलङ्गें ।
जीउ व कम्म-वसेण णिउ अवहरेँवि तुरङ्गें ॥ ९ ॥

[४]

दुट्ठु तुरङ्गमु चञ्चल-छायहोँ । गयउ पणासेँवि पच्छिम-भायहोँ ॥ १ ॥
पइसइ सुण्णारण्णु महाडइ । जहिँ कलि-कालहोँ हियवउ पाडइ ॥२॥
दुक्खु दुक्खु हरि दमिउ णरिन्दें । ण मयरद्धउ परम-जिणिन्दें ॥ ३ ॥
ताम महा-सरु दीसइ स-कमलु । चल-वीई तरङ्ग-भङ्गुर-जलु ॥ ४ ॥
तहिँ लय-मण्डवेँ उप्पल्लाणेँवि । सलिलु पिएवि तुरङ्गमु ण्हाणेँवि ॥ ५ ॥
समु मेल्लइ वेत्तालहोँ जावेँहिँ । तिलयकेस सम्पाइय तावेँहिँ ॥ ६ ॥
धीय सुलोयणाहोँ बलवन्तहोँ । बहिणि सहोयरि दससयणेत्तहोँ ॥७ ॥
फिर सहुँ सहियहिँ ढुक्कइ सरवरु । दीसइ ताम सयरु पिहिमीसरु ॥८॥

घत्ता

विद्धी काम-सरेहिँ एक्कु वि पउ ण पयट्टइ ।
णाइँ सयम्वर-माल दिट्ठि णिवहोँ आवट्टइ ॥ ९ ॥

[५]

केण वि कहिउ गम्पि सहसक्खहोँ । 'कोऊहल्लु कि एउ ण लक्खहोँ ॥ १॥
एक्कु अणङ्ग-समाणु जुवाणउ । णउ जाणहुँ कि पिहिमिहेँ राणउ ॥ २ ॥
तं पेक्खेँवि सस तुम्हहँ केरी । काम-गहेण हूअ विवरेरी' ॥ ३ ॥
त णिसुणेवि राउ रोमञ्चिउ । अब्भन्तरेँ आणन्दु पणच्चिउ ॥ ४ ॥
'णेमित्तियहिँ आसि जं वुत्तउ । एँउ तं सयरागमणु णिरुत्तउ' ॥ ५ ॥
मणेँ परिचिन्तेँवि पप्फुल्लाणणु । गउ तुरन्तु तहिँ दससयलोयणु ॥६ ॥
तें चउसट्ठि-पुरिसलक्खण-धरु । जाणेँवि सयरु सयल-चक्केसरु ॥ ७ ॥

समान उसके पास भी नौ निधियाँ और चौदह मुख्य रत्न थे। समस्त धरतीके पालक राजा सगरको उसका चंचल घोड़ा, एक दिन हरण करके कहीं दूर उसी प्रकार ले गया जिस प्रकार कर्म अपनी अधीनतामे जीवको ले जाता है ॥ १–९ ॥

[४] वह दुष्ट घोड़ा उसे उस बियावान घने जगलमे ले गया जहाँ कलि और कालका भी हृदय दहल उठता। बड़ी कठिनाईसे वह घोड़ेका दमन कर सका मानो जिनने कामदेवका दमन किया हो। इतनेमे उसने चचल लहरो और तरंगोंसे भगुर जलवाला, कमलोसे सहित एक महासरोवर देखा। वह वही लतामडपमे उतर पड़ा। पानी पोकर उसने घोड़ेको नहलाया। सध्या समय वह थकान उतार ही रहा था कि तिलककेशा वहाँ आई। वह बलशाली सुलोचनकी लड़की सहस्राक्षकी बहन थी। सहेलियोके साथ जैसे ही वह सरोवर पर पहुँची वैसे ही उसे पृथ्वीश्वर सगर दिखाई दिया ॥ १–८ ॥

काम-बाणोसे आविद्ध होकर, वह एक भी पग नही चल सकी। वह जैसे राजाके लिए स्वयवर माला की तरह दीख पड रही थी ॥ ९ ॥

[५] किसीने सहस्राक्षसे जाकर कहा, "क्या तुम यह एक कुतूहल नहीं देखते। एक कामके समान सुन्दर युवक है। मैं नही जानता वह किस धरतीका राजा है। उसे देखकर तुम्हारी बहन कामके वशीभूत हो गई है।" यह सुनकर राजा पुलकित हो उठा, मन ही मन वह नाच उठा। "ज्योतिषियोका कहा सच्चा निकला, निश्चय ही यह चक्रवर्ती सगर ही आये हैं" मनमे यह विचार करते ही उसका चेहरा खिल उठा। वह सगरके पास गया। चौदह लक्षणोसे युक्त, उन्हे चक्रवर्ती जानकर, हाथ माथेसे लगाकर उसने जय जयकार किया?

सिरेँ करयल करेवि जोक्कारिउ । दिण्ण कण्ण पुणु पुरेँ पइसारिउ ॥ ८॥

घत्ता

लीलएँ भवणु पइट्ठु विज्जाहर-परिवेढिउ ।
तूसेंवि दिण्णउ तेण उत्तर-दाहिण-सेढिउ ॥ ९ ॥

[६]

तिलकेस लएप्पिणु गउ सयरु । पइसरिउ अउज्झाउरि-णयरु ॥ १ ॥
सहसक्खु वि जणण-वइरु सरेँवि । विज्जाहर-साहणु मेलवेँवि ॥ २ ॥
गउ उप्परि तासु पुण्णघणहोँ । जें जीविउ हरिउ सुलोयणहोँ ॥ ३ ॥
रहणेउरचक्कवालण-यरेँ । विणिवाइउ पुण्णमेहु समरेँ ॥ ४ ॥
जो तोयदवाहणु तासु सुउ । सो रणमुहेँ कह वि कह व्वि ण मुउ ॥ ५ ॥
गउ हंस-विमाणें तुट्ठ-मणु । जहिँ अजिय-जिणिन्द-समोसरणु ॥ ६ ॥
सम्भीस दिण्ण अमरेसरेँण । स-वइर-वित्तन्तु कहिउ णरेँण ॥ ७ ॥
जे रिउ अणुपच्छएँ लग्ग तहोँ । गय पासु पडीवा णिय-णिवहोँ ॥ ८ ॥

घत्ता

तोयदवाहणु देव पाण लएविणु णट्ठउ ।
जिम सिद्धालएँ सिद्धु तिम समसरणें पइट्ठउ ॥ ९ ॥

[७]

तं णिसुणेंवि पहु झत्ति पलित्तउ । णं खढ-हारु हुआसणें घित्तउ ॥ १ ॥
'मरु मरु जइ वि जाइ पायालहोँ । विसहर-भवण-मूल-घण-जालहोँ ॥२॥
पइसइ जइ वि सरणु सुर-सेवहुँ । दसविह-भावणवासिय-देवहुँ ॥ ३ ॥

कन्या उसे दे दी और नगरमें उनका प्रवेश कराया ॥ १-८ ॥

राजा सगरने भी विद्याधरोंके साथ, क्रीड़ापूर्वक नगरमे प्रवेश किया। राजाने भी संतुष्ट होकर विजयार्ध पर्वतकी उत्तर और दक्षिण श्रेणियाँ उसे भेट कीं ॥ ९ ॥

[६] तिलककेशाके साथ राजा सगर अयोध्या नगरी पहुँचा। उधर सहस्राक्षने भी अपने पिताका वैर-निर्यातन करनेके लिए, विद्याधरोंकी सेना लेकर मेघवाहन पर चढ़ाई की। क्योंकि उसने उसके पिता सुलोचनका वध किया था। रथनूपुरचक्रवाल नगरमे यद्यपि मेघवाहन मारा गया परन्तु उनका पुत्र तोयदवाहन युद्धमे किसी तरह बच गया। प्रसन्नमन वह हंसविमानमे बैठकर तुरन्त अजितजिनके समवशरणमे पहुँच गया। वहाँ अपने वैरीका वृत्तान्त बताने पर इन्द्रने उसे अभय दान दिया। सहस्राक्षके जो सैनिक पीछे लगे थे वे भी लौट कर राजाके पास आ गये ॥ १-८ ॥

वे बोले, देव ! तोयदवाहन प्राण लेकर भाग गया। वह समवशरणमे वैसे ही घुस गया जैसे सिद्धालयमें सिद्ध पुरुष चले जाते हैं ॥ ९ ॥

[७] यह सुनकर सहस्राक्ष तुरंत क्रोधसे भड़क उठा, मानो तिनकोंका समूह आगमे जल उठा हो। (वह चिल्ला उठा) "मारो-मारो उसे, चाहे वह पातालमें घुसे, चाहे मेघोंमें। चाहे सुरसेवियोंकी शरणमे जाय या दस प्रकारके भवनवासी देवोंकी शरणमे। चाहे वह दुर्वार पाँच ज्योतिषियोंकी शरणमे प्रविष्ट हो, चाहे स्थिर स्थान आठ प्रकारके व्यन्तर देवोंकी शरणमें।

पइसइ जइ वि सरणु थिर-थाणहुँ । अट्ठ विहहुँ विन्तर-गिव्वाणहुँ ॥ ४ ॥
पइसइ जइ वि सरणु दुव्वारहुँ । जोइस-देवहुँ पञ्च-पयारहुँ ॥ ५ ॥
कप्पामरहुँ जइ वि अहमिन्दहुँ । वरुण-पवण-वइसवण-सुरिन्दहुँ ॥ ६ ॥
मरइ तो वि महु तोयदवाहणु' । पइज करेंवि गउ दससयलोयणु ॥ ७॥
पेक्खेवि माणत्थम्भु जिणन्दहों । मच्छरु माणु वि गलिउ णरिन्दहों ॥ ८ ॥
सो वि गम्पि समसरणु पइट्ठउ । जिणु पणवेप्पिणु पुरउ णिविट्ठउ ॥ ९ ॥
विहि मि भवन्तराइँ वज्जरियइँ । विहि मि जणण-वइरइँ परिहरियइँ ॥१०

घत्ता

भीम सुभीमेंहिँ ताम अहिणव-गहिय-पसाहणु ।
पुव्व-भवन्तर णेहें अवरुण्डिउ घणवाहणु ॥११॥

[८]

पभणइ भीमु भीम-भउ-भञ्जणु । 'तुहुँ महु अण्ण-भवन्तरें णन्दणु ॥ १ ॥
जिह चिरु तिह एवहि मि पियारउ' । चुम्बिउ पुणु वि पुणु वि सयवारउ॥२॥
'लइ कामुक-विमाणु अवियारें । लइ रक्खसिय विज्ज सहुँ हारें ॥ ३ ॥
अण्णु वि रयणायर-परियञ्चिय । दुप्पइसार सुरेहि मि वञ्चिय ॥ ४ ॥
तीस परम जोयण वित्थिण्णी । लङ्का-णयरि तुज्झु मइँ दिण्णी ॥ ५ ॥
अण्णु वि एक्क-वार छज्जोयण । लइ पायाललङ्क घणवाहण' ॥ ६ ॥
भीम-महाभीमहुँ आएसें । दिण्णु पयाणउ मणें परिओसें ॥ ७ ॥
विमलकित्ति-विमलामल-मन्तिहिँ । परिमिउ अवरेहि मि सामन्तेहिँ॥ ८ ॥

घत्ता

लङ्काउरिहिँ पइट्ठु अविचलु रज्जें परिट्ठिउ ।
रक्खस-वंसहों णाइँ पहिलउ कन्दु समुट्ठिउ ॥ ९ ॥

[९]

एहवें कालें वल-सम्पत्तिएँ । अजिय-जिणहों गउ वन्दण-हत्तिए ॥ १ ॥
तं समसरणु पईसइ जावेंहिँ । सयरु वि तहिँ जे पराइउ तावेंहिँ ॥ २ ॥
पुच्छिउ णाहु पिहिमि-परिपालें । 'कइ होसन्ति भवन्तें कालें ॥ ३ ॥

चाहे वह कल्पवासी देव, अहमिन्द्र, पवन, वरुण, वैश्रवण (धनद) और सुरेन्द्रकी भी शरणमे क्यो न चला जाय तब भी तोयदवाहन मुझसे मरेगा।" यह प्रतिज्ञा करके सहस्राक्ष वहॉ गया। पर जिनेन्द्रका मान-स्तम्भ देखते ही राजाका मत्सर और मान गलित हो गया, वह भी जाकर समवशरण मे प्रविष्ट हुआ और जिनकी वन्दना करके सामने बैठ गया। दोनोंके जन्मान्तर बताने पर उनका वैरभाव चला गया तभी अभिनव साधनोसे सम्पन्न, घनवाहनका पूर्वजन्म के स्नेहसे, भीम और सुभीमने आलिङ्गन किया ॥ १–११ ॥

[८] भयकर शत्रुओके सहारक भीमने कहा—"तुम मेरे उस जन्मके पुत्र हो, तुम अब भी मुझे वैसे ही प्रिय हो जैसे तब थे।" फिर उसने बार बार उसे सौ बार चूमा। और कहा, "यह अविकारी कामुक रथ लो और नये कठहार के साथ लो। इस विद्याकी भी रक्षा करो और भी समुद्रोसे घिरी हुई देवोके लिए भी अप्रवेश्य तीन योजन वाली यह लंका नगरी लो, मैंने यह तुम्हें दी। और भी हे घनवाहन, छः योजनकी एक द्वार वाली यह पाताल लंका लो।" तब भीम और महाभीमके आदेशसे मनमे सन्तुष्ट होकर विमलकीर्ति, विमलामल मंत्रियो और अन्य सामन्तोके साथ उसने प्रस्थान किया ॥ १–८ ॥

लंका नगरीमे प्रवेश कर अविचल राज्यमे प्रतिष्ठित वह मानो राक्षसवशका पहला अकुर फूटा हो ॥ ९ ॥

[९] बहुत समयके बाद शक्ति-संचयकर वह अजित जिनकी वंदना भक्तिके लिए गया। उसके समवशरणमे प्रवेश करते ही चक्रवर्ती सगर भी वहॉ आ पहुँचा। पृथ्वीपतिने अजित-नाथसे पूछा, "आपके समान व्रती गुणशील, देवोका अतिक्रमण

तुम्हे जेहा वय-गुण वन्ता । कइ तित्थयर देव अइकन्ता ॥ ४ ॥
तं णिसुणेंवि कन्दप्प-वियारउ । मागह-भासएँ कहइ भडारउ ॥ ५ ॥
'मइँ जेहउ केवल-संपण्णउ । एक्कु जि रिसहु देउ उप्पण्णउ ॥ ६ ॥
पइँ जेहउ छक्खण्ड-पहाणउ । भरह-णराहिउ एक्कु जि राणउ ॥ ७ ॥
पइँ विणु दस होसन्ति णरेसर । मइँ विणु वावीस वि तित्थङ्कर ॥ ८ ॥
णव वलएव णव जि णारायण । हर एयारह णव जि दसाणण ॥ ९ ॥
अण्णु वि एक्कुणसट्ठि पुराणइँ । जिण-सासणेँ होसन्ति पहाणइँ' ॥ १० ॥

घत्ता

तोयदवाहणु ताम भावेँ पुलउ वहन्तउ ।
दस-उत्तरेँण सएण भरहु जेम णिक्खन्तउ ॥ ११ ॥

[१०]

णिय-णन्दणहोँ णिहय-पडिवक्खहोँ । लङ्का-णयरि दिण्ण महरक्खहोँ ॥ १ ॥
वहुवे कालें सासय-थाणहोँ । अजिय भडारउ गउ णिव्वाणहोँ ॥ २ ॥
सयरहोँ सयल पिहिमि भुञ्जन्तहोँ । रयण-णिहाणइँ परिपालन्तहोँ ॥ ३ ॥
सट्ठि सहास हूय वर-पुत्तहुँ । सयल-कला-विण्णाण-णिउत्तहुँ ॥ ४ ॥
एक्क दिवसेँ जिण-भवण-णिवासहोँ । वन्दण-हत्तिएँ गय कइलासहोँ ॥ ५ ॥
भरह कियइँ मणि-कञ्चण-माणइँ । चउवीस वि वन्देप्पिणु थाणइँ ॥ ६ ॥
भणइ भईरहि सुट्ठु वियक्खणु । करहुँ किं पि जिण-भवणहुँ रक्खणु ॥ ७ ॥
कड्ढे वि गङ्ग भमाडहुँ पासेँहिँ । तं जि समत्थिउ भाइ-सहासेंहिँ ॥ ८ ॥

घत्ता

दण्ड-रयणु परिचिंतेंवि खोणि खणन्तु भमाडिउ ।
पायालहरि णाइँ वियड-उरत्थलु फाडिउ ॥ ६ ॥

[११]

तक्खणेँ खोहु जाउ अहि-लोयहोँ । धरणिन्दहोँ सहास-फड-डोयहोँ ॥ १ ॥
आसीविस-दिट्ठिएँ णिक्खत्तिय । सयल वि छारहोँ पुञ्जु पवत्तिय ॥२ ॥

करनेवाले कितने तीर्थंकर आगे होंगे।" यह सुनकर, जितकाम भट्टारक अजितनाथने मागधी भाषामे उत्तर दिया। "जैसा केवलज्ञान मुझे प्राप्त हुआ है, वैसा अभीतक केवल ऋषभनाथ-को प्राप्त हुआ है और तुम्हारे समान ही छ खंड धरतीका अधिपति, केवल भरत है। अतः तुम्हारे समान दस राजा और मेरे समान बाईस तीर्थंकर होंगे। नौ बलदेव, नौ नारायण, नौ प्रतिबलभद्र, ग्यारह शिव, नौ दशानन तथा अन्य और भी उनसठ प्रसिद्ध पुरुष, (शलाकापुरुष) जिन-शासनमे होंगे॥१-८॥

यह सुनकर, तोयदवाहनने भी रोमांचित होकर, एकसौ दस लोगोंके साथ, भरतकी ही तरह दीक्षा ले ली ॥ ९ ॥

[१०] शत्रुसंहारक अपने पुत्र महाराक्षसको उसने लंकानगरी सौंप दी। बहुत समयके बाद भट्टारक अजितनाथने निर्वाण-लाभ किया। राजा सगर भी धरतीका भोग और रत्न तथा निधियोंकी रक्षा करता रहा। उसके, सम्पूर्ण विज्ञान और कलाओ मे निपुण साठ हजार उत्तम पुत्र हुए। एक दिन वे लोग जिन-भवनोके आश्रयभूत कैलाश पर्वतकी वंदनाभक्ति करनेके लिए गये। वहाँ उन्होंने भरत द्वारा निर्मित, मणि-सुवर्णमयी चौबीस जिनमूर्तियोंकी वंदना की। इतनेमे अत्यत चतुर भगीरथके मनमे विचार आया कि इन जिनभवनोकी किसी तरह रक्षा करूँ, क्यो न इनके चारो ओर गङ्गा घुमा दूँ। अपने हजारो भाइयोकी सहा-यतासे मैं यह काम करनेमे समर्थ हूँ। उसने अपने दंडरत्नका ध्यान किया और धरती खोदते हुए उसे घुमा दिया। उसने पाताल-गिरिके विकट उरस्थलकी तरह धरती विदीर्ण कर दी ॥१-९॥

[११] फिर क्या था, तत्काल नागलोकमें खलबली मच गई, धरणेन्द्रके हजार फन डोल उठे। उसने अपनी त्रिपैली दृष्टिसे सबको नष्ट कर दिया, सबके सब राखके ढेर हो गये। किसी

कंह वि कह वि ण वि दिट्ठिहिँ पडिया । भीम-भईरहि वे उव्वरिया ॥ ३ ॥
दुम्मण दीण-वयण परियत्ता । लहु सक्केय-णयरि संपत्ता ॥ ४ ॥
मन्तिहिँ कहिउ 'कह वि तिह भिन्दहों । जिह उड्डन्ति ण पाण णरिन्दहों' ५
ताम सहा-मण्डउ मण्डिज्जइ । आसणु आसणेण पीडिज्जइ ॥ ६ ॥
मेहलु मेहलेण आलग्गें । हारें हारु मउड्ड मउडग्गें ॥ ७ ॥
सयर-णरिन्दासण-सकासइँ । वइसणाहु वाणवइ सहासइँ ॥ ८ ॥

घत्ता

णरवइ आउल-चित्तु सव्वत्थाणु विहावइ ।
सट्ठि सहासहुँ मज्झें एक्कु वि पुत्तु ण आवइ ॥ ९ ॥

[१२]

भीम-भईरहि ताम पइट्ठा । णिय-णिय-आसणें गम्पि णिविट्ठा ॥ १ ॥
पुच्छिय पुणु परिपालिय-रज्जे । 'इयर ण पइसरन्ति कि कज्जे ॥ २ ॥
तेहिँ विणासणाइँ विच्छायइँ । तामरसाइँ व णिद्धुयगायइँ ॥ ३ ॥
तं णिसुणेवि वयणु तहों मन्तिहिँ । जाणाविउ पच्छण्ण-पउत्तिहिँ ॥ ४ ॥
'हे णरवइ णिय-कुलहों पईवा । गय दियहा कि एन्ति पडीवा ॥ ५ ॥
जलवाहिणि-पवाह णिव्वूढा । परियत्तन्ति काइँ ते मूढा ॥ ६ ॥
घण-घट्टियइँ विज्जु-विप्फुरियइँ । सुविणय-वालभाव-सचरियइँ ॥ ७ ॥
जलवुव्वुव-तरङ्ग-सुरचावइँ । कइ दीसन्ति विणासु ण भावइ ॥ ८ ॥

घत्ता

भरह-वाहुवलि-रिसह काल-भुअङ्गें गिलिया ।
कउ दीसन्ति पडीवा उज्झहिँ एक्कहिँ मिलिया ॥ ९ ॥

[१३]

जं णिहरिसु समासएँ दिण्णउ । तं चक्कवइहेँ हियवउ भिण्णउ ॥ १ ॥
'तेण जॅ ते अत्थाणु ण ढुक्का । फुड्डु महु केरउ पेसणु चुक्का ॥ २ ॥
लद्धावसरेंहिँ जं अणुहुन्तउ । भइरहि-भीमहिँ कहिउ णिरुत्तउ ॥ ३ ॥

तरह भीम और भगीरथ उसकी दृष्टिमे नही आ सके, इसलिए बच निकले। उन्मन और दीनमुख लिये वे दोनों शीघ्र ही अयोध्या आ गये। तब मंत्रियोंने सोचा कि यह बात राजा सगरको इस तरह बताना चाहिए जिससे उनके प्राण न उड़े। उन्होंने ऐसा सभामंडप तैयार करवाया जिसमे आसनसे आसन सटे हुए थे, मेखलासे मेखला लगी हुई थी, हारसे हार और मुकुटसे मुकुट। सगर राजाके आसनके समान ही ९२ हजार और आसन बनवा दिये गये ॥ १-८ ॥

राजाने आकुलमनसे सब आसनोको देखा पर उसके साठ हजार पुत्रोंमेसे एक भी पुत्र उसकी दृष्टिमें नही आया ॥ ९ ॥

[१२] ठीक इसी समय भीम और भगीरथ आकर अपने-अपने आसन पर बैठ गये। राजाने उनसे पूछा—"दूसरे लोग क्यो नहीं आये यहाँ?" पुत्रोंके विनाशसे कंपित शरीर वे दोनों कातिहीन रक्तकमलकी तरह हो उठे। उसके ये वचन सुनकर मंत्रियोंने कुशलवाणीमे सब बात बता दी। उन्होंने कहा—"निजकुल-दीपक हे देव! गये हुये दिन क्या फिर लौटकर आते हैं? जो नदी (काल) के प्रवाहमें डूब गये, उनका सोच अज्ञानी जन ही करते हैं। मेघोकी घटा, बिजली की चमक, स्वप्न और बालभावकी चपलता, जल-बुद्बुद, तरग और इन्द्रधनुप–इनका अंत देखते हुए किसे अच्छा नहीं लगता? भरत, बाहुबलि और ऋपभको भी कालरूपी सर्पने डस लिया। तब ये सब मिलकर एक बार फिरसे अयोध्यामे कैसे दिखेंगे॥१-९॥

[१३] समासोक्ति (अन्यके व्याज) से मंत्रियोंने जो दृष्टान्त दिये थे, उनसे राजाका हृदय विदीर्ण हो गया। उसने सोचा कि जिस कारणसे उसके पुत्र आज दरबारमे नहीं आये, उसीसे मेरे शासनका अंत आ पहुँचा। तब अवसर पाकर भगीरथ

तं णिसुणेवि राउ मुच्छंगउ । पडिउ महद्दुमुव्व पवणाहउ ॥ ४ ॥
तहि मि कालेँ सामिय-सम्माणेँहिँ । भिच्चहिँ जेम ण मेल्लिउ पाणेँहिँ ॥५॥
दुक्खु दुक्खु दूरुज्झिय-वेयणु । उट्ठिउ स-वड्ढागय-चेयणु ॥ ६ ॥
'किं सोएं किं खन्धावारें । वरि पावज्ज लेमि अवियारें ॥ ७ ॥
आयएँ लच्छिएँ वहु जुज्झाविय । पाहुणया इव वहु वोलाविय ॥ ८ ॥

घत्ता

जो जो को वि जुवाणु तासु तासु कुलउत्ती ।
मेइणि छेन्छइ जेम कवणे णरेँण ण भुत्ती' ॥ ९ ॥

[१४]

पभणिउ भीमु 'होहि दिढु रज्जहोँ । हउँ पुणु जामि थामि णिय-कज्जहोँ' १
तेण वि वुत्तु 'णाहिँ वउ भञ्जमि । छेन्छइ पइँ जि कहिय णउ भुञ्जमि' २
चत्तु भीमु भइरहि हक्कारिउ । दिण्ण पिहिमि वइसणेँ वइसारिउ ॥ ३ ॥
अप्पुणु भरहु जेम णिक्खन्तउ । तउ करेवि पुणु णिव्वुइ पत्तउ ॥ ४ ॥
ता एत्तहेँ विणिहय-पडिवक्खहोँ । रज्जु करन्तहोँ तहोँ महरक्खहोँ ॥ ५ ॥
देवरक्खु उप्पण्णउ णन्दणु । णरवइ एक्क-दिवसेँ गउ उववणु ॥ ६ ॥
कीलण-वाविहेँ परिमिउ णारिहिँ । ण्हाइ गइन्दु व सहुँ गणियारिहिँ ॥७॥
णिवडिय तासु दिट्ठि तहिँ अवसरे । जहिँ मुउ महुयरु कमलब्भन्तरेँ ॥८॥

घत्ता

चिन्तिउ 'जिह धुअगाउ रस-लम्पडु अच्छन्तउ ।
तिह कामाउरु सव्वु कामिणि-वयणासत्तउ' ॥ ९ ॥

[१५]

णिय मणेँ जाइ विसायहोँ जावेँहिँ । सवण-सङ्घु सपाइउ तावेँहिँ ॥ १ ॥
सयल वि रिसि तियाल-जोगेसर । महकइ गमय वाइ वाईसर ॥ २ ॥

और भीमने आपबीती सुनाई। वह सुनते ही राजा, पवनसे आहत पेड़की तरह मूर्छित होकर धरती पर गिर पड़ा। परन्तु स्वामिद्वारा सम्मानित उसके सेवकोंने उसे सम्हाला जिससे उसके किसी तरह प्राण बच गये। बड़े कष्टसे उसकी वेदना दूर हुई। अंगोंमें कुछ चेतना आने पर वह उठा। उसने सोचा, शोकसे क्या, और स्कन्धावारसे क्या? मैं अविकारभावसे प्रव्रज्या ग्रहण करूँगा। यह लक्ष्मी कितनोंको ही लड़वा देती है, पाहुनोंकी तरह बहुतोंको बुलाती है! जो कोई भी युवक होता है यह उसीकी कुलपुत्री बन बैठती है, पुंश्चलीकी भाँति इस धरतीका बताओ किस मनुष्यने भोग नहीं किया ॥ १-९ ॥

[१४] तब उसने भीमसे कहा, "दृढ़तासे अपना राज्य करो अब मैं जाकर अपना काम साधता हूँ।" पर भीमने कहा—"मैं भी इसे नहीं भोगूँगा जिसे आपने वेश्या कहा, उसका भोग मैं भी नहीं करूँगा।" त्यागी भीमने भगीरथको बुलाकर धरतीको सौंप उसे सिंहासनपर बैठा दिया। उसने स्वयं भरतकी तरह जिनदीक्षा ले तप साध निर्वाण प्राप्त किया। इसी अन्तरालमें राज्य करते हुए लंकामें शत्रुसंहारक महाराक्षसके देवराक्षस नामका पुत्र उत्पन्न हुआ। एक दिन राक्षसराज वापीमें जलक्रीडाके लिए स्त्रियोंके साथ वनको गया। जैसे हाथी हथिनियोंके साथ नहाते है, वैसे ही स्नान करते हुए उसनें कमलके भीतर मरा हुआ एक भौंरा देखा ॥१-८॥

सहसा उसके मनमें विचार आया कि जिस तरह कंपित-शरीर रसलोलुप यह भ्रमर है, उसी तरह कामातुर कामिनी-सुखमें आसक्त दूसरे लोग भी हैं ॥ ९ ॥

[१५] मन ही मन वह विषाद कर ही रहा था कि एक श्रमण-संघ वहाँ आ पहुँचा। उसमें सभी ऋषि, त्रिकालयोगेश्वर, महाकवि और प्रतिवादियोंको ज्ञान देनेवाले वागीश्वर थे। सभी

सयल वि वन्धु-सत्तु-समभावा । तिण-कञ्चण-परिहरण-सहावा ॥ ३ ॥
सयल वि जल्ल-मलङ्किय-देहा । धीरत्तणेण महीहर-जेहा ॥ ४ ॥
सयल वि णिय-तव-तेएं दिणयर । गम्भीरत्तणेण रयणायर ॥ ५ ॥
सयल वि घोर-वीर-वव-तत्ता । सयल वि सयल-सङ्ग-परिचत्ता ॥ ६ ॥
सयल वि कम्म-वन्ध-विद्धंसण । सयल वि सयल-जीव-मम्भीसण ॥ ७ ॥
सयल वि परमागम-परियाणा । काय-किलेसेक्केक्क-पहाणा ॥ ८ ॥

घत्ता

सयल वि चरम-सरीर सयल वि उज्जुय-चित्ता ।
णं परिणणहँ पयट्ट सिद्धि-वहुय वरइत्ता ॥ ९ ॥

[१६]

तो एत्थन्तरें पहु आणन्दिउ । सो रिसि सङ्घु तुरन्तें वन्दिउ ॥ १ ॥
पभणिउ विण्णवेवि सुयसायर । भो भो भव्वम्भोय-दिवायर ॥ २ ॥
भव संसार-महण्णव-णासिय । करें पसाउ पव्वज्जहें सामिय' ॥ ३ ॥
जम्पइ साहु 'साहु लङ्केसर । पइँ जीवेवउ अट्ठ जें वासर ॥ ४ ॥
जं जाणहि तं करहि तुरन्तउ' । णिविसद्धेण सो वि णिक्खन्तउ ॥ ५ ॥
अट्ठ दिवस सल्लेहण भावेंवि । अट्ठ दिवस दाणइँ देवावेंवि ॥ ६ ॥
अट्ठ दिवस पुज्जउ णीसारेंवि । अट्ठ दिवस पडिमउ अहिसारेंवि ॥ ७ ॥
अट्ठ दिवस आराहण वाएँवि । गउ मोक्खहों परमप्पउ झाएँवि ॥ ८ ॥

घत्ता

तहों महरक्खहों पुत्तु देवरक्खु वलवन्तउ ।
थिउ अमराहिउ जेम लङ्क स इं भु अन्तउ ॥ ९ ॥

*

शत्रु-मित्रमें समभाव रखते थे और सोनेको तृणवत् समझते थे। मलिन शरीर होकर भी वे धीरजमें पर्वत, अपने तपमें सूर्य, गम्भीरतामें समुद्र और घोर तपस्वी थे। वे कर्मबंधका नाश करने वाले, सकल परिग्रहको छोड़नेवाले, कर्मबन्धके विध्वंसक, सब जीवोंको अभय देनेवाले, आगमज्ञाता, कायक्लेशमें प्रमुख, चरमशरीर, सरलचित्त थे। मानो वे सिद्धि रूपी वधूसे विवाह करनेवाले वर ही थे॥ १-९॥

[१६] ऋषि-संघकी खबर पाकर राजा बहुत आनन्दित हुआ। वह तुरंत उनके दर्शनके लिए गया। वंदनाके बाद उसने विनय शुरू की—"हे भव्यजन रूपी कमलोंके दिवाकर, हे श्रुत-सागर, हे भवसागरका अन्त करनेवाले, कृपाकर मुझे दीक्षा दीजिए।" तब उन्होंने कहा—"साधु साधु लकेश्वर! तुम आठ रोज और जीवित रहोगे, इसलिए जो ठीक समझो उसे फौरन कर डालो।" वह भी आधे पलमें ही दीक्षित हो गया। आठों ही दिन संलेखनाका ध्यानकर, आठों ही दिन दान दिलवाकर, आठों ही दिन पूजा निकलवाकर, आठों ही दिन आराधना (कथाकोष) पढ़कर, आठों ही दिन जिन-प्रतिमाका अभिषेक कर वह परमपदका ध्यानकर मोक्ष चला गया॥ १-८॥

तदनन्तर उसका पुत्र देवराक्षस इंद्रकी तरह ठाटबाटसे लंकाका राज्य भोगने लगा॥ ९॥

\+ \+

[६. छट्ठो संधि]

चउसट्ठिहिँ सिंहासणेँहिँ अइकन्तेँहिँ आणन्तएँ भित्तिएँ।
पुणु उप्पण्णु कित्तिधवलु धवलिउ जेण भुअणु णिय-कित्तिएँ॥ १॥

यथा प्रथमस्तोयदवाहनः। तोयदवाहनस्यापत्य महारक्षः। महारक्ष-स्यापत्यं देवरक्षः। देवरक्षस्यापत्य रक्षः। रक्षस्यापत्यमादित्यः। आदित्य-स्यापत्यमादित्यरक्षः। आदित्यरक्षस्यापत्य भीमप्रभः। भीमप्रभस्यापत्यं पूजार्हन्। पूजार्हतोऽपत्यं जितभास्करः। जितभास्करस्यापत्यं संपरिकीर्तिः। संपरिकीर्तेरपत्य सुग्रीवः। सुग्रीवस्यापत्य हरिग्रीवः। हरिग्रीवस्यापत्यं श्रीग्रीवः। श्रीग्रीवस्यापत्यं सुमुख.। सुमुखस्यापत्यं सुव्यक्त.। सुव्यक्त-स्यापत्यं मृगवेगः। मृगवेगस्यापत्यं भानुगति। भानुगतेरपत्यमिन्द्र.। इन्द्रस्यापत्यमिन्द्रप्रभः। इन्द्रप्रभस्यापत्यं मेघः। मेघस्यापत्यं सिंह-वदनः। सिंहवदनस्यापत्य पविः। पवेरपत्यमिन्द्रविटुः। इन्द्रविटोरपत्यं भानुधर्मा। भानुधर्मणोऽपत्य भानुः। भानोरपत्य सुरारि। सुरारेर-पत्य त्रिजटः। त्रिजटस्यापत्य भीमः। भीमस्यापत्य महाभीमः। महाभीमस्यापत्य मोहनः। मोहनस्यापत्यमङ्गारकः। अङ्गारकस्यापत्य रविः। रवेरपत्य चक्रारः। चक्रारस्यापत्यं वज्रोदरः। वज्रोदरस्यापत्य प्रमोदः। प्रमोदस्यापत्य सिंहविक्रमः। सिंहविक्रमस्यापत्य चामुण्डः। चामुण्ड-स्यापत्य घातकः। घातकस्यापत्य भीष्मः। भीष्मस्यापत्य द्विपवाहुः। द्विपवाहोरपत्यमरिमर्दनः। अरिमर्दनस्यापत्य निर्वाणभक्तिः। निर्वाणभक्ते-रपत्यमुग्रश्रीः। उग्रश्रियोऽपत्यमर्हद्भक्तिः। अर्हद्भक्तेरपत्य अनुत्तरः। अनु-त्तरस्यापत्य गत्युत्तमः। गत्युत्तमस्यापत्यमनिलः। अनिलस्यापत्य चण्डः। चण्डस्यापत्य लङ्काशोकः। लङ्काशोकस्यापत्य मयूरः। मयूरस्यापत्य महावाहुः। महावाहोरपत्य मनोरमः। मनोरमस्यापत्य भास्करः। भास्करस्यापत्य बृहद्गतिः। बृहद्गतेरपत्य बृहत्कान्तः। बृहत्कान्तस्या-पत्यमरिसन्त्रासः। अरिसंत्रासस्यापत्य चन्द्रावर्तः। चन्द्रावर्तस्यापत्य महा-रवः। महारवस्यापत्यं मेघध्वनिः। मेघध्वनेरपत्यं ग्रहक्षोभ। ग्रहक्षोभस्या-पत्य नक्षत्रदमनः। नक्षत्रदमनस्यापत्य तारकः। तारकस्यापत्य मेघनादः। मेघनादस्यापत्य कीर्तिधवलः। इत्येतानि चतुःषष्टि सिंहासनानि॥

छठी सन्धि

उसके बाद चौसठ सिंहासनोंकी लम्बी परम्परामें अनेक राजा हुए, इस परम्पराका अन्त होने पर अपनी कीर्तिसे विश्व को धवलित करनेवाला, कीर्तिधवल नामका राजा हुआ। उसके पहले निम्न राजा हुए—तोयदवाहन, उसका पुत्र महरक्ष, उसका पुत्र देवरक्ष, उसका पुत्र रक्ष, उसका पुत्र आदित्य, उसका पुत्र आदित्यरक्ष, उसका पुत्र भीमप्रभ, उसका पुत्र पूजार्हन्, उसका पुत्र जितभास्कर, उसका पुत्र संपरिकीर्ति, उसका पुत्र सुग्रीव, उसका पुत्र हरिग्रीव, उसका पुत्र श्रीग्रीव, उसका पुत्र सुमुख, उसका पुत्र सुव्यक्त, उसका पुत्र मृगवेग, उसका पुत्र भानुगति, उसका पुत्र इन्द्र, उसका पुत्र इन्द्रप्रभ, उसका पुत्र मेघ, उसका पुत्र सिंहवदन, उसका पुत्र पवि, उसका पुत्र इन्द्रविदु, उसका पुत्र भानुधर्मा, उसका पुत्र भानु, उसका पुत्र सुरारि, उसका पुत्र त्रिजट, उसका पुत्र भीम, उसका पुत्र महाभीम, उसका पुत्र मोहन, उसका अङ्गारक, उसका पुत्र रवि, उसका पुत्र चक्रार। उसका पुत्र वज्रोदर, उसका पुत्र प्रमोद, उसका पुत्र सिंहविक्रम, उसका पुत्र चामुंड, उसका पुत्र घातक, उसका पुत्र भीष्म, उसका पुत्र द्विपबाहु, उसका पुत्र अरिमर्दन, उसका पुत्र निर्वाणभक्ति, उसका पुत्र उग्रश्री, उसका पुत्र अर्हद्भक्ति, उसका पुत्र अनुत्तर, उसका पुत्र गत्युत्तम, उसका पुत्र अनिल, उसका पुत्र चंड, उसका पुत्र लङ्काशोक, उसका पुत्र मयूर, उसका पुत्र महाबाहु, उसका पुत्र मनोरम, उसका पुत्र भास्कर, उसका पुत्र बृहद्गति, उसका पुत्र बृहत्कान्त, उसका पुत्र अरिसंत्रास, उसका पुत्र चन्द्रावर्त, उसका पुत्र महारव, उसका पुत्र मेघध्वनि, उसका पुत्र ग्रहक्षोभ, उसका पुत्र नक्षत्रदमन, उसका पुत्र तारक, उसका पुत्र मेघनाथ, उसका पुत्र कीर्तिधवल।

[१]

सुर कीलएँ रज्जु करन्ताहों। लङ्काउरि परिपालन्ताहो ॥ १ ॥
एक्कहिँ दिणेँ विज्जाहर-पवरु। लच्छी-महएविहेँ भाइ-णरु ॥ २ ॥
सिरिकण्ठ-णामु णिव-मेहुणउ। रयणउरहों आइउ पाहुणउ ॥ ३ ॥
स-कलत्तु स-मन्ति-सामन्त-वलु। तहों अहिमुहु आउ कित्तिधवलु ॥४॥
स-पणामु समाइच्छिउ करेंवि। पुणु थिउ एक्कासणेँ वइसरेंवि ॥ ५ ॥
एत्थन्तरेँ हय-गय-रह-चडिउ। अत्थक्कएँ पारक्कउ पडिउ ॥ ६ ॥
चायार वि वारइँ रुद्धाइँ। दिट्ठइँ छत्त-द्धय-चिन्धाइँ ॥ ७ ॥
णिसुयइँ-रण-तूरइँ वज्जियइँ। हय-हिंसिय-गयवर-गज्जियइँ ॥ ८ ॥
दुव्वार-वइरि-सय-रोक्कियइँ। पच्चारिय-खारिय-कोक्कियइँ ॥ ९ ॥

घत्ता

तं पेक्खेविणु वइरि-वलु कित्तिधवलु सिरिकण्ठें धीरिउ।
'ताव ण जिणवरु जय भणमि जाव ण रणेँ विवक्खु सर-सीरिउ' ॥१०॥

[२]

सिरिकण्ठहों जोएँवि मुह-कमलु। कमलाएँ पवुत्तु कित्तिधवलु ॥ १ ॥
'किं ण मुणहि धण-कञ्चण पउरु। विज्जाहर-सेढिहिँ मेहउरु ॥ २ ॥
तहिँ पुप्फोत्तर-विज्जाहिवइ। तहों तणिय दुहिय हउँ कमलमइ ॥३ ॥
छुड छुड उच्चेल्लँवि णीसरिय। चमरहरिहिँ णारिहिँ परियरिय ॥ ४ ॥
तहिँ अवसरेँ धवल-विसालाइँ। वन्देप्पिणु मेरु-जिणालाइँ ॥ ५ ॥
स-विमाणु एन्तु णहेँ णियवि सइँ। घत्तिय णयणुप्पल-माल मइँ ॥६॥
तइयहुँ जेँ जाउ पाणिग्गहणु। एवहिँ णिक्कारणेँ काइँ रणु ॥ ७ ॥
मा णिय-णिय-सेण्णइँ णिट्ठवहों। तहों पासु महन्ता पट्ठवहों' ॥ ८ ॥

घत्ता

णिसुणेँवि तं तेहउ वयणु पेसिय दूय पराइय तेत्तहेँ।
उत्तर-वारेँ परिट्ठियउ पुप्फोत्तरु विज्जाहरु जेत्तहेँ ॥ ९ ॥

[१] कीर्तिधवल राज्य और लंका दोनोंका पालन देव-क्रीडासे कर रहा था। एक दिन उसका साला श्रीकंठ (महादेवी लक्ष्मीका भाई) अपनी पत्नी, मंत्री और सामन्तों के साथ रत्नपुरसे आतिथ्यके लिए आया। कीर्तिधवलने सामने आकर प्रणामपूर्वक उसका आदर किया। उसे आसन पर बैठाकर स्वयं भी बैठ गया। इतनेहीमे हाथी, घोड़ा रथादि पर चढ़ी हुई शत्रु-सेना तुरंत टूट पडी। चारो द्वार अवरुद्ध हो उठे। छत्र और पताकाएँ दिखाई देने लगीं, रण-दुंदुभि बज रही थी। घोड़े हिन-हिना रहे थे। हाथी चिंग्घाड़ रहे थे। अवरुद्ध सैकड़ो दुर्वार शत्रु खरा-खोटा बक रहे थे। उस सैन्यबलको देखकर, श्रीकण्ठने कीर्तिधवलको धीरज बँधाया और कहा 'जबतक मैं शत्रुका शिर नहीं तोड़ दूँगा तबतक जिनवरकी जय नहीं बोलूँगा ?' ॥१-१०॥

[२] तब श्रीकण्ठका मुखकमल देखकर कमला (श्रीकण्ठ की पत्नी) ने कीर्तिधवलको बताया—"क्या आप विजयार्ध श्रेणिमे धनकञ्चनपुरके मेघधर राजाको नही जानते! वहाँ पुष्पोत्तर नामका विद्याधर है। मैं उसकी लड़की कमलावती हूँ, चामरधारिणी स्त्रियोंके साथ मै एक दिन घूमने जा रही थी। उसी समय यह (श्रीकण्ठ) मेरु पर्वतके विशालधवल जिनालयोंकी वदना करके आकाशमार्गसे विमानमे जा रहे थे, देखते ही मैंने अपने नेत्रकमलोंकी माला इनपर डाल दी। बस दोनोंका विवाह हो गया। अब इस समय यह युद्ध व्यर्थ हो रहा है। अपनी-अपनी सेनाओंको नष्ट मत करो ओर उनके पास मन्त्रीको भेज दो॥ १–८॥

यह सुनकर कीर्तिधवलने वहाँ दूत भेज दिये। वे भी उस उत्तरद्वार पर पहुँचे जहाँ पुष्पोत्तर विद्याधर था॥ ९॥

[३]

विण्णाण-विणय णयवन्तएँहिं । विज्जाहर वुत्तु महन्तएँहिं ॥ १ ॥
'परमेसर एत्थु अ-खन्ति कउ । सव्वउ कण्णउ पर-भायणउ ॥ २ ॥
सरियउ णीसरेवि महीहरहों । ढोयन्ति सलिलु रयणायरहों ॥ ३ ॥
मोत्तिय-मालउ सिरें कुञ्जरहों । उवसोह देन्ति अण्णहों णरहों ॥ ४ ॥
धाराउ लेवि जलु जलहरहों । सिञ्चन्ति अङ्गु णव-तरुवरहों ॥ ५ ॥
उप्पज्जवि मज्झें महा-सरहों । णलिणिउ वियसन्ति दिवायरहों ॥ ६ ॥
सिरिकण्ठ-कुमारहों दोसु कउ । तउ दुहियएँ लइउ सयम्वरउ' ॥ ७ ॥
तं णिसुणेंवि णरवइ लज्जियउ । थिउ माण-मडप्फर-वज्जियउ ॥ ८ ॥

घत्ता

'कण्णा दाणु कहिं (?) तणउ जइ ण दिण्णु तो तुडिहि चडावइ ।
होइ सहावें मइलणिय छेयका-लें दीवय-सिह णावइ' ॥ ९ ॥

[४]

गउ एम भणेवि णराहिवइ । सिरिकण्ठें परिणिय पउमवइ ॥ १ ॥
वहु-दिवसेंवहिं उस्माहय-जणणु । णिय-सालउ पेक्खेवि गमण-मणु ॥ २ ॥
सब्भावें भणइ कित्तिधवलु । 'जिह दूरीहोइ ण मुह-कमलु ॥ ३ ॥
तिह अच्छहुँ मज्जण पाण-पिय । किं विहिं ण पहुच्चइ एह सिय ॥ ४ ॥
महु अत्थि अणेय दीव पवर । हरि-हणुरुह-हंस-सुवेल-धर ॥ ५ ॥
कुस-कञ्चण-कम्बुअ-मणि-रयण । ओहार-चीर-वाहण-जवण ॥ ६ ॥
वव्वर-वज्जर-गीरा वि सिरि । तोयावलि-सञ्झागार-गिरि ॥ ७ ॥
वेलन्धर-सिङ्घल-चीणवर । रस-रोहण-जोहण-किक्कुधर ॥ ८ ॥

घत्ता

भार-भरक्खम-भीम-तड एय महारा दीव विचित्ता ।
णिव्वाडेप्पिणु धम्मु जिह जं भावइ तं गेण्हहि मित्ता ॥ ९ ॥

[३] विज्ञानी, विनीत और नीतिज्ञ मन्त्रियोंने विद्याधरसे कहा—"हे परमेश्वर ! इतना क्षोभ किस लिए, सभी कन्याएँ दूसरेकी ही पात्र होती हैं। पहाड़से निकलनेपर भी नदियाँ सब पानी समुद्रमें ढो ले जाती हैं। हाथीके सिरकी माला (मोती) किसी दूसरेके ही सिर पर शोभा पाती है। जलकी धारा मेघोंसे पानी लेकर किन्हीं दूसरे विरवोंको सींचती है। कमलिनी उत्पन्न होती है महासरोवर के बीचमें—पर उसका विकास सूर्यसे ही होता है। तो इसमें श्रीकण्ठका क्या दोष है यदि उसने तुम्हारी कन्यासे विवाह कर भी लिया ?" यह सुनकर राजा बहुत लज्जित हुआ। उसका मान और अहंकार पानी पानी हो गया ॥ १–८ ॥

कन्यादान किसके लिए? यदि कन्याएँ किसीको न दी जायँ तो दोष लगा देती हैं, क्षयकालकी दीपशिखाकी भाँति वे स्वभावसे मलिन होती है ॥ ९ ॥

[४] यह सुनकर, वह विद्याधर राजा कमलावतीका विवाह—श्रीकंठसे करके चला गया। बहुत दिन बाद, एक दिन उसने (कीर्तिधवलने) अपने सालेको कुछ चिंतित तथा घर जानेके लिए आतुर देखा। उसने बड़े सद्भावसे उससे कहा—"तुम मुझे प्राणोंसे अधिक प्रिय हो, तुम यहीं रह जाओ, जिससे तुम्हारा मुख-कमल मुझसे दूर न हो, तुम्हें दैवयोगसे यहाँकी श्रीसम्पदा पर्याप्त न होगी। मेरे पास बहुतसे बड़े-बड़े द्वीप हैं, जैसे हरि, हनुरुह, हस, सुवेल, धर, कुश, कंचन, कंचुक, मणिरत्न, छोहार, चीर, वाहन, यवन, वर्वर, वंजर, गीर, श्री, तोयावली, सध्यागार गिरि, वेलधर, सिंघल, चीणवर, रस, रोहन, योधन, भार भरक्षम और भीमतट। ये सभी विचित्र हैं, इनमें से जो अच्छा लगे, धर्मकी भाँति उसे चुन लो।" ॥ १–९ ॥

[५]

सिरिकण्ठहों ताम मन्ति कहइ । 'किं वहवें वाणर-दीउ लइ ॥ १ ॥
जहिँ किक्कु-महीहरु हेम-इलु । विप्फुरिय-महामणि-फलिह-सिलु ॥ २ ॥
पवलकुरु इन्दणील-गुहिलु । ससिकन्त-णीर-णिज्झर-वहलु ॥ ३ ॥
मुत्ताहल-जल-तुसार-दरिसु । जहिँ देसु वि तासु जेँ अणुसरिसु ॥४
अहिणव-कुसुमइँ पक्कइँ फलइँ । कर-गेज्झइँ पण्णइँ फोप्फलइँ ॥ ५ ॥
जहिँ दक्ख रसालउ दीहियउ । गुलियउ अमरेहि मि ईहि [य] उ ॥६
जहिँ णाणा-कुसुम-करम्बियइँ । सीयलइँ जलइँ अलि-चुम्बियइँ ॥७॥
जहिँ धण्णइँ फल-संदरिसियइँ । धरणिहेँ अङ्गाइँ व हरिसियइँ' ॥८

घत्ता

तं णिसुणेंवि तोसिय-मणेंण देवागमणहों अणुहरमाणउ ।
माहव-मासहों पढम-दिणेँ तहिँ सिरिकण्ठेँ दिण्णु पयाणउ ॥ ९ ॥

[६]

लङ्घेप्पिणु लवण-समुद्द जलु । तं वाणर-दीउ पइट्ठु वलु ॥ १ ॥
जहिँ कुहिणिउ रविकन्त-प्पहउ । सिहि-सङ्कएँ उवरि ण देइ पउ ॥२॥
जहिँ वाविउ वउलामोइयउ । सुर-सङ्कएँ णरेण ण जोइयउ ॥ ३ ॥
जहिँ जलइँ णाहिँ विणु पङ्कऍहिँ । पङ्कयइँ णाहिँ विणु छप्पऍहिँ ॥४ ॥
जहिँ वणइँ णाहिँ विणु अम्बऍहिँ । अम्बा वि णाहिँ विणु गोच्छऍहिँ ॥५
गोच्छा वि णाहिँ विणु कोइलेंहिँ । कोइलउ णाहिँ विणु कलयलेंहिँ ॥६॥
जहिँ फलइँ णाहिँ विणु तरुवरेंहि । तरुवर वि णाहिँ विणु लयहरेंहिँ ॥७
लयहरइँ णाहिँ णिक्कुसुमियइँ । जहिँ महुयर-विन्दइँ ण भमियइँ ८

घत्ता

साहउ णउ विणु वाणरेंहिँ णउ वाणर जाहँ ण बुक्कारो ।
ताइँ णियन्तउ तहिँ जेँ थिउ विज्जालउ सिरिकण्ठ-कुमारो ॥ ९ ॥

[५] तब श्रीकठके मंत्रीने कहा—"बहुत कहनेसे क्या, वानरद्वीप ले ले, वहाँ किष्क महीधर और सोनेकी धरती है। चमकते हुए महामणि और स्फटिक पत्थरकी चट्टानें हैं, जो प्रवाल और इन्द्रनील मणियोंसे सघन जलकणों ओर चन्द्रकात मणियोंके झरनोंसे बहुल हैं। उनमें मोती जलकणोंकी भाँति दिखते हैं। उसके देश उसीके अनुरूप है। वहाँ नये फूल, पके फल तथा हाथसे तोडने योग्य कोंपल और पूगफल हैं। जहाँ दाख और सालके पेड़ हैं। जिनके सुन्दर गुच्छोंको देव भो तरसते हैं। जिसका पानी तरह तरहके फूलोंसे अंचित और भ्रमरोंसे गुञ्जित है। उसमे धान्यकी खेती ऐसी जान पड़ती है मानो धरतीका अग हर्षित हो उठा हो।" यह सुनकर संतुष्टमनसे श्रीकठने चैत्र माहके पहले ही दिन, देवागमनके अनुरूप उस द्वीपके लिए प्रस्थान किया॥ १–९॥

[६] लवणसमुद्रको पार करते ही उसकी सेना वानर-द्वीपमे पहुँच गई। सूर्यकात मणियोंकी आभासे मंडित, वहाँकी पगडंडियों पर, आगकी आशंकासे कोई पग नहीं रखता था। बगुलोंके आमोदसे भरी वहाँकी वापियोंमे, देवोंकी आशकासे कोई मनुष्य झाँक तक नहीं सकता था। उस द्वीपमें पानी कमलोंके बिना नहीं था, कमल भी भौरोंके बिना नहीं थे। आम मजरियोंके बिना नहीं थे। मंजरियाँ भी ऐसी नहीं थीं कि जिनमें कलकूक न हो। जहाँ फल तरुवरोंके बिना नहीं थे, तरुवर भी लताधरोंके बिना नहीं थे। और लताधर फूलोंसे रहित नहीं थे और फूल भी ऐसे नहीं थे कि जिनमे भौरे न गूँज रहे हों। उसमें, एक भी पेड़ की डालें ऐसी नहीं थीं कि जिनमे वन्दर न हो और वन्दर भी ऐसे नहीं थे जिनमें बुक्कार (ध्वनि) न हो। उन्हें देखकर विद्याधर श्रीकठ उसी द्वीपमें रहने लगा॥ १–९॥

[७]

पहु तेहिँ समाणु खेड्डु करेवि । अवरेहिँ धरावेँवि सइँ धरेँवि ॥१॥
गउ किक्कु-महीहरहो (?) सिहरु । चउदह-जोयण-पमाणु णयरु ॥ २ ॥
किउ सहसा सव्वु सुवण्णमउ । णामेण किक्कुपुरु अण्णमउ ॥ ३ ॥
जहिँ चन्दकन्ति-मणि-चन्दियउ । ससि भणेँवि अ-ढियहेँ जेँ वन्दियउ ॥४
जहिँ सूरकन्ति-मणि विप्फुरिय । रवि भणेँवि जलाइँ मुअन्ति त्रिय ॥५॥
जहिँ णीलाउलि-भू-भङ्गुरइँ । मोत्तियतोरण-उदन्तुरइँ ॥ ६ ॥
विद्दुमदुवार-रत्ताहरइँ । अवरोप्परु विहसन्ति व घरइँ ॥ ७ ॥
उप्पण्णु ताम कोड्डावणउ । सिरिकण्ठहोँ वज्जकण्ठु तणउ ॥ ८ ॥

घत्ता

एक्क-दिवसेँ देवागमणु णिएँवि जन्तु णन्दीसर-दीवहोँ ।
वन्दण-हत्तिएँ सो वि गउ परम-जिणहोँ तइलोक-पईवहोँ ॥ ६ ॥

[८]

स-पसाहणु स-परिवारु स-धउ । मणुसुत्तर-महिहरु जाम गउ ॥ १ ॥
पडिकूलिउ ताम गमणु णरहोँ । सिद्धालउ णाइँ कु-मुणिवरहोँ ॥२ ॥
मइँ अण्ण-भवन्तरेँ काइँ किउ । जे सुर गय महु जि विमाणु थिउ ॥३
वरि घोर-वीर-तउ हउँ करमि । णन्दीसरवखु जें पइसरमि ॥ ४ ॥
गउ एम भणेँवि णिय-पट्टणहोँ । सताणु समप्पेँवि णन्दणहोँ ॥ ५ ॥
णीसंगु जाउ णिविसन्तरेँण । जिह वज्जकण्ठु कालन्तरेँण ॥ ६ ॥
तिह इन्दाउहु तिह इन्दमइ । तिह मेरु स-मन्दरु पवणगइ ॥ ७ ॥

[७] इस तरह उन वानरोंसे वह खेलने लगा। कुछको उसने स्वयं पकड़ा और कुछको उसने दूसरोंसे पकड़वाया। किष्क पर्वतकी चोटी पर जाकर, उसने चौदह योजनका अन्न-भय नगर बसाया। सबका सब उसने सोनेका ही बनाया और उसका नाम भी रक्खा किष्कपुर। इसमें चन्द्रकांतमणि की चॉदनीको, चन्द्रमा समझकर, लोग बिना रातके ही वदना करने लगते थे, तथा सूर्यकात मणिकी चमकको सूर्य समझकर दीपकोंकी ज्योतिको बुझा देते थे। उस नगरके घर मानो एक दूसरे पर हॅस रहे थे। जड़े हुए नीले मणियोकी पंक्तियॉ ही उनकी कुटिल भौंहें थीं, मोतियोके तोरण ही उनके निकले हुए दॉत थे और विद्रुमके द्वार ही लाल-लाल ओंठ। कुछ समयके बाद श्रीकंठके, कौतुकजनक वज्रकठ नामका एक लड़का उत्पन्न हुआ ॥ १–८ ॥

एक दिन नदीश्वर-द्वीपको जाते हुए देवोंके आगमनको देखकर, श्रीकठ भी त्रिलोकपति परम जिनकी वदना भक्तिके लिए गया ॥ १–९ ॥

[८] अपनी सेना, परिवार और पताकाके साथ जब वह मानुषोत्तर पर्वत पर पहुॅचा तो उसके विमानकी गति ऐसी अवरुद्ध हो गई, मानो कुमुनिवरकी गति मोक्षमें अवकुण्ठित हो गई हो। "आखिर मैंने दूसरे जन्ममे ऐसा क्या किया जो दूसरे देवता लोग तो चले गये, पर मेरा विमान रुक गया, मैं भी घोरवीर तप करूॅगा जिससे नंदीश्वर द्वीपमे मैं भी प्रवेश कर सकूॅ" यह कह कर वह अपने नगर लौट आया और अपने पुत्रको राज्य अर्पित कर, वह पलमात्रमे अनासंग हो गया। कालान्तरमे—वज्रकण्ठने भी ऐसा ही किया। उसके बाद इन्द्रायुध, इन्द्रमति, मेरु, समंदर, पवनगति, सर्वप्रभ

तिह रविपहु एम सुहासणइँ । वज्जयइँ अट्ठ सीहासणइँ ॥ ८ ॥

घत्ता

णवमउ णामें अमरपहु वासुपुज्ज-सेयस-जिणिन्दहुँ ।
अन्तरें विहि मि परिट्ठियउ छुण-पुव्वण्हु जेम रवि-चन्दहुँ ॥ ९ ॥

[९]

परिणन्तहों लङ्काहिव-दुहिय । तहों पङ्गणे केण वि कइ लिहिय ॥१
दीहर-लंगूलारत्त-मुह । कमु दिन्ति व धावन्ति व समुह॥२
तं पेक्खेंवि साहामय णिवहु । भइयएँ मुच्छाविय राय-वहु ॥ ३ ॥
एत्थन्तरें कुविउ णराहिवइ । 'तं मारहु लिहिया जेण कइ' ॥४॥
पणवेप्पिणु मन्तिहिँ उवसमिउ । 'कइ-णिवहु ण केण वि अइकमिउ॥५
एयहुँ जि पसाएं राय-सिय । तउ पेसणयारी जेम तिय ॥ ६ ॥
एयहुँ जें पसाएं रणें अजउ । जगें वाणर-वंसु पसिद्धि-गउ ॥ ७ ॥
सिरिकण्ठहों लग्गेंवि कइ-सयइँ । एयइँ जें तुम्ह कुल-देवयइँ ॥ ८ ॥

घत्ता

तं णिसुणेंवि परितुट्ठएँण अइकमिय (?) णमिय मरिसाविय ।
णिम्मल-कुलहों कलङ्कजिह मउडें चिन्धें धएँ छत्तें लिहाविय ॥ ९ ॥

[१०]

तें वाणर-वंसु पसिद्धि-गउ । विण्णि वि सेढिउ वसिकरेंवि थिउ ॥१
उप्पण्णु कइद्धउ तासु सुउ । कइधयहों वि पडिवलु पवर-भुउ ॥ २॥
पडिवलहों वि णयणाणन्दु पुणु । खयराणन्दु विसाल-गुणु ॥ ३ ॥
पुणु गिरिणन्दणु पुणु उवहिरउ । तहों परम-मित्तु पडिपक्ख-खउ ॥४॥
तडिकेसि-णामु लङ्काहिवइ । विज्जाहर-सामिउ गयणगइ ॥ ५ ॥

और सुभाषित आदि राजा सिंहासन पर आरूढ़ हुए। नौवाँ राजा अमरप्रभ, तीर्थङ्कर—वासुपूज्य और श्रेयासनाथके बीचमे हुआ, मानो रवि और शशिके बीचमे, पूर्णिमाके पहलेका दिन ही उत्पन्न हुआ हो ॥ १–९ ॥

[९] जब अमरप्रभका लंकानरेशकी कन्यासे विवाह होने जा रहा था, तब किसीने उसके आँगनमे वानरोंके चित्र अंकित कर दिये। लम्बी-लम्बी पूँछ तथा लाल मुखवाले पंजे चलाते हुए वे वानर सामने दौड़ रहे थे। चित्रमे (इस तरहके) वानर समूहको देखकर उसकी नववधू भयसे मूर्छित हो गई। तब राजा अमरप्रभने कुपित होकर आज्ञा दी कि "जिन्होंने इन बन्दरोंके चित्र बनाये हो उन्हें मार डालो।" किन्तु मंत्रियो ने उसे शान्त करनेके लिए यह निवेदन किया, "राजन्, वानरोंका प्रतिक्रमण आज तक किसीने नहीं किया। इन्हींके प्रसादसे, राज्यलक्ष्मी, पत्नीकी भाँति तुम्हारी आज्ञाकारिणी है और उसीके प्रसादसे रणमें अजेय, वानरवंश सारे संसारमे प्रसिद्ध हुआ। ये सैकड़ो वानर श्रीकंठके समयसे तुम्हारे कुलदेवता होते आये हैं" ॥ १–८ ॥

यह सुनकर, उस विनीत और विचारशील राजाने बड़ी प्रसन्नतासे उन्हें कुलके पवित्र प्रतीक रूपमे अपने मुकुट और ध्वज छत्र पर अंकित करवा लिया ॥ ९ ॥

[१०] वानरवंशकी प्रसिद्धि इसीसे हुई। उन दोनो श्रेणियों-को जीतकर, वह राजा अपना शासन करने लगा। उसका पुत्र कपिध्वज हुआ। कपिध्वजका पुत्र नयनानद, नयनानंदका विशालगुण खेचरानंद, खेचरानंदका पुत्र गिरिनंदन और गिरि-नंदनका पुत्र उदधिरथ हुआ। उसका परम मित्र था, लंका-नरेश तडित्केश, जो अनेक शत्रुओंका सहारकर्ता था। विद्याधरो

एक्कहिँ दिणेँ उववणु णीसरिउ। पुणु वुड्डण-वाविहेँ पइसरिउ ॥ ६ ॥
महएवि ताम तहोँ तक्खणेँण। थण-सिहरहिँ फाडिय मक्कडेँण ॥७॥
तेण वि णारायहिँ विद्धु कइ। गउ तउ जउ तरुवर मूलेँ जइ ॥८॥

घत्ता

लद्ध-णमोक्कारहोँ फलेँण उवहिकुमारु देउ उप्पण्णउ।
णियय-भवन्तरु सभरेँवि विज्जुकेसु जउ तउ अवइण्णउ ॥ ९ ॥

[११]

तडिकेसु णिएवि विहाइयउ। 'हउँ एण हयासें घाइयउ ॥ १ ॥
अज्जुवि मणेँ सल्लु समुव्वहइ। जउ पेक्खइ तउ कइवर वहइ ॥२॥
केत्तडउ वहेसइ खुद्दु खलु। उप्पायमि माया-पमय-वलु' ॥ ३ ॥
तो एम भणेँवि साहामियइँ। गिरिवर-संकासइँ णिम्मियइँ ॥ ४ ॥
रत्तमुहइँ पुच्छ-पईहरइँ। वुक्कार-घोर-घग्घर-सरइँ ॥ ५ ॥
आणत्तइँ उप्परि धाइयइँ। जलेँ थलेँ आयासेँ ण माइयइँ ॥६॥
अण्णइँ उम्मूलिय - तरुवरइँ। अण्णइँ संचालिय-महिहरइँ ॥ ७ ॥
अण्णइँ उग्गामिय-पहरणइँ। अण्णइँ लंगूल-पईहरइँ ॥ ८ ॥

घत्ता

अण्णइँ हुयवह-हत्थाइँ अण्णइँ पुणु अण्णेँहिँ उप्पाएँहिँ।
रूवइँ कालहोँ केराइँ आवेँवि थियइँ णाइँ वहु-भाएँहिँ ॥ ९ ॥

[१२]

अण्णहिँ कोक्किउ लङ्काहिवइ। 'तिह पहरु पाव जिह णिहउ कइ'॥१॥
तं णिसुणेँवि णरवइ कम्पियउ। 'किं कहि मि पवङ्गमु जम्पियउ ॥२ ॥

का अधिपति—और आकाशगामी वह, एक दिन नहानेके लिए अपने उपवनकी बावड़ीमें घुसा हो था कि इतनेमें उसकी पत्नीके स्तनके अग्रभागमें किसी बंदरने काट दिया। तब राजाने उस वानरराजको अपने बाणोंसे छेद डाला। वह भी आहत होकर पेड़के मूलमें जा पड़ा। (किसीसे) णमोकार मंत्र सुनकर, वह वानर, मरकर स्वर्गमें देव हो गया। नाम था उसका उदधिकुमार। अपने पूर्वभवका स्मरण कर, वह शीघ्र वहाँ आया जहाँ तडित्केश था॥ १-९॥

[११] उसे देखकर उदधिकुमार विचार करने लगा कि इसी हतभाग्यने मेरा वध किया था। इसका मन आज भी आशंकासे भरा है इसीलिए जिस वानरको देखता है उसे ही मार देता है, न जाने यह दुष्ट अभी कितनोंको और मारेगा। इसलिए मुझे मायावी सेना उत्पन्न करनी चाहिए। यह सोचकर उसने पहाड़की तरह (डीलडौलवाले) लाल मुँह लम्बी पूँछ तथा बुक्कारके कठोर स्वरवाले बंदरोंकी सेना उत्पन्न कर दी। असंख्य वानर, ऊपर नीचे दौड़ने लगे। जल थल और आकाशमें भी वे नहीं समा सके। कोई बंदर बड़े बड़े पेड़ उखाड़ रहा था, तो कोई पहाड़ हिला रहा था। कोई प्रहारके लिए दौड़ रहा था। किसीकी पूँछ लम्बी थी तो कोई हाथोंमें आग लिये था, तो कोई किसी और उत्पातमें लगा था। यमकी आकृतिवाले वे सामने आकर ऐसे बैठ गये, मानो बहुतसे भाई ही हों॥ १-९॥

[१२] तब किसीने जाकर लंकानरेशसे कहा—"तुमने जिस तरह बंदरको मारा था, वैसे ही तुम पर प्रहार होगा?" यह सुनते ही राजा काँप उठा। क्या कहीं कभी बंदर भी बोलते हैं, क्या कभी बंदरोंके भी हथियार होते है। यह

किं कहि मि कइन्दहों पहरणइँ । आयइँ लहुआइँ ण कारणइँ ॥ ३ ॥
चिन्तेवि महाभय-घत्थएँण । वोल्लाविय पणविय-मत्थएँण ॥ ४ ॥
'के तुम्हइँ काइँ अ-खन्ति किय । कज्जेण केण सण्णहँवि थिय' ॥ ५ ॥
तं णिसुणेँवि चविउ पमय-णिवहु । 'किं पुव्व-वइरु वीसरिउ पहु ॥ ६ ॥
जइयहुँ जल कीलएँ आइयउ । महएवि कज्जेँ कइ घाइयउ ॥ ७ ॥
रिसि-पञ्चणमोकारहुँ वलेँण । सुरवरु उप्पण्णु तेण फलेँण ॥ ८ ॥

घत्ता

वइरु तुहारउ संभरेँवि सो हउँ एक्कु जि थिउ वहु-भाएँहिँ ।
सेरउ अच्छहि काइँ रणेँ जिम अब्भिड्डु जिम पडु मडु पाएँहिँ ॥ ९ ॥

[१२]

तं णिसुणेँवि णमिउ णराहिवइ । अमरेण वि दरिसिय अमर-गइ ॥ १ ॥
णिउ विज्जुकेसु करेँ धरेँवि तहिँ । णिवसइ महरिसि चउणाणि जहिँ ॥२॥
पयाहिण करेँवि गुरु-भत्ति किय । वन्देप्पिणु विण्णि मि पुरउ थिय ॥३॥
सव्वड्डिउ सुरवरु दरिसियउ । 'एँहु जम्मु एण महु दरिसियउ ॥ ४ ॥
अज्जु वि लक्खिज्जइ पायडउ । महु केरउ एउ मरीरडउ' ॥ ५ ॥
त पेक्खेँवि तडिकेसु वि डरिउ । णं पवण-छित्तु तरु थरहरिउ ॥ ६ ॥
पुणु पुच्छिउ महरिसि 'धम्मु कहेँ । परिभमहुँ जेण णउ णरय-पहेँ' ॥७॥
तं णिसुणेँवि चवइ चारुचरिउ । 'महु अत्थि अण्णु परमायरिउ ॥८ ॥
सो कहइ धम्मु सव्वत्तिहरु । पइसहुँ जि जिणालउ सन्तिहरु' ॥९॥
परिओसें तिण्णि वि उच्चलिय । वाहुवलि-भरह-रिसह व मिलिय ॥१०॥

घत्ता

दिट्ठु महारिसि चेइ-हरेँ णरवइ-उवहिकुमार-मुणिन्देँहिँ ।
परम-जिणिन्दु समोसरणेँ णं धरणिन्द-सुरिन्द-णरिन्देँहिँ ॥ ११ ॥

कोई छोटी-मोटी बात नही है ?" यह सोचकर वह महाभयसे व्यथित हो उठा। उसने माथा झुकाकर कहा—"तुम कौन हो, मैंने तुम्हारा क्या अपराध किया है। किसलिए इतनी तैयारी कर रहे हो"—यह सुनकर उदधिकुमारने उत्तर दिया—"क्या प्रभु! तुम मेरे पूर्व जन्मको भूल गये। तुम जब जलक्रीड़ा के लिए आये थे, तो मुझे महादेवीके कारण मार डाला था। परन्तु मुनिके (सुनाए) णमोकार मत्रके प्रभावसे स्वर्गमे जाकर मैं देव हो गया॥ १-८॥

वहाँ एक मैं, अब तुम्हारे वैरका स्मरण कर, मायाके बलसे अनेक होकर, सामने स्थित हूँ। रणमे तुम निष्क्रिय क्यो बैठे हो, या तो लडो, नहीं तो मेरे चरणो पर गिरो॥ ९॥

[१३] यह सुनते ही राजाने उसे नमस्कार किया। उसने भी अपनी देवगतिका प्रदर्शन किया, और तडित्केशका हाथ पकडकर, वह उसे एक चतुर्ज्ञानधारी महामुनिके निकट ले गया। परिक्रमा देकर उन्होंने खूब गुरुभक्ति की और फिर उसके सम्मुख आकर बैठ गये। समूचे अंगोसे प्रसन्न होकर वह देव बोला—"यह जन्म मैंने इनको कृपासे देखा नहीं तो पहलेका मेरा प्राकृत शरीर, अभी तक पड़ा यह दिखाई दे रहा है।" उसे देखकर, तडित्केश, पवनाहत वृक्षकी भाँति एकदम काँपने लगा। उसने कहा—"आप मुझे कार्य बतायें जिससे मैं नरकमे न पड़ूँ।" यह सुनकर चारुचरित मुनिने कहा—"मेरे आचार्य दूसरे हैं, वही विस्तारसे धर्म कथन करेंगे। आप प्रशात जिन-मन्दिरमे चलें।" वे तीनो भाई बड़े सतोपसे चल पड़े। मानो बाहुबलि भरत और ऋषभ ही मिलकर जा रहे थ॥१-१०॥

उन तीनो—उदधिकुमार, राजा और मुनिने चैत्यगृहमे महाऋषिको देखा, मानो धरणेन्द्र सुरेन्द्र और नरेन्द्रने समवशरणमे परमजिनको ही देखा हो॥११॥

[१४]

पणवेप्पिणु पुच्छिउ परम-रिसि । 'दरिसावि भडारा धम्म-दिसि' ॥१॥
परमेसरु जम्पइ जइ-पवरु । तइ-काल-बुद्धि चउ-णाण-धरु ॥ २ ॥
'धम्मेण जाण-जम्पाण-धय । धम्मेण मिच्च-रह-तुरय-गय ॥ ३ ॥
धम्मेणाहरण - विलेवणइँ । धम्मेण णियासण-भोयणइँ ॥ ४ ॥
धम्मेण कलत्तइँ मणहरइँ । धम्मेण छुहा-पण्डुर-घरइँ ॥ ५ ॥
धम्मेण पिण्ड-पीण-त्थणउ । चमरइँ पाडन्ति वरङ्गणउ ॥ ६ ॥
धम्मेण मणुय-देवत्तणइँ । बलएव - वासुएवत्तणइँ ॥ ७ ॥
धम्मेण अरुह-सिद्धत्तणइँ । तित्थङ्कर - चक्कहरत्तणइँ ॥ ८ ॥

घत्ता

एक्कें धम्में होन्तएँण इन्दा देव वि सेव करन्ति ।
धम्म-विहूणहों माणुसहों चण्डाल वि पङ्गणएँ ण ठन्ति' ॥ ९ ॥

[१५]

तडिकेसें पुच्छिउ पुणु वि गुरु । 'अण्णहिँ भवेँ को हउँ को व सुरु'॥१॥
जइ जम्पइ 'णिसुणुत्तर-दिसाएँ । जाओ सि आसि कासी विसएँ ॥ २ ॥
तुहुँ साहु एहु धाणुक्कु तहिँ । आइउ तरु-मूलेँ वि थिओ सि जहिँ॥३॥
णिग्गन्थु णिएँवि उवहासु कउ । ईसीमुप्पण्णु कसाउ तउ ॥ ४ ॥
भञ्जेँवि काविट्ठ-सग्ग-गमणु । पत्तो सि णवर जोइस-भवणु ॥ ५ ॥
तत्थहों वि चवेप्पिणु सुद्धमइ । हूओ सि एत्थ लङ्काहिवइ ॥ ६ ॥
धाणुक्किउ हिण्डेंवि भव-गहणेँ । उप्पण्णु पवङ्गमु पमय-वणेँ ॥ ७ ॥
पइँ हउ समाहि-मरणेण मुउ । गम्पिणु उवहि-कुमारु हुउ' ॥ ८ ॥

घत्ता

त णिसुणेँवि लङ्केसरेंण रज्जें सुकेसु थवेँवि परमत्थें ।
मुएँवि कु-वेस व राय-सिय तव-सिय-वहुय लइय सइँ हत्थें ॥ ९ ॥

[१६]

ज विज्जुकेसु णिग्गन्थु थिउ । पञ्चहिँ मुट्ठिहिँ सिरेँ लोउ किउ ॥ १ ॥

[१४] प्रणामके अनंतर उसने परम-ऋषिसे पूछा—"परम आदरणीय धर्मका मार्ग दिखाइए।" तब चतुर्ज्ञान-धारी त्रिकालज्ञ वह यतिवर बोले—"धर्मसे ही ज्ञानध्वजा और सिंहासन मिलते है। धर्मसे ही नौकर रथ घोड़े और हाथी होते हैं। पलग और आभरण भी धर्मसे ही होते है। धर्मसे ही नृपासन और भोजन मिलता है। धर्मसे सुन्दर स्त्रियाँ और महल होते हैं। धर्मसे ही पिडकी तरह पीनस्तनी स्त्रियाँ चमर डुलाती हैं। मनुजत्व और देवत्व दोनो धर्मसे ही होते हैं। बलदेव वासुदेव अर्हन्त सिद्ध तीर्थङ्कर चक्रवर्ती ये सब धर्म से होते हैं ॥ १–८ ॥

एक धर्मके रहनेसे इन्द्र और देव भी सेवा करते है। धर्म रहित व्यक्तिके घरमे चडाल भी पैर नहीं रखता ॥९॥

[१५] तब, तडित्केशने फिर गुरुसे पूछा, "हे देव, पूर्वभवमे यह और मैं दोनो क्या थे।" यतिने कहा—"सुनो, उत्तरदिशामे काशीदेश है, वहाँ तुम उत्पन्न हुए थे। तुम साधु थे और यह देव अहेरी। जिस पेड़के नीचे तुम बैठे थे, वहाँ यह आया और तुम्हें नग्न देखकर यह उपहास करने लगा। तब तुम्हे भी थोडी-सी कषाय आ गई। उससे तुम्हारा कापिष्ठ स्वर्ग भग्न हो गया और तुम ज्योतिष भवनमे उत्पन्न हुए। वहाँसे आकर तुम लकामे शुद्धमति राजा हुए और वह शिकारी अनेक भवरूपी वनमे भटककर वहीं तुम्हारे प्रमदवनमे वानर हुआ। वहाँ तुमसे आहत होकर समाधिमरणके प्रभावसे वह स्वर्गमें जाकर उदधिकुमार देव हुआ।" यह सुनकर लकाधिपति तडित्केशने राज्य अपने पुत्र सुकेशको सौप दिया और कुवेष व राज्यश्रीका त्याग कर अपने हाथमे तपश्री रूपी वधूको ग्रहण कर लिया ॥१–९॥

[१६] जब उसने निर्ग्रंथ हो, पञ्चमुष्टि केश लोच किया।

त कडय-मउड-कुण्डल-धरेँण । सम्मत्तु लइउ दिट्ठु सुरवरेँण ॥ २ ॥
एत्थन्तरेँ किक्क-पुरेसरहोँ । गउ लेहु कइद्धय-सेहरहोँ ॥ ३ ॥
महि-मण्डलेँ घत्तिउ दिट्ठु किह । णावालउ गङ्गा-वाहु जिह ॥ ४ ॥
बन्धण-विमुक्क ण णिरयउलु । वङ्कुडउ सहावें जेम खलु ॥ ५ ॥
जुवई जणु वण्णु समुव्वहइ । आयरिउ व चरिउ कहउ कहइ ॥ ६ ॥
ण अक्खर-पन्तिहिँ पहु भणिउ । 'तुम्हहुँ सुकेसु परिपालणिउ ॥ ७ ॥
तडिकेसें तव-सिय लइय करेँ । जं जाणहि तं पहु तुहुमि करेँ' ॥ ८ ॥

घत्ता

लेहु विवेप्पिणु उवहिरउ पुत्तहोँ रज्जु देवि णिक्खन्तउ ।
पुरेँ पडिचन्दु परिट्ठियउ वाणरदीउ स इं भु ञ्जन्तउ ॥ ९ ॥

❀ ❀ ❀

[७. सत्तमो संधि]

पडिचन्दहोँ जाय किक्किन्धन्धय पवर-भुव ।
ण रिसह-जिणासु भरह-वाहुवलि वे वि सुव ॥ १ ॥

[१]

छुडु छुडु सरीर-सपत्ति पत्त । तहिँ अवसरेँ केण वि कहिय वत्त ॥१॥
'वेयड्ढ-कडएँ धण-कणय-पउरेँ । दाहिण-सेढिहिँ आइच्चणयरेँ ॥ २ ॥
विज्जामन्दरु णामेण राउ । वेयमइ अग्ग-महिसिएँ सहाउ ॥ ३ ॥
सिरिमाल-णाम तहोँ तणिय दुहिय । इन्दीवरच्छि छण-चन्द-मुहिय ॥ ४ ॥
कयली-कन्दल-सोमाल वाल । सा परएँ घिवेसइ कहोँ वि माल' ॥५॥
त णिसुणेँवि पवर-कइद्धएहिँ । गमु सज्जिउ किक्किन्धन्धएहिँ ॥ ६ ॥
ढोइयइँ विमाणइँ चडिय जोह । संचल्ल णहङ्गणेँ दिण्ण-खोह ॥ ७ ॥
णिविसद्धें दाहिण-सेढि पत्त । जहिँ मिलिया विज्जाहर समत्त ॥ ८ ॥

तब कटक मुकुट और कुण्डल धारण करनेवाले उस देवने दृढ़ सम्यक्त्व ग्रहण कर लिया। इसी बीच, कपिचिह्नसे अंकित मुकुटवाले किष्कपुर नगरके राजाके पास एक लेखपत्र गया। धरती पर वह लेखपत्र ऐसे दिखाई पड़ा मानो जैसे वह नावालउ (नमनशील और नौकाओंसे युक्त) गंगाका प्रवाह हो। वह अभि-लेख—सिद्धसमूहकी तरह बंधनसे मुक्त था और खलकी तरह स्वभावसे कुटिल। वह युवतीजनोंकी तरह, तरह-तरहके रंगोंको धारण कर रहा था, तथा आचार्यकी तरह, वह 'कथा और चरित्त' को प्रकट कर रहा था। मानो अपनी अक्षर-पंक्तियोंसे वह राजा उदधिरथसे कह रहा था "तुम सुकेशका परिपालन करना, तडित्केशने तपश्री ग्रहण कर ली है, तुम जो जानो वही करना ॥ १-८ ॥

लेखपत्रको लेकर उसने देखा कि पुत्रको राज्य देकर वह (तडित्केश) विरक्त हो गया है, इसलिए वानरद्वीपका स्वयं भोग करते हुए उसने पुरमें प्रतिचन्द्रको प्रतिष्ठित कर दिया ॥ ९ ॥

❀ ❀ ❀

सातवीं सन्धि

प्रतिचद्रके दो पुत्र उत्पन्न हुए प्रवर भुजावाले किष्किंध और अंधक। ठीक वैसे ही जैसे ऋषभ जिनके भरत और बाहुबलि हुए थे।

[१] धीरे धीरे वे दोनों युवा हो गये। एक दिन किसीने कहा कि विजयार्ध पर्वतकी दक्षिणश्रेणिमें धनधान्यसे पूर्ण आदित्य नगर है। उसके राजा विद्यामंदरकी पट्टरानी वेगमती की लडकी—श्रीमाला बहुत ही सुंदर है। उसके नेत्र नील-कमलकी तरह हैं और मुख पूर्ण चद्रकी तरह। कदली वृक्षकी भाँति सुकुमार वह किसीके गलेमें कल ही माला डालने वाली है। यह सुनकर किष्किंध और अन्धक दोनों भाई जानेकी

घत्ता

किक्किन्धें दिट्ठु धउ राउलउ सु (?) पवणहउ।
हक्कारइ णाइँ करयलु गिरिमालहेँ तणउ ॥ १ ॥

[२]

णिय-णिय थाणेहिँ णिवद्ध मञ्च। महकवि-कव्वालाव व सु-सञ्च ॥ १ ॥
आरूढ सव्व मञ्चेसु तेसु। चामियर-गत्त- मणि- भूमिएसु ॥ २ ॥
परिभमिर - भमर - झङ्कारिएसु। णिविडायवत्त - अन्धारिएसु ॥ ३ ॥
रविकन्त - कन्ति - उज्जालिएसु। आलावणि- सद्द - वमालिएसु ॥ ४ ॥
मञ्चेसु तेसु थिय पट्टु चडेवि। वम्मह-णड णाडिज्जन्ति(?)के वि ॥५॥
मूसन्ति सरीरइँ वारवार। कण्ठाइँ मुअन्ति लयन्ति हार ॥ ६ ॥
सुन्दर सच्छाय वि कणय-डोर। अलियं जि पिवन्ति भणेवि थोर ॥७॥
गायन्ति हसन्ति पुणासणत्थ। अङ्गइँ मोडन्ति वलन्ति हत्थ ॥ ८ ॥

घत्ता

स-पसाहण सव्व थिय सम्मुह वरइत्त किह।
'किर होसइ सिद्धि' आयएँ आसएँ समय जिह ॥ ९ ॥

[३]

सिरिमाल ताम करिणिहेँ वलग्ग। णं विज्जु महा-घण-कोडि लग्ग ॥ १ ॥
सयलाहरणालङ्करिय - देह। णं णहेँ उम्मिल्लिय चन्द-लेह ॥ २ ॥
अग्गिम-गणियारिहेँ चडिय धाइ। णिसि-पुरउ परिट्ठिय सञ्झ णाइ ॥३॥
दरिसाविउ णर-णिउरुम्बु तीएँ। णं वण-सिरि तरुवर महुयरीएँ ॥ ४ ॥
उहु सुन्दरि चन्दाणण-कुमारु। उग्घाउ ऊहु रणेँ दुण्णिवारु ॥ ५ ॥
उहु विजयसीहु रिउ-पलय-कालु। रहणेउर - पुरवर - सामिसालु ॥ ६ ॥
सयल वि णरवर वञ्चन्ति जाइ। अवरागम सम्मादिट्ठि णाइँ ॥ ७ ॥

की तैयारी करके अपने सैनिकोंके साथ, विमानोंमें बैठकर आकाशमार्गसे चल पड़े। जाते हुए उनकी अनूठी शोभा हो रही थी। आधे पलमें वे, विजयार्ध की दक्खिन श्रेणिमें पहुँच गये। वहाँ उन्हें और भी विद्याधर मिल गये ॥१-८॥

वहाँके राजकुलकी, हवामें उड़ती हुई पताका कुमार किष्किंध को ऐसा लगी मानो श्रीमालाका हाथ ही उन्हें पुकार रहा हो ॥९॥

[२] अपनी-अपनी जगह, महाकविके काव्यालापकी तरह सुन्दर मंच बने थे। सुवर्ण और मणियोंसे जड़े उन मचोंपर राजा लोग बैठ गये। जो, चंचल भौंरोंसे झंकृत, सघन छत्रोंसे अंधकारमय, सूर्यकांत मणियोंसे आलोकित और गायिकाओंके मधुर संलापसे मुखर हो रहे थे, उन मंचोंपर बैठे हुए नृपतियोंमें से, कोई अभिनयके द्वारा अपना मर्म प्रकट कर रहा था, कोई वार-वार अपने शरीर को ही सजा रहा था, कोई कंठसे उतारकर हार पहन रहा था, कोई चमचमाती करधनी लेकर, कुछ गुनगुनाता-सा, झूठमूठ उसे पहन रहा था। आसनोंपर विराजमान वे लोग हँसते-गाते, अंगोंको मोड़ते और हाथोंको हिलाते-डुलातेसे दिखाई दे रहे थे। सभी वर सजधजकर, षड्दर्शनो की भाँति इस तरह सामने डटकर बैठे थे, मानो जैसे इसी श्रीमालके दर्शनसे सिद्धि मिलनेवाली हो ॥ १-६ ॥

[३] इतनेमें श्रीमाला छोटी-सी हथिनीपर बैठकर सभा-मंडपमें आई। उसपर बैठी वह ऐसी लगती थी मानो महामेघोंकी गोदमें बिजली हो। संपूर्ण अलंकारोंसे प्रसाधित उसकी देह, आकाशमें उदित चंद्रलेखाकी भाँति जान पड़ती थी। आगेकी हथिनीपर उसकी दूती बैठी थी मानो रातके पहले, संध्या ही प्रतिष्ठित हुई हो। वह दूती श्रीमालाके लिए राजसमूहको इस प्रकार दिखला रही थी मानो मधुकरी ही तरुचरोंको वनकी शोभा दिखा रही हो। वह बोली—"सुंदरी ! देखो, वह आक्रमण-

पुर उज्जोवन्तिय दीवि जेम। पच्छइ अन्धारु करन्ति तेम ॥८॥
णं सिद्धि कु-मुणिवर परिहरन्ति। दुग्गन्ध रुक्ख णं भमर-पन्ति ॥९॥

घत्ता

गणियारिएँ वाल णिय किक्किन्धहों पासु किह ॥
सरि-सलिल-रहल्लिएँ (?) कलहंसहों कलहंसि जिह ॥१०॥

[४]

किक्किन्धहों घल्लिय माल ताएँ। णं मेहेसरहों सुलोयणाएँ ॥१॥
आसण्ण परिट्ठिय विमल-देह। ण कणयगिरिहें णव-चन्दलेह ॥२॥
विच्छाय जाय सयल वि णरिन्द। ससि-जोण्हएँ विणु ण महिहरिन्द ॥३॥
णं कु-तवसि परम-गईहें चुक्क। णं पङ्कय-सर रवि-कन्ति-मुक्क ॥४॥
एत्थन्तरें सिरिमाला-वईहु। कोवग्गि-पलीविउ विजयसीहु ॥५॥
'अब्भन्तरें विज्जाहर-वराहुँ। पइसारु दिण्णु कि वन्नराहुँ ॥६॥
उद्दालहों वहु वरइत्तु हणहो। वाणर-वंस-यरुहों कन्दु खणहों ॥७॥
तं वयणु सुणेप्पिणु अन्धएण। हक्कारिउ अमरिस-कुद्धएण ॥८॥

घत्ता

'विज्जाहर तुम्हें अम्हें कइद्धय कवणु छलु।
लइ पहरणु पाव जाम ण पाडमि सिर-कमलु' ॥९॥

शील और युद्धमे दुर्निवार कुमार चन्द्रमुख हैं। और वह विजयसिंह है जो शत्रुके लिए प्रलयके समान रथनूपुर नगरका श्रेष्ठ स्वामी है। परंतु वह राजाओंको वंचित करती हुई वैसे ही चली जा रही थी जैसे सम्यग्दृष्टि दूसरोंके आगमोको दूरसे ही छोड़ देते हैं। वह उस दीपशिखाकी भाँति थी जो आगे आगे प्रकाश करती हुई पीछे अंधकार छोड़ती जाती है। वह उनको ऐसे ही छोड़ रही थी, मानो सिद्धि कुमुनियोंको या भ्रमरोंकी कतार दुर्गन्धित पेड़ोंको छोड़ रही हो। वह दूती उस बालाको कुमार किष्किंधके पास उसी तरह ले गई जैसे नदीकी जलधारा कल-हंसीको कलहंस के निकट ले जाती है॥१-१०॥

[४] पास पहुँचते ही उसने कुमार किष्किंधके गलेमें माला डाल दी, मानो सुलोचनाने ही मेघेश्वरके गलेमें माला डाल दी हो, उसके पास बैठी हुई विमलदेह वह ऐसी लगती थी मानो कनकगिरिपर नव चंद्रलेखा ही उदित हुई हो। समस्त राजा यह देखकर कान्तिहीन हो गये मानो शशि-ज्योत्स्नासे रहित पहाड़ ही हो या सुगतिसे चूका हुआ कोई कुतपस्वी हो, या मानो सूर्यकी कान्तिसे मुक्त कमलोंकी शोभा ही हो। इस बातको लेकर श्रीमालाके पति किष्किंधपर विजयसिंहकी क्रोधाग्नि भड़क उठी। उसने गरज कर कहा—"इतने विद्याधरोंके होते हुए भी इसने एक वानरके गलेमें वरमाला क्यों डाली। उस वधूको छीन लो, और वरको मार डालो, वानरवंशको जड़से उखाड़कर फेंक दो।" यह सुनकर, कुमार अंधक क्रुद्ध हो उठा और उसने ललकारकर कहा—"ठीक है? तुम विद्याधर हो और हम कपिध्वज। इसमे छलकी कोई बात नहीं। लो मै तबतक तुमपर प्रहार करता रहूँगा कि जबतक तुम्हारा सिरकमल धरतीपर नहीं गिर जाता॥१-६॥

[५]

तं वयणु सुणेप्पिणु विजयसीहु । उत्थरिउ पवर-भुव-फलिह-दीहु ॥१॥
अब्भिट्टु जुज्झु विज्जाहराहँ । सिरिमाला-कारणेँ दुद्धराहँ ॥२॥
साहणइँ मि अवरोप्परु भिडन्ति । ण सुकइ-कव्व-वयणइँ घडन्ति ॥३॥
भज्जन्ति खम्भ विहडन्ति मञ्च । दुक्कवि-कव्वालाव व कु-सञ्च ॥४॥
हय गय सुण्णासण सचरन्ति । ण पसुलि-लोयण परिभमन्ति ॥५॥
रणु विजाहर-वाणरहुँ जाम । लङ्काहिउ पत्तु सुकेसु ताम ॥६॥
आलग्गु सो वि वणेँ जिह हुआसु । जसु ढुक्कइ सो सो लेइ णासु ॥७॥
तहिँ अवसरेँ वेहाविद्धएण । रणेँ विजयसीहु हउ अन्धएण ॥८॥

घत्ता

महि-मण्डलेँ सीसु दीसइ असिवर-खण्डियउ ।
णावइ सयवत्तु तोडेँवि हंसेँ छण्डियउ ॥९॥

[६]

विणिवाइएँ विजयमइन्देँ खुद्दे । किएँ पाराउट्टएँ वल-समुद्दे ॥१॥
तुट्ठाणणु भणइ सुकेसु एम । 'सिरिमाल लएप्पिणु जाहुँ देव' ॥२॥
तेँ वयणेँ गय कण्टइय-गत्त । णिविसद्धेँ किक्कु-पुरक्खु पत्त ॥३॥
एत्तहेँ वि दुट्ठ-णिट्ठवण-हेउ । केण वि णिसुणाविउ असणिवेउ ॥४॥
'परमेसर पर-णरवर-सिरीहु । ओलग्गइ पाणेँहिँ विजयसीहु ॥५॥
पडिचन्दहोँ सुएँण कइद्धएण । आवट्टिउ जम-मुहेँ अन्धएण' ॥६॥
तं वयणु सुणेँवि ण करन्तु खेउ । सण्णहेँवि पधाइउ असणिवेउ ॥७॥
चउरङ्गे विजाहर-वलेण । परिवेढिउ पट्टणु तेँ छलेण ॥८॥

घत्ता

हक्कारिय वे वि 'पावहोँ पसय-महद्धयहो ।
लइ ढुक्कउ का लुणिग्गहोँ किक्किन्धन्धयहोँ' ॥९॥

[५] यह सुनते ही, परिखाकी तरह विशाल, समर्थ बाहुओं वाला विजयसिंह भी एकदम उछल पड़ा। और इसप्रकार एक श्रीमालाके लिए दुर्द्धर विद्याधरोंमे भयंकर संग्राम छिड़ गया। दोनों ओरकी सेनाएँ, सुकवि के काव्य-वचनोंकी भाँति आपसमे गुथ गईं। खंभे और मंच वैसे ही टूटने लगे जैसे कुकवियोंके अनगढ़ काव्य-शब्द। आसनोंसे शून्य हाथी-घोड़े ऐसे दौड़ रहे थे मानो वेश्या के नेत्र ही घूम रहे हों? तब लंकाका राजा सुकेश भी, विद्याधर और वानरोंके उस तुमुल युद्धमे जा धमका। और वनमे दावानल की तरह, वह भी शीघ्र ही युद्धमें भिड़ गया। जो उसके पास आता वही प्राणोंसे हाथ धो बैठता। आखिरकार, क्रुद्ध अंधक ने विजयसिंहका काम तमाम कर ही दिया ॥ १-८ ॥

तलवारसे कटा हुआ उसका सिर ऐसा जान पड़ता था मानो हंसने कमल तोड़कर धरतीपर डाल दिया हो ॥ ६ ॥

[६] विजयसिंहके पतनसे शत्रुसेना रूपी समुद्र क्षुब्ध हो उठा। तब सुकेशने प्रसन्न मुद्रामें श्रीमालीसे कहा, "आप श्रीमालाको लेकर चले जायं",। उसके कहनेसे, वे दोनों भाई हर्षित और पुलकित होकर, पलमात्रमें किष्कपुर पहुँच गये। इसी बीच, शत्रुका विनाश करनेके विचारसे किसीने अशनिवेगको जाकर वह खबर दी कि शत्रुराजाओंमे श्रेष्ठ विजयसिंहका अन्त कर दिया गया। प्रतिचंद्रके पुत्र अंधकने उसे यमके मुँहमे पहुँचा दिया है। यह सुनकर अशनिवेगने जरा भी खेद न करते हुए, अभियान की तैयारी शुरू कर दी। चतुरंग विद्याधर सेनाकी सहायतासे उसने छलपूर्वक किष्क नगरका घेरा डाल दिया ॥ १-८ ॥

ललकारते हुए उसने कहा, "अपनेको बचाओ, ओ कपिध्वज वाले अंधक और किष्किंध ! बाहर निकलो, तुम्हारा काल आ गया है" ॥ ६ ॥

[७]

पुणु पच्छएँ विप्फुरियाणणेण । हक्कारिय विज्जुलवाहणेण ॥१॥
'अरेँ भाइ महारउ णिहउ जेम । दुद्धर-सर-धोरणि धरहो तेम' ॥२॥
त णिसुणेँवि दूसह-दसणेहिँ । पडिचन्द-णरिन्दहोँ णन्दणेहिँ ॥३॥
णिग्गन्तहिँ जण-णिग्गय-पयावु । किउ पाराउट्ठउ सेण्णु साबु ॥४॥
सो असणिवेउ अन्धयहोँ वलिउ । तडिवाहणेण किक्किन्धु खलिउ ॥५॥
पहरणइँ मुयन्ति सु-दारुणाइँ । खणेँ अग्गेयइँ खणेँ वारुणाइँ ॥६॥
खणेँ पवणत्थइँ खणेँ थम्भणाइँ । खणेँ वामोहण-उम्मोहणाइँ ॥७॥
खणेँ महियलेँ खणेँ णहयलेँ भमन्ति । खणेँ सन्दणेँ खणेँ णेँ विमाणेँ थन्ति ॥८॥

घत्ता

आयामेँवि दुक्खु अन्धउ खग्गेँ कण्ठेँ हउ ।
णिउ पन्थेँ तेण जे सो विजयमइन्दु गउ ॥९॥

[८]

एत्तहेँ वि भिण्डिवालेण पहउ । किक्किन्ध-णराहिउ मुच्छ गउ ॥१॥
अच्छन्तउ परिचिन्तेँवि मणेण । आमेल्लिउ विज्जुलवाहणेण ॥२॥
तहिँ अवसरेँ ढुक्कु सुकेसु पासु । रहवरेँ छुहेवि णिउ णिय-णिवासु ॥३॥
पडिवाइउ चेयण-भाउ लद्धु । उट्ठन्तेँ पुच्छिउ परम-वन्धु ॥४॥
'कहिँ अन्धउ' 'पेसण-चुक्कु देव' । णिवडिउ पुणो वि तडि-रुक्खु जेम ॥५॥
पुणु पडिवाइउ पुणु आउ जीउ । हा पइँ विणु सुण्णउ पमय-दीउ ॥६॥
हा भाय सहोयर देहि वाय । हा पइँ विणु मेइणि विहव जाय' ॥७॥

घत्ता

तो भणइ सुकेसु 'सरउ णाह जिएवाहोँ ।
सिरेँ णिक्खएँ खग्गेँ अवसरु कवणु रुएवाहो ॥८॥

[७] उसने फिरसे तमतमाकर ललकारा—"तुमने मेरे भाई को जैसे मारा मैं भी तुम्हें यहीं बाणोंकी कतारसे अभी लेता हूँ।" यह सुनकर प्रतिचंद्राजाके दुर्दर्शनीय पुत्रोंने निकलकर समूची सेनाको निस्तेज कर विमुख कर दिया। तब अशनिवेग अंधकपर झपटा, और तडिद्वाहन किष्किंधपर। वे आपसमें एक दूसरेपर हमला करने लगे। कभी एक क्षणमें आग्नेय बाण छोड़ते, तो दूसरे क्षणमें वारुण बाण, कभी एक क्षणमें पवन बाण तो दूसरेमें स्तभन विद्या। एक क्षणमें व्यामोह तो दूसरेमें उन्मोह, एक पलमें वे धरतीपर तो दूसरे पलमें आकाशमें दिखाई देते। पलमें रथपर तो पलमें विमानपर जा पड़ते। आखिरकार बलात् किसी तरह अंधक कृपाणसे कंठमें आहत हो उठा। तब, वह भी उसी पथ चला गया, जिसपर विजयसिंह जा चुका था॥१-६॥

[८] इधर गोफनसे आहत होकर किष्किंधराज भी मूर्छित हो गया। अपने मनमें उसे मरा हुआ समझकर तडिद्वाहनने, छोड़ दिया। इसी अवसरपर सुकेश उसके पास पहुँचा और उसे रथमें उठाकर वह अपने डेरेपर ले गया। हवा करने पर वह सचेतन हुआ। उठते ही उसने अपने भाईके बारेमें पूछा। तब सुकेशने कहा—"अंधक कहाँ देव! वह तो मारा गया? (पेशण चुक्क)। यह सुनकर तटके पेड़की भाँति वह फिरसे धरतीपर गिर पड़ा। दुबारा हवा करनेपर उसे फिर चेतना आई, वह विलाप करता हुआ बोला, "भाई, तुम्हारे बिना वानर द्वीप सूना है, हे भाई, हे सहोदर! मुझसे बात करो, तुम्हारे बिना यह धरती विधवा हो गई।" ॥१-८॥

तब सुकेशने उसे समझाते हुए कहा—"अब उसके जीवित होनेमें संदेह है, तुम्हारे सिरपर तलवार लटक रही है, फिर यह रोनेका अवसर कैसा?" ॥ ६ ॥

[६]

विणु कज्जें वइरिहिँ अङ्गु देहि । पायाललङ्क पइसरहुँ एहि ॥१॥
जीवन्तहुँ सिज्झइ सव्वु कज्जु । एत्तिउ ण वि हउँ ण वि तुहुँ ण रज्जु ॥२॥
तं णिसुणॅवि वाणर-वस-सारु । णीसरिउ स-साहणु स-परिवारु ॥३॥
णासन्तु णिऍवि हरिसिय-मणेण । रहु वाहिउ विज्जुलवाहणेण ॥ ४ ॥
करॅ धरिउ असणिवेएण पुत्तु । किं उत्तिम-पुरिसहँ एउ जुत्तु ॥ ५ ॥
णासन्तु णवन्तु सुवन्तु सत्तु । भुञ्जन्तु ण हम्मइ जलु पियन्तु ॥ ६ ॥
जें विजयसीहु हउ भुय-विसालु । सो णिउ कियन्त-दन्तन्तरालु ॥ ७ ॥
तं णिसुणॅवि तडिवाहणु णियत्तु । लहु देसु पसाहिउ एक्क-छत्तु ॥ ८ ॥

घत्ता

णिग्घायहों लङ्क अण्णइँ अण्णइँ पट्टणइँ ।
भुत्तइँ इच्छाएँ सु-कलत्तइँ व स-जोव्वणइँ ॥ ६ ॥

[१०]

किक्किन्ध-सुकेसहँ पुर हरेवि । अवर विज्जाहर वसिकरेवि ॥ १ ॥
वहु-दिवसँहिँ घण-पडलइँ णिएवि । त विजयसीह-दुहु सभरेवि ॥ २ ॥
सहसार-कुमारहों देवि रज्जु । अप्पुणु साहिउ पर-लोय-कज्जु ॥ ३ ॥
वहु कालें किक्किन्धाहिवो वि । गउ वन्दण-हत्तिएँ मेरु सो वि ॥ ४ ॥
पल्लट्टु पडीवउ णर-वरिट्ठु । महु पवर-महीहरु ताम दिट्ठु ॥ ५ ॥
जोवइ व पईहिय-लोयणेहिँ । हसइ व कमलायर-आणणेहिँ ॥ ६ ॥
गायइ व भमर-महुअरि-सरेहिँ । ण्हाइ व णिम्मल-जल-णिज्झरेहिँ ।७।
वीसमइ व ललिय-लयाहरेहिँ । पणवइ व फुल्ल-फल-गुरुभरेहिँ ॥ ८ ॥

[६] अकारण ही तुम शत्रुको अपना शरीर देना चाहते हो। आओ पाताल-लंकामें घुस चलें। जिंदा रहने पर सब काम बन जायंगे। ऐसेमें तो, हम, तुम और राज्य कुछ भी नहीं रहेगा।" यह सुनकर, वानरवंश-शिरोमणि वह अपने परिवार और सेनाके साथ, वहाँसे निकल पड़ा। इधर तडिद्वाहनने भी शत्रुको नष्ट होते और भागते देखकर, प्रसन्नतासे अपना रथ हाँका? परंतु अशनिवेगने बीचमें ही अपने पुत्र तडिद्वाहनका हाथ पकड़कर कहा, "उत्तम पुरुषके लिए यह उचित नहीं कि वह, मरते, झुकते, खाते-पीते या सोते हुए शत्रुको मारे, जिसने महा-बाहु विजयसिंहको मारा था, उसे मैंने कालकी विकराल दाढ़में पहुँचा दिया है॥ १-७॥

यह सुनकर तडिद्वाहन रुक गया। फिर उसने शीघ्र अपने देशका एकछत्र शासन सम्हाल लिया। उसने निर्घातको लंका नगरी दे दी। दूसरोंको अन्य नगर देकर अपनी इच्छाके अनुसार वह नवयौवना सुंदर पत्नीकी तरह धरतीका भोग करने लगा॥८-६॥

[१०] किष्किंध और सुकेशके नगरोंका उसने हरण कर लिया। उसने दूसरे विद्याधरोंको भी अपने अधीन बनाया। बहुत समयके अनन्तर, एक दिन मेघपटल देख और अपने भाई विजयसिंह के दुःख यादकर, वह विरक्त हो उठा। अपने पुत्र सहस्राक्षको राज्य देकर, वह अपना परलोक साधनेके लिए चला गया। बहुत कालके बाद किष्किंध राजा भी, वंदना भक्तिके लिए मेरु पर्वतपर गया। वापस लौटते हुए उसने मधु नामका विशाल पर्वत देखा, उसे वह पर्वत, अपने लम्बे नेत्रोंसे देखता-सा, कमला-करके आननसे हँसता-सा, भ्रमणशील भौंरोंसे गुनगुनाता-सा, निर्मल जलके निर्झरोंसे नहाता-सा, ललित लताघरोंमें विश्राम करता-सा, फूल और फलोंके गुरुतर भारसे प्रणाम करता-सा जान पड़ा॥१-८॥

घत्ता

त सेलु णिएवि कोक्कावेवि णिय पय पउरु।
किउ पट्टणु तेत्थु किक्किन्धे किक्किन्धपुरु ॥ ६ ॥

[११]

महु-महिहरो वि किक्किन्धु वुत्तु। उच्छुरउ ताम उप्पण्णु पुत्तु ॥१॥
अण्णु वि सूररउ कणिट्ठु तासु। वाहुवलि जेम भरहेसरासु ॥२॥
एत्तहें वि सुकेसहों तिण्णि पुत्त। सिरिमालि - सुमालि-सुमल्लवन्त ॥३॥
पोढत्तणें वुच्चइ तेहिँ ताउ। 'कि ण जाहुँ जेत्थु किक्किन्धराउ' ॥४॥
तं सुणेवि जणेरें वुत्तु एम। थिय दाढुप्पाडिय सप्पु जेम ॥५॥
कहिँ जाहुँ मुएवि पायाललङ्क। चउपासिउ वइरिहुँ तणिय सङ्क ॥६॥
घणवाहण-पमुह णिरन्तराइँ। एत्तियइँ जाम रज्जन्तराइँ ॥७॥
अणुहूअ लङ्क कामिणि व पवर। महु तणएँ सीसें अवहरिय णवर' ॥८॥

घत्ता

तं वयणु सुणेवि मालि पलित्तु दवग्गि जिह।
'उद्धद्धएँ रज्जें णिविस वि जिज्जइ ताय किह ॥ ६ ॥

[१२]

महुं कहिय भडारा पइँ जि णित्ति। तिह जीवहि जिह परिभमइ कित्ति ॥१॥
तिह हसु जिह ण हसिज्जइ जणेग। तिह भुञ्जु जिह ण मुच्चहि धणेण ॥२॥
तिह जुज्झु जिह णिव्वुइ जणह अङ्गु। तिह तजु जिह पुणु वि ण होइ सङ्गु ॥
तिह चउ जिह वुच्चइ साहु साहु। तिह संचरु जिह सयणहँ ण डाहु ॥४॥
तिह सुणु जिह णिवसहि गुरुहुँ पासें। तिह मरु जिह णावहि गब्भवासें ॥५॥
तिह तउ करें जिह परितवइ गत्तु। तिह रज्जु पालें जिह णवइ सत्तु ॥६॥
कि जीएँ रिउ आसङ्किएण। कि पुरिसें माण-कलङ्किएण ॥७॥
किं दव्वे दाण-विवज्जिएण। किं पुत्तें मइलइ वंसु जेण ॥ ८ ॥

उस पहाड़को देख, उसने अपने पुरजनों और प्रजाको बुलाकर वहीं नगर बसा लिया। उसका नाम रखा किष्किंधपुर ॥ ९ ॥

[११] तबसे पर्वतका नाम भी किष्किंध हो गया। उसके इक्षुरव नामका पुत्र हुआ, उसका छोटा भाई था सूररव, वैसे ही जैसे भरतके छोटे भाई बाहुबलि थे ॥ १–२ ॥

इधर सुकेशके भी तीन पुत्र हुए श्रीमालि, सुमालि और माल्यवंत। प्रौढ़ होनेपर उन्होंने अपने पितासे कहा कि हम वहाँ क्यों न जांय जहाँ किष्किंधनरेश हैं। यह सुनकर पिताने यह कहा कि जब हमारी स्थिति दन्तविहीन सर्पकी भाँति हो तब पाताल-लंका छोड़कर कहाँ जा सकते है। चारों ओरसे शत्रुओं की आशंका है। मेघवाहनके समयसे यहाँ हमारा निरंतर राज्य रहा है। उत्तम कामिनीकी तरह हमने इस लंकाका भोग किया। पर वही मुझसे छीन ली गई ॥ ३–८ ॥

यह सुनकर मालि दावानलकी तरह भड़क उठा। वह बोला, "हे तात, राज्यके विनष्ट होनेपर एक भी पल जीना ठीक नहीं।" ॥९॥

[१२] आदरणीय भट्टारक आपने मुझे यही नीति बताई थी कि ऐसा जीवन बिताना चाहिए कि जिससे संसारमें कीर्ति फैले। हँसना वही ठीक है कि दूसरे हँसी न उड़ा सकें, ऐसा भोग करना चाहिए कि धन समाप्त न हो। ऐसा लड़ो कि अंगों को खेद न हो ? ऐसा छोड़ो कि फिर परिग्रह न करना पड़े। ऐसा त्याग करो कि सब लोग साधु साधु कहें। ऐसा चलो कि स्वजनों को भी डाह न हो। ऐसा सुनो कि जिससे गुरुके पास रह सको। ऐसा मरो कि फिरसे जन्म ग्रहण न करना पड़े। ऐसा तप साधो कि शरीर शुद्ध हो जाय। ऐसा राज्य करो कि शत्रु भी झुक जाय। अतः शत्रुसे आशंकित होकर जीनेसे क्या ? दलितमान नरसे क्या ? दान रहित धनसे क्या ? वंशको बट्टा लगानेवाले पुत्रसे क्या ? ॥९–८॥

घत्ता

जइ कल्लएँ ताय लङ्काणयरि ण पइसरमि ।
तो णियय-जणेरि इन्दाणी करयलें धरमि ॥९॥

[१३]

गय रयणि पयाणउ परएँ दिण्णु । हउ तूरु रसायलु णाइँ भिण्णु ॥१॥
सच्चल्लिउ साहणु णिरवसेसु । आरूढ के वि णर गयवरेसु ॥२॥
तुरएसु के वि के वि सन्दणेसु । सिविएसु के वि पञ्चाणणेसु ॥३॥
परिवेढिय लङ्का-णयरि तेहिँ । ण महिहर-कोडि महा-घणेहिँ ॥४॥
णं पोढ-विलासिणि कामुएहिँ । ण सयवत्तिणि फुल्लन्धुएहिँ ॥५॥
किउ कलयलु रहसाऊरिएहिँ । पडिपहयइँ तूरइँ तूरिएहिँ ॥६॥
सङ्खिएँहिँ सङ्ख तालिएँहिँ ताल । चउ-पासिउ उट्ठिय भड-वमाल ॥७॥
धाइउ लङ्काहिउ विप्फुरन्तु । रणेँ पाराउट्टउ वलु करन्तु ॥८॥

घत्ता

ण मत्त-गइन्दु पञ्चाणणहोँ समावडिउ ।
सरहसु णिग्घाउ गम्पिणु मालिहे अब्भिडिउ ॥९॥

[१४]

पहरन्ति परोप्परु तरुवरेहिँ । पुणु पाहाणेंहिँ पुणु गिरिवरेहिँ ॥१॥
पुणु विज्जारूवहिँ भीसणेहिँ । अहि-गरुड-कुम्भि-पञ्चाणणेहिँ ॥२॥
पुणु णाराएहिँ भयङ्करेहि । भुयइन्दायाम - पईहरेहिँ ॥३॥
छिन्दन्ति महारह-छत्त-धयइँ । वइयागरण व वायरण-पयइँ ॥४॥
एत्थन्तरेँ वाहिय-सन्दणेण । दणुवइ-इन्दाणिहेँ णन्दणेण ॥५॥
सयवारउ परिअञ्छेवि गयणेँ । हउ खग्गेँ छुद्धु कियन्त-वयणेँ ॥६॥
णिग्घाउ पडिउ णिग्घाउ जेम । महियलेँ णर णहेँ परितुट्ठ देव ॥७॥
चत्तारि वि धुव-परिहव-कलङ्क । जय-जय-सद्देण पइट्ठ लङ्क ॥८॥

हे तात यदि कल ही सवेरे मैं लंकानगरीमें प्रवेश नहीं करूँ तो अपनी माताका हाथ स्वयं पकड़ूँ ॥ ६ ॥

[१३] रात बीतनेपर दूसरे दिन सवेरे उसने कूच कर दिया। तूर्य बज उठे. उससे रसातल और नागराज विदीर्ण हो गये। समस्त सेना चल पड़ी. कोई नरवर गजोंपर आरूढ़ हो गये. कोई अश्वोंपर, कोई रथोंपर. कोई पालकियोंमें और कोई सिंहों पर। उन्होंने लंकानगरीको ऐसा घेर लिया. मानो महामेघोंने पर्वतमालाओंको. कामुकोंने प्रौढ़ विलासिनीको और भ्रमरोंने कमलिनीको घेर लिया हो। आवेगसे भरे हुए उन्होंने खूब कलकल किया. तूर्यवादकोंने खूब तूर्य फूँके. शंखवालोंने शंख और तालवालोंने ताल बजाये। चारों ओर योद्धाओंका कोलाहल होने लगा। तमतमाकर लंकानरेश दौड़ा. वह शत्रु सेनाको विलुप्त करने लगा। इतनेमें निर्घात विद्याधर हर्षसे जाकर मालिसे वैसे ही भिड़ गया जैसे गजेन्द्र सिंहसे ॥१-६॥

[१४] वे आपसमें एक दूसरेपर बड़े-बड़े पेड़ों. पहाड़ों और गिरिवरोंसे प्रहार करने लगे, कभी विद्यामय भीषण सर्पों गरुड हाथी और सिंहों से। कभी शेषनाग की तरह लम्बे-लम्बे भयंकर बाणोंसे। वे भट्ट रथोंके छत्र और ध्वजों को वैसे ही छेद देते थे जैसे वैयाकरण व्याकरणके पदोंको तोड़ देता है। इतनेमें सुकेशके पुत्र मालीने अपना रथ हांका और उसे (निर्घातको) उठाकर आकाशमें सौ बार घुमाया, फिर तलवारसे काटकर यमको चढ़ा दिया। निर्घात निर्घातकी तरह गिर पड़ा। यह देखकर, धरतीपर मनुष्य संतुष्ट हो उठे और आकाशमें देवता। इस तरह उन चारोंने (सुकेश मालि सुमालि और माल्यवंतने) अपने पराभवका कलंक धो डाला। जय जय शब्दके

घत्ता

सन्तिहेँ सन्तिहरेँ गम्पिणु वन्दण-हत्ति किय ।
सुविलासिणि जेम लङ्क स इं भु ञ्जन्त थिय ॥६॥

●

८. अट्ठमो संधि

मालिहेँ रज्जु करन्ताहोँ सिद्धइ विज्जाहर-मण्डलइँ ।
सहसा अहिमुहिहूआइँ सायरहोँ जेम सव्वइँ जलइँ ॥१॥

[१]

तहिँ अवसरेँ छुह-पङ्कापण्डुरेँ । दाहिण-सेढिहिँ रहणेउर-पुरेँ ॥१॥
पिहुल-णियम्बिणि पीण-पओहरि । सहसारहोँ पिय माणस-सुन्दरि ॥२॥
ताहेँ पुत्तु सुर-सिर-सपण्णउ । इन्दु चवेवि इन्दु उप्पण्णउ ॥३॥
भेसइ मन्ति दन्ति अइरावणु । सेणावइ हरिकेसि भयावणु ॥४॥
विज्जाहर जि सव्व किय सुरवर । पवण-कुर- वरुण-जम-ससहर ॥५॥
छव्वीस वि सहसइँ पेक्खणयहुँ । णाहिँ पमाणु खुज्ज-वामणयहुँ ॥६॥
गायण जाइँ सुरिन्दत्तणयहुँ । णाम ताइँ कियइँ अप्पणयहुँ ॥७॥
उव्वसि-रम्भ-तिलोत्तिम-पहुइहिँ । अट्ठायाल-सहस-वर-जुवइहिँ ॥८॥

घत्ता

परिचिन्तिउ विज्जाहरेँण तहोँ जाइँ-जाइँ आखण्डलहोँ ।
ताइँ ताइँ महु चिन्धाइँ लइ हउँ जि इन्दु महि-मण्डलहोँ ॥९॥

साथ उन्होंने लंकानगरीमें प्रवेश किया। शांतिनाथके शांत जिनालयमें जाकर उन्होंने वंदना भक्ति की और सुविलासिनीकी तरह लंकानगरीका स्वयं भोग करने लगे।

•

आठवीं संधि

मालिके राज्य कालमें सभी विद्याधर-मंडल वैसे ही वशमें आ गये जैसे समस्त नदियोंका जल समुद्रके प्रति अभिमुख हो जाता है।

[१] इसी मालिके राज्य-कालमें विजयार्ध पर्वतकी दक्षिण श्रेणिमें सुधा-पंकसे धवल, रथनूपुर नामका नगर था। उसके राजा सहस्रारकी मानसुन्दरी नामकी पत्नी थी। जो पृथुल नितम्बिनी और पीनपयोधरों वाली थी। उसका, देवश्री से संपन्न इन्द्र नामका पुत्र था। इन्द्रको परास्त करने वाला वह मानो इन्द्र ही था। उसका मंत्री था बृहस्पति, हाथी ऐरावत और सेनापति था भयंकर हरिकेशी, पवन कुबेर वरुण यम शशधर आदि देवताओंको उसने अपना विद्याधर बना लिया। छब्बीस हजार उसके प्रेक्षणगृह थे। खुब्ज और वामनोंकी तो कोई गिनती ही नहीं थी। इन्द्रकी जितनी गायिकाएँ थीं, उसने भी अपने यहाँ वैसे ही नाम रख लिये। उर्वशी रम्भा तिलोत्तमा आदि अड़तालीस हजार सुंदर युवतियाँ उसके पास थीं। विद्याधर इन्द्रने अपने मनमें सोचा कि इन्द्रके जो जो चिह्न हैं वे मेरे भी होने चाहिए। आखिर मैं भी धरती-मंडलका इन्द्र हूँ॥ १-९॥

[२]

जुएँ खय-कालें णिड्ढु (?) णिड्ढालिहें । जे जे सेव करन्ता मालिहें ॥१॥
ते ते मिलिय णराहिव इन्दों । अवर जलोह व अवर-समुद्दहों ॥२॥
कप्पु ण दिन्ति जन्ति सिरिगारहिँ(?)। आण करन्ति वि णाहङ्कारहिँ ॥३॥
केण वि कहिउ गम्पि तहों मालिहें । 'पहु सकन्ति(?) ण तुम्ह णिड्ढालिहें(?)
इन्दु को वि सहसारहों णन्दणु । तासु सरन्ति सव्व भिच्चत्तणु' ॥५॥
त णिसुणेवि सुकेसहों पुत्तें । कोव - जलण - जालोलि-पलित्तें ॥६॥
देवाविय रण - भेरि भयङ्कर । घरु(?)सण्णहें वि पराइय किङ्कर ॥७॥
किक्किन्धहों किक्किन्धहों णन्दण । दिण्णु पयाणउ वाहिय सन्दण ॥८॥

घत्ता

'गमणु ण सुज्झइ महु मणहों' त मालि सुमालि करँहिँ धरइ ।
'पेक्खु देव दुणिमित्ताइँ सिव कन्दइ वायसु करगरइ ॥९॥

[३]

पेक्खु कुहिणि विसहर-छिज्जन्ती । मोक्कल-केस णारि रोवन्ती ॥१॥
पेक्खु फुरन्तउ वामउ लोयणु । पेक्खहि रुहिर-ण्हाणु वस-भोयणु ॥२॥
पेक्खु वसुन्धरि-तलु कम्पन्तउ । घर-देवउल - णिवहु लोट्टन्तउ ॥३॥
पेक्खु अकालें महा-घणु गज्जिउ । णहें णच्चन्तु कवन्धु अलज्जिउ' ॥४॥
तं णिसुणेवि वयणु तहों वलियउ । 'वच्छ वच्छ जइ सउणु जि वलियउ ॥५॥
तो कि मरइ सव्वु एँउ अलियउ । दइउ मुएवि अण्णु को वलियउ ॥६॥
छुड्डु धीरत्तणु होइ मणूसहों । लच्छि कित्ति ओसरइ ण पासहों' ॥७॥
एम भणेप्पिणु दिण्णु पयाणउ । चलिउ सेण्णु सरहसु स-विमाणउ ॥८॥

[२] जो लोग अभीतक मालिकी सेवा कर रहे थे वे सब क्षयकालके समय उसके भाग्यहीन होने पर इन्द्रसे वैसे ही मिल गये जैसे जलसमूह दूसरे समुद्रमे जा मिलते हैं। वे वैभवके साथ रहते थे पर मालिको कर नहीं देते थे। अहंकारमे चूर वे उसकी आज्ञा भी नहीं मानते थे। तव किसीने जाकर मालिसे कहा, "प्रभु, वे आपकी आज्ञा भी नहीं मानते, सहस्रारका कोई इन्द्र नामका लड़का है सब लोग उसीकी चाकरी करने लगे हैं।" यह सुनते ही सुकेशका पुत्र मालि क्रोधाग्निकी ज्वालासे जल उठा ॥१–६॥

तुरंत उसने भयंकर रणभेरी बजवा दी। तैयार होकर योद्धा आने लगे। किष्किंध और उसका पुत्र, दोनो रथ हाँककर चल पड़े। तव सुमालिने मालिका हाथ पकड़ कर कहा—"मेरे विचारसे अभी जाना ठीक नहीं। हे देव, देखिए, कैसे दुर्निमित्त हो रहे हैं। सियार रो रहा है, कौवा विरस बोल रहा है।"॥७–६॥

[३] विषधरोंसे छीजते हुए मार्गको देखिए। बाल खोल कर स्त्री रो रही है। बाईं ऑख फड़क रही है। रक्त-स्नान और वसा-मज्जाका वह भोजन देखिए। धरतीका तलभाग कॉप रहा है। गृह और देव-कुलोंके समूह लोट-पोट हो रहे हैं। देखिए, अकालमे ही महामेघ गरज रहे हैं। आकाशमे निंद्य धड़ नाच रहे हैं।" यह सुनकर मालि अपना मुख मोड़कर बोला, "वत्स-वत्स! क्या शकुन ही बलवान् है। तो फिर सब मर जॉयगे? यह सव झूठ है कि दैवको छोड़कर और कोई बलवान् नहीं हो सकता। मनुष्यमे थोड़ी-सी धीरता होनी चाहिए। फिर उसके पाससे लक्ष्मी और कीर्ति कभी नहीं हटती।" यह कहकर उसने प्रस्थान कर ही दिया। और तव, विमानोंके साथ सेना भी वेगपूर्वक चल पड़ी॥ १–८॥

घत्ता

हय-गय-रहवर-णरवरहिँ महियलेँ गयणयलेँ ण माइयउ ।
दीसइ विञ्झ-महीहरहोँ मेहउलु णाइँ उद्धइयउ ॥९॥

[४]

तं जमकरणहोँ अणुहरमाणउ । णिसुणेँवि रक्खहोँ तणउ पयाणउ ॥१॥
उभय-सेढि-सामन्त पणट्ठा । गम्पिणु इन्द्रहोँ सरणेँ पइट्ठा ॥२॥
तहिँ अवसरेँ बलवन्त महाइय । मालिहिँ केरा दूअ पराइय ॥३॥
'अहोँ अहोँ रहणेउर-पुर-राणा । कप्पु देवि करेँ सन्धि अयाणा ॥४॥
दुज्जउ लङ्काहिउ समरङ्गणेँ । छुद्धु जेण णिग्घाउ जमाणणेँ ॥५॥
राय-लच्छि तइलोक्क-पियारी । दासि जेम जसु पेसणगारी ॥६॥
तेण समाणु विरोहु असुन्दरु' । आएँहिँ वयणेँहिँ कुविउ पुरन्दरु ॥७॥
'दूउ भणेवि तेण तुहुँ चुक्कउ । णं तो जम-दन्तन्तरु ढुक्कउ ॥८॥

घत्ता

को सो लङ्क-पुराहिवइ को तुहुं किर सन्दि कहो त्तणिय ।
जो जीवेसइ विहि मि रणेँ महि णीसावण्ण तहो त्तणिय ॥९॥

[५]

गय ते मालि-दूय णिब्भच्छिय । दुव्वयणावमाण-पडिहत्थिय ॥१॥
सण्णज्झइ सुरिन्दु सुर-साहणु । कुलिस-पाणि अइरावय-वाहणु ॥२॥
सण्णज्झइ तणु-हेइ हुआसणु । धूमद्धउ कुयारि मेसासणु ॥३॥
सण्णज्झइ जमु दण्ड-भयङ्करु । महिसारूढु पुरन्दर-किङ्करु ॥४॥
सण्णज्झइ णइरिउ मोग्गर-धरु । रिच्छारूढु रणङ्गणेँ दुद्धरु ॥ ५ ॥
सण्णज्झइ वरुणु वि दुहंसणु । णागवास-करु करिमयरासणु ॥ ६ ॥
सण्णज्झइ मिग-गमणु समीरणु । तरुवर-पवरुग्गामिय-पहरणु ॥ ७ ॥
सण्णज्झइ कुवेरु फुरियाहरु । पुप्फ-विमाणारूढु सत्ति-करु ॥ ८ ॥

[४] हय, गज, रथवर और श्रेष्ठ योद्धा आकाश और धरती दोनोमे नहीं समा रहे थे। वे ऐसे लगते थे मानो विन्ध्याचलपर मेघकुल ही उठ रहे हो। यम, करण के तुल्य, उस राक्षसके प्रस्थानको सुनकर, विजयार्ध पर्वतकी दोनो श्रेणियोंके सामन्त भयभीत होकर इन्द्रकी शरणमें चले गये। इसी समय, मालिके माननीय और शक्ति सम्पन्न दूतोंने (इन्द्रके पास) आकर कहा, "अरे अज्ञान रथनूपुर नरेश! तुम कर देकर संधि कर लो, क्योंकि समरांगणमे लंकाधिपति अजेय है। उसने निर्घात तकको यमके मुँहमे पहुँचा दिया। त्रिलोकप्रिय राजलक्ष्मी, उसकी सेवा दासीकी भाँति करती है। उसके साथ विरोध करना ठीक नहीं।" उन शब्दोंसे कुपित होकर इन्द्रने कहा, "जाओ तुम्हें दूत समझकर छोड़ रहा हूँ। नही तो अभी तक तुम यमकी दाढके भीतर पहुंच जाते। कौन है वह लंकाधिपति? कौन हो तुम? किसके साथ कैसी संधि? दोनोंमे से जो युद्धमे बचेगा, यह अशेप धरती उसी की होगी।" ॥१-६॥

[५] अपमानित होकर मालिके दूत चले आये। दुर्वचन और शेखीसे प्रताड़ित इन्द्र भी तैयार होने लगा। हाथमे वज्र लिये वह ऐरावत हाथी पर जा बैठा। धूमध्वज कुञ्जके शत्रु मेपासन तनुहेति हुताशन भी तैयारी करने लगा। महिषपर आरूढ़ इन्द्रके किंकर दण्डसे भयंकर यम भी संनद्ध हो रहे थे। रणमे दुर्द्धर और रीछ पर सवार नैऋत, मुद्गर लेकर तैयारी करने लगा। मगर पर आरूढ़, दुर्दर्शनीय वरुण, हाथमे नागपाश लेकर तैयार होने लगा। बड़े बड़े पर्वतोंके उखाड़नेमे समर्थ, मृगगामी पवन भी तैयार हो रहा था। कॉपते हुए अधरोंसे हाथमें शक्ति लेकर कुबेर भी पुष्पक विमानमे जा बैठा। शत्रुसेनाको सताने-

सण्णज्झइ ईसाणु विसासणु । सूल-पाणि पर-बल-सतासणु ॥ ६ ॥
सण्णज्झइ पञ्चाणण-गामिउ । कुन्त-पाणि ससि ससिपुर-सामिउ ॥१०॥

घत्ता

जाइँ वि ढिल्लीहोन्ताइँ ताइ मि रण-रस-पुलउग्गयइँ ।
णिएँवि परोप्परु चिन्धाइँ सुहडहुँ कवयइँ फुट्टेंवि गयइँ ॥११॥

[६]

ताम परोप्परु वेहाविद्धइँ । पढम भिडन्तइँ अग्गिम-खन्धइँ ॥१॥
मुसुमूरिय - उर-सिर - मुह-कन्धर । पच्छिम-भाअ-सेस थिय कुञ्जर ॥२॥
पुक्खुग्गीरिय पडिपहरन्ति व । 'कहिँ गय अग्गिम-भाय' भणन्ति व ॥३॥
जोह वि अमुणिय-जढर-उरत्थल । 'कहिँ गय रिउ' पहरन्ति व करयल ॥४॥
सचूरिय तुरङ्ग-धय-सारहि । चक्क-सेस थिय णवर महारहि ॥५॥
तहिँ अवसरेँ रहणेउर-सारहोँ । धाइउ मल्लवन्तु सहसारहोँ ॥६॥
सूररएण सोमु रणेँ खारिउ । उच्छुरएण वरुणु हक्कारिउ ॥७॥
जमु किक्किन्धेँ धणउ सुमालि । पवणु सुकेसेँ सुरवइ मालि ॥८॥

घत्ता

'एत्तिउ कालु ण वुज्झियउ तुहुँ कवणहुँ इन्दहुँ इन्दु कहेँ ।
रण्डेँहिँ मुण्डेहिँ जिब्भिएँहिँ किं जो सो रम्मइ इन्दवहेँ ॥९॥

[७]

तं णिसुणेँवि चोइउ अइरावउ । णावइ णिज्झरन्तु कुल-पावउ ॥१॥
मालि-पुरन्दर भिडिय परोप्परु । विहि मि महाहउ जाउ भयङ्करु ॥२॥
जुज्झइँ सेस-णरेँहिँ परिचत्तइँ । थिय पडिथिरइँ करेप्पिणु णेत्तइँ ॥३॥
इन्दयालु जिह तिह जोइज्जइ । रक्खेँ रक्ख-विज्ज चिन्तिज्जइ ॥४॥

वाला बैल पर आरूढ़, शूलपाणि ईशान भी तैयारी करने लगा। सिंह पर बैठनेवाला, भाला हाथमें लिये, शशिपुरका अधिपति चंद्रमा भी तैयार होने लगा। जितने ही वे शिथिल होते, उतने ही वीररससे पुलकित हो उठते। एक दूसरेकी पताकाओंको देखकर, सैनिकोंके कवच फूटसे गये ॥१-१०॥

[६] सर्वप्रथम क्रोधसे भरी अग्रिम सेना भिड़ी। उर, सिर, मुख और कन्धोंको मसमसाते हुए हाथी सेनाके पीछे भागमें खड़े थे, वे पूँछ उठाकर आक्रमण कर रहे थे यह सोचते हुए कि सेनाका अगला भाग कहाँ है? योधा भी पेट छातीका ख्याल न करते हुए, 'शत्रु कहाँ गया' कहते हुए हाथसे ही प्रहार कर रहे थे। अश्व, रथ और सारथि चकनाचूर हो चुके थे। केवल चक्र-सहित महारथी लोग ही शेष बच पाये ॥१-५॥

तब अवसर पाकर, माल्यवंत, 'रथनूपुर सार' सहस्रारके ऊपर दौड़ा। उधर सूररवने युद्धमें सोमको क्षुब्ध कर दिया। इक्षुरवने वरुणको ललकारा। किष्किधने यमको, सुमालिने कुवेरको, सुकेशने पवनको और मालिने इन्द्रको चुनौती दी और कहा—"इस समय मैं कालको भी कुछ नहीं समझता। फिर तुम इन्द्रकी क्या बात? क्या तुम वही इन्द्र हो जो अभी अभी धड़ सिर और जीभसे इन्द्रपथ पर रमण करेगा ॥६-६॥

[७] यह सुनते ही इन्द्रने अपने ऐरावतको प्रेरित किया, जो मानो झरता हुआ कुलपावक ही था। मालि और इन्द्र आपसमें लड़ पड़े। दोनोंमें घोर युद्ध हुआ। सब लोगोंसे हटकर वे दोनों एक दूसरे पर दृष्टिपात कर लड़ने लगे। जब जहाँ-तहाँ इन्द्रजाल दिखाई पड़ने लगा तो राक्षस मालिने भी अपनी राक्षस विद्याका स्मरण किया। यह विद्या कभी (बहुत पहले)

भीम-महाभीमेंहिँ जा दिण्णी । गोत्त-परम्पराए अवइण्णी ॥५॥
सा विकराल-वयण उद्धाइय । परिवड्ढिय गयणयलेँ ण माइय ॥६॥
चिन्तिउ वरुण-पवण-जम-धणएँहिँ । 'पत्तु इन्दु चरिएँहिँ अप्पणएँहिँ ॥७॥
दूए वुत्तु आसि रायङ्गणेँ । दुज्जउ मालि होइ समरङ्गणेँ ॥८॥

घत्ता

तहिँ पत्थावेँ पुरन्दरेँण माहिन्द-विज्ज लहु संभरिय ।
वड्ढिय तहेँ वि चउगुणिय रवि-कन्तिएँ ससि-कन्ति व हरिय ॥९॥

[८]

तं माहिन्द-विज्ज अवलोएँवि । भणइ सुमालि मालि-मुहु जोएँवि ॥१॥
'तइयहुँ ण किउ महारउ वुत्तउ । एवहिँ आयउ कालु णिरुत्तउ' ॥२॥
त णिसुणेँवि पलम्ब-भुय-डालेँ । अमरिस-कुद्धएण रणेँ मालेँ ॥३॥
वायव - वारुण - अग्गेयत्थइँ । मुक्कइँ तिण्णि मि गयइँ णिरत्थइँ ॥४॥
जिह अण्णाण-कण्णेँ जिण-वयणइँ । जिह गोठ्ठङ्गणेँ वर-मणि-रयणइँ ॥५॥
जिह उवयार-सयइँ अकुलीणएँ । वयइँ जेम चारित्त-विहीणएँ ॥६॥
गम्पि पहञ्जणु मिलिउ पहञ्जणेँ । वरुणहोँ वरुणु हुवासु हुआसणेँ ॥७॥
हसिउ पुरन्दरेण 'अरेँ माणव । देव-समाण होन्ति किं दाणव' ॥८॥

घत्ता

भणइ मालि 'को देउ तुहुँ वलु पउरु सु सयलु णिरिक्खियउ ।
जं बन्धहि ओहट्टहि वि इन्दयालु पर सिक्खियउ' ॥९॥

[९]

तं णिसुणेवि वयणु सुरराएं । विद्धु णिडालेँ मालि णाराए ॥१॥
लहु उप्पाडेँवि घित्तु णरिन्दे । णाइँ वरङ्कुसु मत्त-गइन्दें ॥२॥
सहसा रुहिरायम्विरु दीसिउ । ण मयगलु सिन्दूर-विहूसिउ ॥३॥
वाम-पाणि वणेँ देवि अखन्तिएँ । भिण्णु णिडालेँ सुराहिउ सत्तिएँ ॥४॥
विहलङ्घलु ओणल्लु महीयलेँ । कलयलु घुट्ठु रक्ख-वाणर-वलेँ ॥५॥

भीम महाभीमने दी थी और गोत्रक्रमसे उसे प्राप्त हुई थी। वह विद्या अपना विकराल मुँह उठाकर बढ़ती हुई आकाशमें नहीं समा पा रही थी। (यह देखकर) वरुण, धनद, पवन और यमादि चिंतामें पड़ गये। तब दूतोंने जाकर इन्द्रसे निवेदन किया, "हे देव! मालि रणस्थलमें दुर्जेय जान पड़ता है।" यह सुनकर इन्द्रने अपनी माहेन्द्र विद्याका चिंतन किया। उसने चौगुना बढ़कर सूर्य-चन्द्रकी कान्ति तकको ढँक दिया ॥१-६॥

[८] उस माहेन्द्र विद्याको देखकर सुमालि मालिसे बोला, "यह माहेन्द्र विद्याका शब्द नहीं, यह तो निश्चय ही काल आ गया है।" ॥१-२॥

यह सुनते ही महाबाहु मालि अमर्षसे आरक्त हो उठा, और उसने तुरन्त वायव्य, वारुण और आग्नेय तीर चला दिये। किन्तु इन्द्र पर वे उसी प्रकार व्यर्थ गये जिस प्रकार मूर्खके कानो में जिन-वचन, गोठमें उत्तम मणि, अकुलीनमें सैकड़ों उपकार और चरित्र-हीनमें व्रत व्यर्थ जाते हैं। तब पवनसे पवन, वरुणसे वरुण और अग्निसे अग्नि जा भिड़े। इस पर इन्द्रने हँसकर कहा, "अरे मनुष्यों, क्या दानव भी देवोंके समान हो सकते हैं।" यह सुन-कर मालिने कहा, "अरे तुम देव कैसे यदि मुझे बाँध या हटा सको, तो जानूँ तुमने सचमुच इन्द्रजालकी शिक्षा पाई है ॥१-६॥

[६] यह सुनकर देवराजने तीरसे मालिके भालको छेद डाला। पर मालिने तुरन्त उस तीरको निकालकर फेंक दिया वैसे ही जैसे उत्तम गज बढ़िया अंकुशको गिरा देता है। वह तुरन्त रक्तसे इस तरह आरक्त हो उठा मानो सिन्दूरसे शोभित उन्मत्त गज ही हो। बायें हाथमें घायल कर मालिने इन्द्रके मस्तक पर शक्ति मारी। वह व्याकुल होकर गिर पड़ा। इससे राक्षसों

मालि सुमालिं साहुक्कारिउ । 'पइँ होन्तएँ णिय-वंसुद्धारिउ' ॥६॥
उट्ठेंवि मुक्कु चक्कु सहसक्खें । एन्तउ धरेंवि ण सक्किउ रक्खें ॥७॥
सिरु पाडेवि रसायलें पडियउ । कह वि ण कुम्भ-वीढें अब्भिडियउ ॥८॥

घत्ता

वयणु मडक्क ण वीसरिउ धाविउ कवन्धु रोसावियउ ।
वे-पारउ अइरावयहीं कुम्भत्थलें असिवरु वाहियउ ॥९॥

[१०]

ज विणिवाइउ रक्खु रणङ्गणें । विजउ घुट्ठु अमराहिव-साहणें ॥१॥
णट्ठु कइद्धय-वलु भय-भीयउ । गलियाउहु कण्ठ-ट्ठिय-जीयउ ॥२॥
केण वि ताम कहिउ सहसक्खहों । 'पच्छलें लग्गु देव पडिवक्खहों ॥३॥
वहुवारउ णिसियर - कइचिन्धेंहिँ । वेयारिय सुकेस - किक्किन्धेंहिँ ॥४॥
एय जि विजयसीह खय-गारा । तिह करें जेम ण जन्ति भडारा' ॥५॥
त णिसुणेंवि गउ चोइउ जावेंहिँ । ससहरु पुरउ परिट्ठिउ तावेंहिँ ॥६॥
'मइँ आदेसु देहि परमेसर । मारमि हउँ जि णिसायर वाणर ॥७॥
सेण्णु वि घत्तमि जम-मुह-कन्दरें । दसण - सिलायल - जीहा-कक्करें' ॥८॥

घत्ता

इन्दें हत्थुत्थल्लियउ धाइउ ससि सर वरिसन्तु किह ।
पच्छलें पवणाहएँ घणहीं धाराहरु वासारत्तु जिह ॥९॥

[११]

'मरु मरु वलहों वलहों किं णासहों । धाराहर - मक्कडहों हयासहों ॥१॥
सुरयण - णयणाणन्द - जणेरा । कुद्ध पाव तं (?) वासव-केरा' ॥२॥
त णिसुणेंवि दूरुज्झिय-सङ्कउ । अहिमुहु मल्लवन्तु पर थक्कउ ॥३॥

और वानरोंकी सेनामें खलबली मच गई। तब सुमालिने मालिकी पीठ ठोकते हुए कहा—"तुम्हारे रहते ही राक्षसवंशका उद्धार हो सकता है।" इतनेमें इन्द्रने उठकर अपना चक्र दे मारा। राक्षस मालि, आते हुए उस चक्रको नहीं सम्हाल सका। (वह चक्र) उसके सिर पर पड़ कर (सीधा) रसातलमें जा गिरा, किसी भाँति वह केवल कछुएकी पीठसे नहीं टकराया। आहत होनेपर मालिके मुखका मान नहीं गया था। रोषसे भरा उसका धड़ दौड़ता रहा और उसने तलवारसे दो वार ऐरावत हाथीके गंडस्थलपर चोट की ॥१-६॥

[१०] रणक्षेत्रमें मालिके धराशायी होते ही इन्द्रकी सेनाने 'जयघोष' प्रारम्भ कर दिया। मारे डरके कपिध्वजियोंकी सेना नष्ट होने लगी। उसके प्राण गलित होकर कंठमें आ लगे। तब किसीने जाकर सहस्राक्षसे निवेदन किया, "देव! पीछा कीजिये, क्योंकि निशाचर सुकेश किष्किन्ध आदिने कई वार हमें वंचित किया है। अबकी वार ऐसा (कुछ उपाय) कीजिए कि जिससे विजय सिंहके घातक ये सब किसी भी तरह बच न पायें।" यह सुनकर इन्द्रने अपना हाथी आगे बढ़ाया। पर चन्द्रने आकर कहा, "परमेश्वर, मुझे आज्ञा दीजिए। निशाचर और वानरोंको मैं मारना चाहता हूँ। उनकी सेनाको मैं यममुखकी गुफामें, दाँतों रूपी चट्टानके नीचे जीभके अगले भाग पर फेंक दूँगा॥१-६॥

[११] इन्द्रकी आज्ञा पाकर चन्द्र दौड़ा। उसने बाण बरसाना शुरू कर दिया मानो वर्षाकालमें पवनाहत मेघोंकी धारा ही बौछार कर रही हो। वह बोला—"अरे हताश राक्षसो, वानरो, मरो मरो, लौट जाओ। क्यो अपना नाश करते हो, देवोंके नेत्रोंको आनन्द देने वाली इन्द्रकी सेना क्रुद्ध हो उठी है।"

गहकल्लोलु णाइँ छण-चन्दहों। णाइँ महन्दु महग्गय-विन्दहों ॥४॥
'अरें ससङ्क स-कलङ्क अलज्जिय। महिलाणण वे-पक्ख - विवज्जिय ॥५॥
चन्दु भणेवि जे हासउ दिज्जइ। पइँ वि को वि कि रणेँ घाइज्जइ' ॥६॥
एम चवेप्पिणु चाव-सणाहउ। भिण्डिवाल-पहरणेँण समाहउ ॥७॥
मुच्छ पराइय पसरिय-वेयणु। दुक्खु दुक्खु किर होइ स-चेयणु ॥८॥

घत्ता

दूरीहूया ताम रिउ मयलञ्छणु मणेँ अवतसइ किह।
सिरु संचालइ करु धुणइ सकन्तिहेँ चुक्कु विप्पु जिह ॥९॥

[१२]

ताम महा - रहणेउर - पुरवरु। जय-जय-सद्दे पइसइ सुरवरु ॥१॥
पवण-कुवेर-वरुण - जम-खन्देँहिँ। णड - फम्फाव - छत्त - कइवन्देँहिँ ॥२॥
वन्दिण-सयहिँ पवड्ढिय-हरिसेँहिँ। विज्जाहर - किण्णर - किंपुरिसेँहिँ ॥३॥
जोइस-जक्ख-गरुड - गन्धव्वेँहिँ। जय-जय-कारु करन्तेँहिँ सव्वेँहिँ ॥४॥
चलणेहिँ णम्पि पडिउ सहसारहों। णं भरहेसरु तिहुअण - सारहो ॥५॥
ससिपुरि ससिहेँ दिण्ण विक्खायहों। धणयहों लङ्क किक्कु जमरायहों ॥६॥
मेह-णयरेँ वरुणाहिउ ठवियउ। कञ्चणपुरेँ कुवेरु पट्ठवियउ ॥७॥

घत्ता

अण्णु वि को वि पुरन्दरेँण तहिँ अवसरेँ जो सभावियउ।
मण्डलु एक्केक्कउ पवरु सो सव्वु स इं भु आवियउ ॥८॥

●

जब माल्यवन्तने यह सुना तो वह निःशंक होकर सामने आकर ऐसा डट गया, मानो पूर्ण चन्द्रके सम्मुख राहु हो या गजघटाके सामने सिंह। वह बोला—"अरे स्त्रीमुखवाले उभय पक्षहीन कलंकी चन्द्र, कुछ लज्जा कर। 'चन्द्र' कहकर जिसकी हँसी उड़ाई जाती है, क्या उस तुमसे भी युद्धमें कोई मारा जाएगा।" यह कहकर उसने भिंडपाल बाणके प्रहारसे धनुर्धारी चन्द्रको मार दिया। वेदनाके फैलते ही चन्द्र मूर्छित होकर गिर पड़ा। फिर धीरे-धीरे बड़ी कठिनाईसे उसे चेतना आई ॥१-८॥

पर इतनेमें शत्रु काफी दूर निकल चुका था। वह मन ही मन पछताने लगा। कभी सिर हिलाता और कभी हाथ धुनता, वैसे ही जैसे संक्रान्ति चूकने पर विप्र ॥९॥

[१२] तदनन्तर इन्द्रने जय-धय ध्वनिके बीच रथनूपुर महानगरमें प्रवेश किया। पवन, कुबेर, वरुण, यम, स्कंद, नट-चारण, छत्रधारी, कविवृंद, अत्यन्त प्रसन्न सैकड़ों वन्दीजन, विद्याधर, किन्नर, किंपुरुष, ज्योतिषी, यक्ष, गरुड़ और गन्धर्व सभी जयजयकार कर रहे थे। इन्द्र भी जाकर पिता सहस्राक्षके चरणोंपर ऐसे गिरा मानो त्रिभुवनश्रेष्ठ ऋषभ जिनके चरणोंपर भरत ही गिर पड़ा हो। उसने शशिको शशिपुर, धनदको लंका और यमको किष्किन्ध नगरी प्रदान की। वरुणको मेघपुरका राजा बनाया और कुबेरको कंचनपुरीमें स्थापित किया ॥१-७॥

उस अवसर पर और भी जिसने जो संभव हो सका, उन्हें एक-एक मंडल राज्य दिया गया। इस प्रकार वह, समस्त मंडलका उपभोग करने लगा।

[९. णवमो संधि]

एत्थन्तरेँ रिद्धिहेँ जन्ताहोँ पायाल-लङ्क भुञ्जन्ताहोँ।
उप्पण्णु सुमालिहेँ पुत्तु किह रयणासउ रिसहहोँ भरहु जिह ॥१॥

[१]

सोलह - आहरणालङ्करिउ। सयमेव मयणु णं अवयरिउ ॥१॥
वहु-दिवसेँहिँ आउच्छेँ वि जणणु। गउ विज्जा-कारणेँ पुप्फवणु ॥२॥
थिउ अक्खसुत्तु करयलेँ करेँ वि। जिह मह-रिसि परम-झाणु धरेँ वि ॥३॥
तहिँ अवसरेँ गुण-अणुराइयउ। सो पोमविन्दु संपाइयउ ॥४॥
रयणासउ लक्खिउ तेण तहिँ। 'इमु पुरिस-रयणु उप्पण्णु कहिँ ॥५॥
लइ सच्चउ हूयउ गुरु-वयणु। एँहु सो णरु एँउ त पुप्फवणु' ॥६॥
कइकसि णामेण वुत्त दुहिय। पप्फुल्लिय - पुण्डरीय - मुहिय ॥७॥
एँहु पुत्ति तुहारउ भत्तारु। माणस - सुन्दरिहेँ व सहसारु' ॥८॥

घत्ता

गउ धीय थवेवि णियासवहोँ उप्पण्ण विज्ज रयणासवहोँ।
थिउ विहि मि मज्झेँ परमेसरिहिँ णं विञ्झु तावि-णम्मय-सरिहिँ ॥९॥

[२]

अवलोइय वहु रयणासवेँण। ण अग्ग-महिसि सईँ वासवेँण ॥१॥
सु-णियम्विणि परिचक्कलिय-थणि। इन्दीवरच्छि पङ्कय-वयणि ॥२॥
'कसु केरी कहिँ अवइण्ण तुहुँ। तउ दूरेँ दिट्ठि जेँ जणइ सुहु' ॥३॥
त सुणेँवि स-सङ्क कण्ण चवइ। 'जइ जाणहोँ पोमविन्दु णिवइ ॥४॥

नवीं सन्धि

[१] इस प्रकार ठाठबाटसे पाताल-लंकाका भोग करते हुए सुमालिको रत्नाश्रव नामका पुत्र उत्पन्न हुआ, मानो ऋषभ जिनको भरत ही उत्पन्न हुआ हो या सोलह अलंकारोंसे शोभित कामदेव ही। बहुत समय अनन्तर अपने पितासे आज्ञा लेकर, रत्नाश्रव विद्या सिद्ध करनेके लिये पुष्पवनमें गया। वहाँ वह रुद्राक्ष माला लेकर किसी महामुनिकी तरह ध्यानमें लीन हो गया। ठीक इस समय, गुणानुरक्त व्योमविन्दु नामका विद्याधर वहाँ आया। रत्नाश्रवको देखकर उसने मनमें सोचा कि ऐसा पुरुषरत्न कहाँ मिलेगा। जान पड़ता है कि गुरु वचन सच होना चाहता है। (शायद) यही वह पुष्पवन है और वही है यह मनुष्य (जिसके बारेमें गुरुजीने कहा था।) तब उसने खिले कमलके समान मुखवाली अपनी कन्या (कैकशी) से कहा—"जैसे मानसुन्दरी का पति सहस्रार था वैसे ही यह तुम्हारा पति है।" उसे वहीं छोड़कर वह विद्याधर अपने निवासगृह चला गया। रत्नाश्रवको विद्या सिद्ध हो चुकी थी। (विद्या और कैकशी) इन परमेश्वरियों के बीच वह ऐसा सोह रहा था मानो नर्मदा और ताप्तीके मध्य विन्ध्याचल ही खड़ा हो ॥ १-६ ॥

[२] रत्नाश्रवने कैकशीको इस प्रकार देखा मानो इन्द्रने इन्द्राणीको देखा हो। उसके स्तन वर्तुल (गोल), नितम्ब सुन्दर और आँखें नील कमलके समान थीं। उसने कैकशीसे पूछा, "तुम किसकी लड़की हो और कहाँ रहती हो, तुम्हारी सुन्दर दृष्टि सुख उत्पन्न कर रही है।" यह सुन कर कुमारी कैकशी कुछ आशंकित होकर बोली, "आप व्योमविन्दु राजाको जानते हैं, मैं

हउँ तासु धीय केण ण वरिय। कइकसि णामें विज्जाहरिय ॥५॥
गुरु-वयणेंहिँ आणिय एउ वणु। तउ दिण्णी करें पाणिग्गहणु ॥६॥
तं णिसुणेंवि सुपुरिस-धवलहरु। उप्पाइउ विज्जाहर-णयरु ॥७॥
कोक्काविउ सयलु वि वन्धुजणु। सहुँ कण्णएँ किउ पाणिग्गहणु ॥८॥

घत्ता

वहु-कालें सुविणउ लक्खियउ अत्थाणें णरिन्दहों अक्खियउ।
'फाडेप्पिणु कुम्भइँ कुञ्जरहुँ पञ्चाणणु उवरें पइट्ठु महु ॥९॥

[३]

उच्चोलिहें चन्दाइच्च थिय, । तं णिसुणेवि दइएं विहसिकिय (?) ॥१॥
"अट्ठङ्ग-णिमित्तइँ जाणएँण। वुच्चइ रयणासव-राणएँण ॥२॥
'होसन्ति पुत्त तउ तिण्णि धणें। पहिलारउ ताहँ रउद्दु रणें ॥३॥
जग-कण्टउ सुरवर-डमर-करु। भरहद्ध-णराहिउ चक्कधरु' ॥४॥
परिओसें कहि मि ण मन्ताहुँ। णव-सुरय-सोक्खु माणन्ताहुँ ॥५॥
उप्पण्णु दसाणणु अतुल-वलु। पारोह - पईहर - भुय - जुयलु ॥६॥
पक्कल-णियम्बु वित्थिण्ण-उरु। णं सग्गहों पचविउ को वि सुरु ॥७॥
पुणु भाणुकण्णु पुणु चन्दणहि। पुणु जाउ विहीसणु गुण-उवहि ॥८॥

घत्ता

तो उप्पाडन्तु दन्त गयहुँ करयलु छुहन्तु मुहें पण्णयहुँ।
आयएँ लीलएँ रामणु रमइ ण कालु वालु होएँवि भमइ ॥९॥

[४]

खेलन्तु पईसइ भण्डारु। जहिँ तोयदवाहण-तणउ हारु ॥१॥
णव-मुहइँ जासु मणि-जडियाइँ। णव गह परियप्पेंवि घडियाइँ ॥२॥
जो परिपालिज्जइ पण्णएँहिँ। आसीविस - रोसाउण्णएँहिँ ॥३॥
सासण्णहों अण्णहों करइ वहु। सो कण्ठउ दुट्ठउ दुक्खिसहु ॥४॥

उन्हींकी कन्या हूँ, अभी मेरा किसीसे व्याह नहीं हुआ है, मेरा नाम कैकशी है। मैं विद्याधरी हूँ, और मेरे गुरुके आदेशसे पिताजी मुझे यहाँ लाये है। वह मुझे आपको विवाहमे दे चुके है।" यह सुनकर पुरुष श्रेष्ठ रत्नाश्रवने वहीं एक विद्याधर नगर वसाया, और अपने कुटुम्वके लोगोंको बुलाकर उसने उनसे विवाह कर लिया ॥ १–८ ॥

वहुत समय वीतने पर कैकशीने रातमे कुछ सपने देखे। सवेरे उसने राजाको सपने वताये, उसने कहा "मैंने देखा है कि हाथीका गण्डस्थल पकड़कर सिंह उसके मुँहमे घुस गया ॥ ९ ॥

[२] चन्द्र तथा सूर्य आकर मेरे ओठोंसे लिपट गये। यह सुनकर अष्टाग निमित्तोका ज्ञाता उसका पति रत्नाश्रव मुसकरा उठा। वह वोला, "धन्ये! तुम्हारे तीन पुत्र होंगे। उनमेसे पहला पुत्र युद्धमे भयंकर, जगका कंटक, आधे भरत खंडका अधिपति और इन्द्रको डरानेवाला चक्रवर्ती होगा। यह जानकर, रानीका परितोप किसी भी तरह नहीं समा सका मानो उसे स्वर्गका ही सुख मिला हो। यथा समय, उसके अतुलवलशाली रावणका जन्म हुआ। उसकी भुजाएँ प्ररोहकी तरह लम्बी, प्रौढ़ नितम्व, विशाल वक्षःस्थल था। वह ऐसा लगता था मानो स्वर्गसे देवता ही आ गया हो। उसके वाद कालक्रमसे भानुकर्ण और चन्द्रनख जन्मे। उसके वाद गुणसागर विभीपणका जन्म हुआ। रावण (क्रीड़ामे मस्त था)। कभी वह हाथी के दाँत उखाड़ता और कभी अपने हाथसे उसके मुँहमे पत्ते खिलाता। ऐसे ही खेलों में रमता हुआ, वह ऐसा जान पड़ता था मानो काल ही शिशुका रूप धारण करके घूम रहा हो। तव एक दिन खेलते-खेलते वह, उस भंडारमे घुस गया जहाँ तोयदवाहनका हार रखा हुआ था। उस हारमे मणियोसे जड़े हुए

सहसत्ति लग्गु करें दहमुहहों। मित्तु सुमित्तहों अहिमुहहों ॥५॥
परिहिउ णव-मुहइँ ससुट्ठियहँ। ण गह-बिम्बइँ सु-परिट्ठियहँ ॥६॥
णं सयवत्तहँ सचारिमहँ। ण कामिणि-वयणहँ कारिमहँ ॥७॥
बोल्लन्ति समउ बोल्लन्तऍण। स-वियारु हसन्ति हसन्त हसन्तऍण॥८॥

घत्ता

पेक्खेप्पिणु ताइँ दहाणणइँ थिर-तारइँ तरलइँ लोयणइँ।
तं दहमुहु हासिउ जणेंण किउ पञ्चाणणु जेम पसिद्धि गउ ॥९॥

[५]

ज परिहिउ कण्ठउ रावणेण। किउ वद्धावणउ सु-परियणेण ॥१॥
रयणासउ कइकसि धाइयइँ। आणन्दें कहि मि ण माइयइँ ॥२॥
णिसुणेप्पिणु आइउ उच्चुरउ। किण्णिन्दु सन्कन्तउ सूरउ ॥३॥
सयलेहिँ णिहालिउ साहरणु। दह-गीउम्मोल्लिय - दह-वयणु ॥४॥
परिचिन्तिउ 'णउ सामण्णु णरु। एहु होइ णिरुत्तउ चक्कहरु ॥५॥
एयहों पासिउ रज्जु वि विउलु। कइ-जाउहाण-वलु रणें अतुलु ॥६॥
एयहों पासिउ सुरवइहें पउ। जम-वरुण कुवेरहँ णाहि जउ' ॥७॥

घत्ता

अण्णेव-दिवसेँ गउ जन्तु किह णव-पाउसेँ जलहर-विन्दु जिह।
णहे जन्तउ पेक्खेँवि वइसवणु पुणु पुच्छिय जणणि 'एहु कवणु' ॥८॥

नौ मुख थे। जो ऐसे लगते थे मानो नवग्रह ही कल्पित करके रख दिये हों। फनफनाता विषैला नागराज उसकी रक्षा कर रहा था। कोई साधारण आदमी यदि उस हारको हाथ लगाता तो नाग एकदम दुष्ट और दुर्विष हो उठता था। किन्तु रावणके हाथमें वह हार इस तरह आ लगा जिस तरह सामना होते ही मित्र अपने सुमित्रसे आ मिलता है। जब उसने वह हार पहना तो उसमें उसके एक मुखके नौ मुख प्रतिबिम्बित हो उठे। जो ऐसे जान पड़ते थे जैसे नवग्रह ही प्रतिष्ठित कर दिये गये हों, अथवा चलते-फिरते कमल हों, और या कृत्रिम स्त्री-मुख हों ? जब वह बोलता तो सब मुख बोलने लगते, वह हँसता तो वे भी हँसने लगते। इस प्रकार स्थिरतारक और चंचल नेत्रवाले उसके दशमुख देखकर उसका नाम दशानन रख दिया, उसका यह नाम वैसे ही प्रसिद्ध हो गया जैसे सिंहका पंचानन ॥ १-९ ॥

[५] रावणके इस तरह हार पहनेपर उसके परिजनोंने हर्ष बधावा किया। रत्नाश्रव और कैकशी दौड़कर आये, वे आनंदसे फूले नहीं समा रहे थे। सुनते ही इन्द्ररव आया और किष्किन्ध तथा पत्नी सहित सूर्यरव भी। आभरणोंसे सहित उसके दस मुँह और दस ग्रीवाओंको देखकर सबने यही सोचा कि यह कोई साधारण मनुष्य नहीं है। निश्चय ही यह चक्रवर्ती है। इसके पास विशाल साम्राज्य है और युद्धमें वानर तथा राक्षसोंकी बहुत बड़ी शक्ति है। इन्द्रका क्षय इसीके निकट है। यम, वरुण और कुबेर आदि राजाओंकी इसके सम्मुख जय नहीं होगी। कई दिनोंके बाद, नवीन वर्षामें मेघबिन्दुओंकी तरह गरजता हुआ वैश्रवण आकाशमार्गसे जा रहा था। तब रावणने उसे देखकर—अपनी माँसे खेल-खेलमें, पूछा कि यह कौन है ? ॥ १-८ ॥

[६]

तं णिसुणेँवि मउलिय-णयणियएँ । वज्जरिउ स-गग्गर-वयणियएँ ॥१॥
'कउसिकि जणेरि एयहोँ तणिय । पहिलारी वहिणि महु त्तणिय ॥२॥
वीसावसु विज्जाहरु जणणु । एँहु भाइ तुहारउ वइसवणु ॥३॥
वइरिहिँ मिलेवि मुह मलिण किय । मायरि व कमागय लइ हिय ॥४॥
एयहोँ उद्दालेँवि जेमि तिय । कइयहुँ माणेसहुँ राय-सिय ॥५॥
रत्तुप्पल - दलआलोयणेँण । णिब्भच्छिय जणणि विहीसणेँण ॥६॥
'वइसवणहोँ केरी कवण सिय । दहवयणहोँ णोक्खी का वि किय ॥७॥
पेक्खेसहि दिवसहिँ थोवएँहिँ । आएँहि अम्हारिस-देवएँहिँ ॥८॥

घत्ता

जम-खन्द,कुवेर-पुरन्दरेँहिँ रवि-वरुण-पवण-सिहि-ससहरेँहिँ ।
अणुदिणु दणुवइ-कन्दावणहोँ घरेँ सेव करेवी रावणहोँ ॥९॥

[७]

एक्कहिँ दिणेँ आउच्छेँवि जणणु । गय तिण्णि वि भीसणु भीम-वणु ॥१॥
जहिँ जक्ख-सहासइँ दारुणइँ । जहिँ सीह-पयइँ रुहिरारुणइँ ॥२॥
जहिँ णीसासन्तेँहिँ अजयरेँहिँ । डोल्लन्ति डाल सहुँ तरुवरेँहिँ ॥३॥
जहिँ साहारूढइँ विप्पयइँ । अन्दोलण - परम - भाव-गयइँ ॥४॥
तहिँ तेहएँ भीसणेँ भीम-वणेँ । थिय विज्जहेँ झाणु धरेवि मणेँ ॥५॥
जा अट्ठक्खरेँहिँ पसिद्धि गय । णामेण सव्व - कामल - रूय ॥६॥
सा विहिँ पहरेँहिँ जेँ पासु अइय । ण गाढालिङ्गण - गय दइय ॥७॥
पुणु झाइय सोलह-अक्खरिय । जय (?)-कोडि-सहास-दुद्दुत्तरिय ॥८॥

घत्ता

ते भायर अविचल-झाण-रुइ दहवयण-विहीसण-भाणुसुइ ।
वणेँ दिट्ठ जक्ख-सुन्दरिएँ किह जिण-वाणिए तिण्णि वि लोय जिहँ ॥९॥

[६] यह सुनकर, मलिन दृष्टि माँने गद्गद स्वरमे उससे कहा—"इसकी माँ कौशकी मेरी बड़ी बहन है और पिता विश्वावसु विद्याधर है, अतः यह तुम्हारा (मौसेरा) भाई हुआ। पर शत्रुओंसे मिलकर इसने अपना मुख काला कर लिया है। परम्परासे प्राप्त, तथा माँके समान लंका नगरी भी इसने छीन ली है। पता नहीं वह इससे कब स्त्रीकी तरह छीनी जायगी और कब मैं राज्यश्रीका सुख मानूँगी।" इसपर आँखें लाल करके विभीषणने कहा, "माँ ! वैश्रवण की क्या श्री है। भला रावणसे बढ़कर किसी की श्री हो सकती है। देखना माँ, कुछ ही दिनोंमें यम, स्कंध, कुवेर, वरुण, रवि, पवन, अग्नि, शशि आदि मनुष्य, देव और दानवोंको रुलानेवाले रावणकी सेवा करने आयेंगे।" ॥ १–६ ॥

[७] एक दिन पितासे पूछकर, तीनों भाई विद्या सिद्ध करने किसी भीषण वनमें गये। हजारों यक्षोंसे वह वन अत्यन्त डरावना था। उसमें सिंहके पैर रक्तसे लाल थे। वृक्षोंकी डालें साँस लेते हुए अजगरोंसे हिल-डुल रही थीं। पक्षियोंके बच्चे पेड़ोंकी डालियों पर बैठे हुए मस्तीमें झूम रहे थे। ऐसे उस भीषण वनमें विद्या की सिद्धिके लिए वे ध्यान लगाकर बैठ गये। आठ अक्षरवाली सर्वकाम रूपिणी विद्या दो ही प्रहरमें उनके पास ऐसे जम गई जैसे प्रगाढ़ आलिंगनमें आई हुई स्त्री। तब दूसरी सोलह अक्षरवाली विद्याका उन्होंने ध्यान किया। दस हजार करोड़ जाप करने के अनन्तर तीनों भाई अविचल ध्यानमें लीन हो गये। इतनेमें एक यक्ष-सुन्दरीने उन तीनोंको इस प्रकार देखा मानो जिनवाणी ही तीनों लोकोंको देख रही हो ॥ १–६ ॥

[८]

जं जक्खिएँ रावणु दिट्ठु वणेँ । तं वम्मह-वाण पइट्ठ मणेँ ॥१॥
'वोल्लाविउ वोल्लइ किं ण तुहुँ । किं वहिरउ कि तुह णाहि मुहु ॥२॥
कि झायहि अक्खसुत्तु घिवहि । महु केरउ रूव-सलिलु पिवहि' ॥३॥
दहगीव-पसरु अलहन्तियएँ । स-विलक्खउ खेड्डु करन्तियएँ ॥४॥
वच्छत्थलेँ पहउ सुकोमलेँण । कण्णावयंस - णीलुप्पलेँण ॥५॥
अण्णेक्कएँ वुत्त वरङ्गणएँ । पप्फुल्लिय - तामरसाणणएँ ॥६॥
'तुहुँ जाणहि एँहु णरु सच्चमउ । उप्पाइउ केण वि कट्ठमउ' ॥७॥
पुणु गम्पिणु रण-रस-अड्ढियहोँ । जक्खहोँ वज्जरिउ अणड्ढियहोँ ॥८॥

घत्ता

'कञ्ची-कलाव-केऊर-धर पइँ तिण-समु मण्णेँवि तिण्णि णर ।
वणेँ विज्जउ आराहन्त थिय णावइ जम्म-भवणहोँ खम्भ किय ॥९॥

[९]

तं णिसुणेँवि जम्वूदीव-पहु । ण जलिउ जलण-जाला-णिवहु ॥१॥
'सो कवणु एत्थु णिक्कम्पिरउ । जगेँ जीवइ जो महु वाहिरउ' ॥२॥
अहिमुहु पयट्ट तहोँ आसवहोँ । सुय दिट्ठ ताम रयणासवहोँ ॥३॥
'अहोँ पव्वइयहोँ अहिणवहोँ । क झायहोँ कवणु देउ थुणहोँ' ॥४॥
ज एक्कु वि उत्तरु दिण्णु ण वि । तं पुणु वि चमुट्ठिउ कोव-हवि ॥५॥
उवसग्गु घोरु पारम्भियउ । वहुरूवेँहिँ जक्खु वियम्भियउ ॥६॥
आसीविस - विसहर - अजयरेँहिँ । सद्दूल - सीह - कुञ्जर - वरेँहिँ ॥७॥
गय-भूय-पिसाएँहिँ रक्खसेँहिँ । गिरि-पवण - हुआसण-पाउसेँहिँ ॥८॥

घत्ता

दस-दिसि-वहु अन्धारउ करेँवि ओत्थरेँवि गज्जवि उत्थरेँवि ।
गउ णिप्फलु सो उवसग्गु किह गिरि-मत्थएँ वासारत्तु जिह ॥९॥

[८] रावणके देखते ही यक्ष सुन्दरीका मन कामवाणसे संविद्ध हो गया। वह उससे कहने लगी--"बुलाये जानेपर भी नहीं बोल रही हो। क्या तुम बहरे हो या तुम्हारा मुख नहीं है। क्या ध्यान कर रहे हो। अक्षसूत्रमाला फेंक दो, मेरे सौन्दर्य-जलका पान करो।" दसमुखके प्रणयको न पाकर सविलास क्रीड़ा करती हुई उसने कोमल कर्णावतंसका नीला कमल उसकी छातीपर मारा। खिले हुए रक्तकमलकी तरह मुखवाली किसी स्त्रीने उससे कहा, "तुम इसे सचमुचका आदमी समझती हो, वस्तुत: यह किसीने लकड़ीका पुतला बना दिया है।" तब फिर उन्होंने रण-रसके लोभी अनावृत्त नामके यक्षसे जाकर यह सब कहा॥ १-८॥

"करधनी केयूर धारण किये, कोई तीन नर तुम्हें तिनकेके बराबर भी नहीं समझते। वनमें विद्याकी आराधना करते हुए वे ऐसे मालूम होते हैं मानो विश्वरूपी भवनके आधारपर स्तम्भ ही हों॥९॥

[९] यह सुनकर, जम्बू द्वीपका स्वामी वह यक्ष आगकी लपटोंके समूहकी भाँति भभक उठा, और बोला—"वह कौन ऐसा निश्चल व्यक्ति है जो मुझसे बाहर होकर भी जगमें जीवित है। जब वह उस आश्रमके सम्मुख गया तो उसे रत्नाश्रवके पुत्र दिखाई दिये। उसने कहा, "अरे नये संन्यासियो, क्या ध्यान कर रहे हो। किस देवकी स्तुति कर रहे हो"। जब एक भी उत्तर नहीं मिला, तो उसकी क्रोधाग्नि और ही भड़क उठी। उसने घोर उपसर्ग प्रारम्भ कर दिया, विषैले दाँतोंके अजगरों और साँपों, बड़े बड़े शार्दूल और हाथियों, गज-भूत-पिशाच-राक्षसों, गिरि, पवन, आग और पावस, आदिके अनेक रूपोंको बनाकर वह तरह तरहके आश्चर्य करने लगा॥ १-८॥

[१०]

जं चित्तु ण सक्किउ अवहरेँ वि । थिउ तक्खणेँ अण्ण माय धरेँ वि ॥१॥
दरिसाविउ सयलु वि वन्धुजणु । कलुणउ कन्दन्तु विसण्ण-मणु ॥२॥
कस-घाएँहिँ घाइज्जन्तु वणेँ । 'णिवडन्तुट्ठन्तइँ खणेँ जेँ खणेँ ॥३॥
रयणासवु कइकसि चन्दणहि । हम्मन्तइँ जइ ण अम्हे गणहि ॥४॥
तो सरणु भणेँ वि पडिव(?र)क्ख करेँ । रिउ मारइ लग्गइ पुत्त धरेँ ॥५॥
त पुरिसयारु किं वीसरिउ । णव-वयणु जेण कण्ठउ धरिउ ॥६॥
अहोँ भाणुकण्ण करेँ चारहडि । सिरि भञ्जहि लग्गउ छार-हडि ॥७॥
अहोँ धरहि विहीसण जन्ताइँ । वणेँ मेच्छेहिँ पिट्टिज्जन्ताइँ ॥८॥

घत्ता

अरेँ पुत्तहोँ णउ पडिरक्ख किय ज लालिय पालिय वड्ढविय ।
सो णिप्फलु सयलु किलेसु गउ जिह पावहोँ धम्मु विअक्खियउ' ॥९॥

[११]

जं केण वि णउ साहारियउ । तं तिण्णि वि जक्खेँ मारियउ ॥१॥
पुणु तिहि मि जणहुँ दरिसावियउ । सिव-साण-सिवालेँहिँ खाविियउ ॥२॥
णवि चलिउ तो वि तहोँ झाणु थिरु । माया-रावणउ करेवि सिरु ॥३॥
अग्गएँ घत्तिउ अविचल-मणहँ । भाइहिँ रविकण्ण - विहीसणहँ ॥४॥
तं णिएँवि सीसु रुहिरारुणउ । ते झाणहोँ चलिय मणामणउ ॥५॥
णिद्धइँ सुद्धइँ थिर-जोयणइँ । ईसीसि पगलियइँ लोयणइँ ॥६॥
सिर-कमलइँ ताह मि केराइँ । उवणाएँवि दुक्ख - जणेराइँ ॥७॥
रावणहोँ गम्पि दरिसावियइँ । पउमइँ व णाल-मेल्लावियइँ ॥८॥

दसों दिशाओंमे अँधेरा फैलाकर, रोकर, गरजकर, उछलकर, उसने उपसर्ग किया। पर वह वैसे ही व्यर्थ गया जैसे पहाड़की चोटीपर मेघ व्यर्थ जाते हैं ॥ ६ ॥

[१०] जब वह किसी तरह भी उनका चित्त नहीं डिगा सका तो उसी क्षण वह विद्याधर दूसरी माया ग्रहण करके बैठ गया। उसने दिखाया कि रावणके सभी बन्धुजन, खिन्न मन होकर करुण विलाप कर रहे है। कोड़ोंके आघातसे उन्हें पीटा जा रहा है। क्षण-क्षण वे गिर उठ रहे हैं। रत्नाश्रव, कैकशी और चन्द्रनखा, सबके सब कह रहे है कि तुम क्या हमारी चिन्ता नहीं करते ? हम तुम्हारी शरणमे हैं। हमारी रक्षा करो, शत्रु पीछे पड़कर मार रहा है। पुत्र ! बचाओ, क्या तुम अपना वह पुरुषार्थ भूल गये। जिससे तुमने नौ मुखका हार कंठमें धारण किया था। अरे भानुकर्ण बहादुरी दिखाओ। भस्मनिर्मित पात्रके समान इसका सिर तोड़ दो। अरे विभीषण ! कुछ प्रयत्न करो, वनमें हम पिट रहे हैं। अरे पुत्रो, क्या रक्षा नहीं करोगे। हमने जो तुम्हारा लालन-पालनकर बड़ा किया, क्या वह व्यर्थ ही गया, वैसे ही जैसे पापसे धर्म व्यर्थ जाता है ॥ १–६ ॥

[११] इतने पर भी जब कोई सहायताके लिए प्रस्तुत नहीं हुआ तो यक्षने (मायाके बलसे) उन तीनोंको मरा हुआ दिखाया। मरघटके सियार उन्हें खा रहे थे। फिर भी उनका स्थिर ध्यान नहीं डिगा। तब उसने रावणका मायावी सिर काटकर अविचल मन विभीषण और भानुकर्णके सामने डाल दिया। भाईके रक्त-रंजित सिर को देखकर वे दोनो कुछ डिग गये। प्रेमसे भरी उनकी स्थिर ज्योतिवाली आँखोंमे थोड़ेसे आँसू झलक उठे। तब यक्षने उन दोनोंके मुखकमल तोड़कर, रावणको दिखाये, मानो मृणालसे

घत्ता

ज एम वि रावणु अचलु थिउ तं देवहिँ साहुक्कारु किउ ।
विज्जहुँ सहासु उप्पण्णु किह तित्थयरहों केवल-णाणु जिह ॥९॥

[१२]

आगया कहकहन्ती महाकालिणी । गयण-संचालिणी भाणु-परिमालिणी ।१।
कालि कोमारि वाराहि माहेसरी । घोर-वीरासणी जोगजोगेसरी ।२।
सोमणी रयण वम्भाणि इन्दाइणी । अणिम लहिमत्ति पण्णत्ति कच्छाइणी ।३।
डहणि उच्चाटिणी थम्भणी मोहणी । वइरि-विद्धंसणी भुवण-संखोहणी ।४।
वारुणी पावणी भूमि-गिरि-दारिणी । काम-सुह-दाइणी वन्ध-वह-कारिणी ।५।
सव्व-पच्छायणी सव्व-आकरिसिणी । विजय जय जिम्भिणी सव्व-मय-णासणी।
सत्ति-सवाहिणी कुडिल अवलोयणी । अग्गि-जल-थम्भणी छिन्दणी भिन्दणी ।
आसुरी रक्खसी वारुणी वरिसणी । दारणी दुण्णिवारा य दुहरिसणी ।८।

घत्ता

आएहिँ वर-विज्जेँहि आइयहिँ रावणु गुण-गण - अणुराइयहिँ ।
चउदिसि परिवारिउ सहइ किह मयलञ्छणु छुणेँ ताराहुँ जिह ॥९॥

[१३]

सव्वोसह थम्भणी मोहणिय । संविद्धि णहङ्गण-गामिणिय ॥१॥
आयउ पञ्च वि ववगयउ तहिँ । थिउ कुम्भयण्णु चल-भाणु जहिँ ॥२॥
सिद्धत्थ सत्तु - त्तिणिवारिणिय । णिव्विग्घ गयण - सञ्चारिणिय ॥३॥
आयउ चयारि पुणु चल-मणहोँ । आसण्णउ थियउ विहीसणहोँ ॥४॥
एत्थन्तरेँ पुण्ण - मणोरहेँण । वहु - विज्जालङ्किय - विग्गहेँण ॥५॥
णामेण सयंपहु णयरु किउ । ण सग्ग-खण्डु अवयरेँ वि थिउ ॥६॥
अण्णु वि उप्पाइउ चेइहरु । मणहरु णामेण सहससिहरु ॥७॥
उत्तुङ्गु सिङ्गु उण्णइ करेँ वि । ण वञ्छइ सूर-विम्बु धरेँवि ॥८॥

कमल कटकर अलग कर दिये गये हों। लेकिन रावण अडिग रहा, तब देवोंने इसे साधुवाद दिया। इस तरह उसे एक हजार विद्याएँ सिद्ध हो गईं, ठीक वैसे ही जैसे तीर्थङ्करको केवलज्ञान सिद्ध हो जाता है ॥ १-६ ॥

[१२] महाकालिणी कहकहाती हुई आई। गगन संचालिनी, भानुपरिमालिनी, काली कुमारी, वाराही, माहेश्वरी, घोर वीरासनी, योगयोगेश्वरी, सोमनी रतन, ब्रह्माणी, इन्द्राणी, अणिमा, लघिमा, प्रज्ञप्ति, कात्यायनी, डाइनी, उच्चाटनी, स्तम्भिनी, मोहिनी, वैरि विध्वंसिनी, भुवन संक्षोहिणी, वारुणी, पावनी, भूमिगिरिदारुणी, कामसुख दायिनी, वन्धु वधकारिणी, सर्वप्रच्छादिनी, सर्व आकर्षणी, विजय-जय-जिंभनी, सर्वमदनाशिनी, शक्ति संवाहिनी, कुटिल अवलोकिनी, अग्नि-जलस्तम्भिनी, छिंदनी, भिंदनी, आसुरी, राक्षसी वारुणी, वर्पिणी, दारुणी, दुर्निवारा और दुर्दर्शनी ॥ १-८ ॥

गुण समूहसे अनुरक्त होने वाली ये विद्याएँ रावणके पास आ गईं। उनसे घिरा हुआ वह ऐसा लगता था मानो तारोंसे घिरा हुआ चन्द्रमा हो ॥ ९ ॥

[१३] सर्वौपध स्तम्भिनी, मोहिनी, संवर्धी, आकाशगामिनी ये पांच विद्याएँ, चलित ध्यान कुम्भकर्णके पास पहुँची। सिद्धार्थ, शत्रुविनिवारिणी, निर्विघ्न और गगनसंचारिणी, ये चार विद्याएँ विभीपण को भी प्राप्त हुईं। इसी बीच सफल मनोरथ और नाना विद्याओंसे अलंकृत शरीर, रावणने स्वयंप्रभ नामका विशाल नगर बसाया। वह ऐसा लगता था मानो पृथ्वीपर स्वर्ग का खंड ही आ गया हो ॥ १-६ ॥

उसमें उसने सहस्रकूट नामका सुन्दर चैत्यगृह बनवाया। ऊँचे-ऊँचे शिखर बनवाकर मानो वह सूर्यके बिम्बको पकड़ना चाहता था ॥ ७-८ ॥

घत्ता

त रिद्धि सुणेवि दसाणणहों परिओसु पवड्ढिउ परियणहों।
आयइँ कइ-जाउहाण-चलइँ ण मिलँ वि परोप्परु जल-थलइँ ॥६॥

[१४]

ज दिट्ठ सेण्ण सयणहुँ तणिय। परिपुच्छिय पुणु अवलोयणिय ॥१॥
ताएँ वि सवोहिउ दहवयणु। 'एँहु देव तुहारउ वन्धु-जणु' ॥२॥
त णिसुणेंवि णरवइ णीसरिउ। णिय - विज्ज - सहासें परियरिउ ॥३॥
ण कमलिणि-सण्डे पवरु सरु। णं रासि - सहासें ढियसयरु ॥४॥
स-विहीसणु कुम्भयण्णु चलिउ। ण दिवस-तेउ सूरहों मिलिउ ॥५॥
तिण्णि मि कुमार सचल्ल किर। उच्छलिय ताम फम्फाव-गिर ॥६॥
रयणासवु पत्तु स - वन्धुजणु। त पट्टणु तं रावण-भवणु ॥७॥
त सह-मण्डउ मणि-वेयडिउ। तं विज्ज - सहासु समावडिउ ॥८॥

घत्ता

पेक्खेप्पिणु परिओसिय-मणेंण णिय तणय सुमालिहेँ णन्दणेंण।
रोमञ्चाणन्द-णेह-जुएँहिँ चुम्बेंवि अवगूढ स इं भु वेंहिँ ॥९॥

•

[१०. दसमो संधि]

साहिउ छट्ठोववासु करेंवि णव - णीलुप्पल - णयणेंण।
सुन्दरु सु-वसु सु-कलत्तु जिह चन्दहासु दहवयणेंण ॥१॥

[१]

दससिरु विज्जा-दससय-णिवासु। साहेप्पिणु दूसहु चन्दहासु ॥१॥
गउ वन्दण-हत्तिएँ मेरु जाम। संपाइय मय - मारिच्च ताम ॥२॥
मन्दोवरि पवर - कुमारि लेवि। रावणहों जें भवणु पइट्ठ वे वि ॥३॥

रावणकी इस ऋद्धि-वृद्धिको सुनकर घरके लोगोंको खूब परि-तोष हुआ। जल-थलकी कई राक्षस सेनाएँ भी आकर उसे प्राप्त हो गईं ॥ ६ ॥

[१४] अपनी ही सेनाको देखकर, उसने अवलोकिनी विद्यासे पूछा, "यह कौन है।" उसने कहा, 'यह तुम्हारे ही बन्धुजन हैं।' यह सुनकर, अपनी हजार विद्याओंसे घिरा वह निकल पड़ा। मानो हजार कमलोंसे सरोवर या हजार किरणोंसे सूर्य ही, घिरा हो। वह, विभीषण और कुंभकर्णके साथ ऐसा जा रहा था मानो सूर्यमें दिनका तेज मिल गया हो। उन तीनों कुमारोंके प्रस्थान करनेपर चारणोंकी वाणी उछल पड़ी। रत्नाश्रव भी, अपने बन्धु-जनोंके साथ इस नये नगरमें रावणके भवनमें पहुँच गया। सुमालिके पुत्र रत्नाश्रवने अपने बेटे, रावणको सुन्दरमणि रत्नोंसे खचित, और हजार विद्याओंसे शोभित देखकर संतोषकी सांस ली। पुलकित होकर, उसने आनन्द-स्नेहसे भरे अपने भुजपाशमें उसे भर लिया ॥ १-६ ॥

०

दसवीं सन्धि

नवीन नील कमलके समान नेत्र वाले रावणने छ. उपवास किये और इस प्रकार उसने सुंदर कुलीन सुकलत्रकी तरह चन्द्रहास खड्ग सिद्ध किया ॥ १ ॥

[१] रावणमें दस हजार विद्याओंका निवास पहलेसे ही था, और अब दु सह चन्द्रहास खड्ग साधकर वह वन्दना भक्तिके लिए सुमेरु पर्वतपर गया। इतनेमें मय और मारीच उसके यहाँ आये। कुमारी मन्दोदरीको साथ लेकर वे दोनों रावणके भवनमें

चन्दणहि णिहालिय तेहिँ तेत्थु । 'परमेसरि गउ दहवयणु केत्थु' ॥४॥
तं णिसुणेंवि णयणाणन्दणीएँ । वुच्चइ रयणासव-णन्दणीएँ ॥५॥
'छुडु छुडु साहेप्पिणु चन्दहासु । गउ अहिमुहु मेरु-महीहरासु ॥६॥
एत्तिएं आवइ चइसरहु ताम' । तं लेवि णिमित्तु णिविट्ठ जाम ॥७॥
वेत्तालएँ महि कम्पणहँ लग्ग । सचलिय असेस वि कउह-मग्ग ॥८॥

घत्ता

खणेँ अन्धारउ खणेँ चन्दिणउ खणेँ धाराहरु वरिसइ ।
विज्जउ जोक्खन्तउ दहवयणु ण माहेन्दु पदरिसइ ॥९॥

[२]

मम्भीसेंवि मन्दोवरि मएण । चन्दणहि पपुच्छिय भय-गएण ॥१॥
'एँउ काइँ भडारिएँ कोउहल्लु । पवियम्भइ रएँ पेम्मु व णवल्लु ॥२॥
स वि पचविय 'कि ण मुणिउ पयाउ । दहगीव-कुमारहोँ एँहु पहाउ' ॥३॥
तं णिसुणेँवि सयल वि पुलइयङ्ग । अवरोप्परु मुहइँ णिएहुँ लग्ग ॥४॥
एत्थन्तरेँ किङ्कर-सय-सहाउ । मय-दूसावासु णियन्तु आउ ॥५॥
'एँहु को आवासिउ समभरेण । पणवेवि कहिउ केण वि णरेण ॥६॥
'विज्जाहर मय-मारिच्च के वि । तुम्हहँ मुहवेक्खा थाय वे वि' ॥७॥
तं णिसुणेँवि जिणवर-भवणु ढुक्कु । परियञ्चेवि वदेँवि ताण-मुक्कु ॥८॥

घत्ता

सहसत्ति दिट्ठु मन्दोवरिएँ दिट्ठिएँ चल-भउँहालएँ ।
दूरहोँ जेँ समाहउ वच्छयलेँ ण णीलुप्पल-मालएँ ॥९॥

प्रविष्ट हुए। वहाँ चन्द्रनखाको देखकर उन्होंने उससे पूछा— परमेश्वरी! रावण कहाँ गये हुए है।" यह सुनकर नेत्रोंको आनन्द देने वाली रत्नाश्रवकी पुत्री चन्द्रनखाने कहा, "अभी-अभी चन्द्रहास सिद्ध करके वह सुमेरु पर्वतकी ओर गये है।" जब तक वह यहाँ आते हैं तब तक बैठिये। यह मानकर, वे लोग ठहर गये..। सायंकाल धरती काँपने लगी और सभी दिशामार्ग चलायमान हो उठे ॥ १-८ ॥

क्षणमे अंधेरा, क्षणमें प्रकाश और क्षणमे मेघवर्षा हो उठती थी। इस प्रकार विद्युन प्रकाश करता हुआ रावण मानो माहेन्द्री विद्याका प्रदर्शन कर रहा था ॥ ९ ॥

[२] यह देखकर भयभीत मयने मंदोदरीको अभय देकर चन्द्रनखासे पूछा, "यह कौनसा कुतूहल है भट्टारिके? जो रत्तिमे नये प्रेमकी तरह फैलता ही चला जा रहा है।" उसने भी उत्तर दिया, "क्या तुम यह प्रताप नहीं जानते, यह कुमार रावण का प्रभाव है।" यह सुनते ही सब पुलकित हो उठे और एक दूसरेका मुँह देखने लगे। इतनेमे ही सैकड़ो अनुचरोसे घिरा मयके दूतावासको देखता हुआ, रावण आ पहुँचा। उसके यह पूछनेपर कि यह कौन ठाट बाटसे ठहरा है, किसीने प्रणामपूर्वक उससे कहा, "कोई मय और मारीच नामके विद्याधर हैं? वे दोनो आपसे भेट करने आये हुए हैं।" यह सुनकर वह जिनभवनमे पहुँचा। वहाँ उसने त्राणकर्ता जिनकी प्रदक्षिणा और वंदना की। इतनेमे सहसा मन्दोदरीने अपनी चञ्चल भौंहोवाली दृष्टिसे रावणको इस तरह देखा मानो किसीने दूरसे नीलकमल मालासे वक्षःस्थलपर आघात पहुँचा दिया हो ॥ १-९ ॥

[३]

दीसइ तेण वि सहसत्ति बाल । ण भसलें अहिणव-कुसुम-माल ॥१॥
दीसन्ति चलण-णेउर रसन्त । ण महुर-राव वन्दिण पढन्त ॥२॥
दीसइ णियम्बु मेहल - समग्गु । ण कामएव - अत्थाण - मग्गु ॥३॥
दीसइ रोमावलि छुडु चडन्ति । ण कसल-वाल-सप्पिणि ललन्ति ॥४॥
दीसन्ति सिहिण उवसोह देन्त । णं उरयलु भिन्देंवि हत्थि-दन्त ॥५॥
दीसइ पप्फुल्लिय-वयण-कमलु । णीसासामोयासत्त - भसलु ॥६॥
दीसइ सुणासु अणुहुअ - सुअन्धु । णं णयण-जलहों किउ सेउ-बन्धु ॥७॥
दीसइ णिडालु सिर-चिहुर-छण्णु । ससि-बिम्बु व णव-जलहर-णिसण्णु ॥८॥

घत्ता

परिभमइ दिट्ठि तहों तहिँ जेँ तहिँ अण्णहिँ कहि मि ण थक्कइ ।
रस-लम्पड महुयर-पन्ति जिम केयइ मुएँवि ण सक्कइ ॥९॥

[४]

दहगीव - कुमारहों लहेँवि चित्तु । एत्थन्तरेँ मारिच्चेण वुत्तु ॥१॥
'वेयड्ढहों दाहिण - सेढि - पवरु । णामेण देवसगीय - णयरु ॥२॥
तहिँ अम्हइँ मय-मारिच्च भाय । रावण विवाह - कज्जेण आय ॥३॥
लइ तुज्झु जेँ जोग्गउ णारि-रयणु । उट्ठहु देव करेँ पाणि-गहणु ॥४॥
एउ जेँ मुहुत्तु णक्खत्तु वारु । जं जिणु पच्चक्खु तिलोय-सारु ॥५॥
कल्लाण - लच्छि - मङ्गल - णिवासु । सिव-सन्ति-मणोरह-सुह-पयासु' ॥६॥
त णिसुणेंवि तुट्ठें दहमुहेण । किउ तक्खणेँ पाणिग्गहणु तेण ॥७॥
जय तूरहिँ धवलहिँ मङ्गलेहिँ । कञ्चण-तोरणेहिँ समुज्जलेहिँ ॥८॥

[३] उसने भी अचानक उस बालाको इस प्रकार देखा मानो भ्रमरने अभिनव कुसुममाला देख ली हो। उसके पैरोंके बजते हुए नूपुर ऐसे मालूम होते थे मानो बन्दीजन मधुर शब्दों का पाठ कर रहे हैं। मेखला सहित नितम्ब ऐसे लगते थे मानो कामदेवका आस्थान-मार्ग हो। चढ़ती हुई रोमराजि ऐसी जान पड़ती थी मानो काली बालनागिन ही शोभित हो रही हो। उसका खिला हुआ मुखकमल दीख पड़ रहा था, निश्वास के आमोदसे भ्रमर उस पर आसक्त थे। सुगन्धका अनुभव करनेवाली सुन्दर नाक ऐसी दिखाई देती थी मानो नेत्रजलके लिए सेतुबन्ध ही हो, सिर के बालोंसे ढँका हुआ ललाट ऐसा जान पड़ता था मानो चन्द्रबिम्ब ही नये मेघोंमे डूब गया हो॥ १–८॥

जिस अंगपर रावणकी दृष्टि घूमती, वह वही ठहर जाती। दूसरी जगह जाती ही नहीं, ठीक वैसे ही जैसे रसलोलुप भ्रमरमाला, केतकीको नहीं छोड़ सकती॥ ९॥

[४] इस प्रकार रावणका मन लेकर, मारीचने कहा— "विजयार्ध पर्वतकी विशाल दक्षिण श्रेणिमे देवसंगीत नामका नगर है। हम दोनों भाई मय और मारीच वहींसे विवाहके सिलसिलेमे यहां आये हैं। हे देव! इस योग्य नारीरत्नको ग्रहण कीजिए, उठकर इसका पाणिग्रहण कीजिए"॥ १–४॥

यही वह मुहूर्त, नक्षत्र और दिन है जिसे त्रिलोकसार, कल्याणलक्ष्मी और मंगलके निवास, तथा शिवशांति, मनोरथ और सुखोंको प्रकाशित करनेवाले जिन भी जानते है। यह सुनकर रावण खूब सन्तुष्ट हुआ और उसने उसी समय, जयतूर्य धवलमंगल तथा समुज्ज्वल स्वर्णिम तोरणोंके बीच मन्दोदरीसे

घत्ता

तं वहु-वरु णयणाणन्दयरु विसइ सयंपहु पट्टणु ।
णं उत्तम-रायहस-मिहुणु पप्फुल्लिय-पङ्कय-वयणु ॥९॥

[५]

अवरेक्क दिवसेँ दिढ-वाहु-दण्डु । विज्जउ जोक्खन्तु महा-पयण्डु ॥१॥
गउ तेत्थु जेत्थु माणसु-वमालु । जलहरधरु णामें गिरि विसालु ॥२॥
गन्धव्व-वावि जहिँ जगेँ पयास । गन्धव्व-कुमारिहिँ छह सहास ॥३॥
दिवेँ-दिवेँ जल-कील करन्तु जेत्थु । रयणासव-णन्दणु ढुक्कु तेत्थु ॥४॥
सहसत्ति दिट्ठु परमेसरीहिँ । ण सायरु-सयल महा-सरीहिँ ॥५॥
णं णव-मयलञ्छणु कुमुइणीहिँ । ण वाल-दिवायरु कमलिणीहिँ ॥६॥
सव्वउ रक्खण-परिवारियाउ । सव्वउ सव्वालङ्कारियाउ ॥७॥

घत्ता

सव्वउ भणन्ति वउ परिहरेँवि वम्मह-सर-जज्जरियउ ।
'पइँ मेल्लेँवि अण्णु ण भत्तारु परिणि णाह सइँ वरियउ' ॥८॥

[६]

एत्थन्तरेँ आरक्खिय-भडेहिँ । लहु गम्पिणु गमण-वियावडेहिँ ॥१॥
जाणाविउ सुन्दर-सुरवरासु । 'सव्वउ कण्णउ एक्कहोँ णरासु ॥२॥
करेँ लग्गउ तेण वि इच्छियाउ । पच्चेल्लिउ सुसमाइच्छियाउ' ॥३॥
तं णिसुणेँवि सुर-सुन्दरु विरुद्धु । उद्धाइउ णाइँ कियन्तु कुद्धु ॥४॥
अण्णु वि कणयाहिउ वुह-समाणु । तं पेक्खेँवि साहणु अप्पमाणु ॥५॥
चिट्टिएँहिँ वुत्तु 'णउ को वि सरणु । तउ अम्हहँ कारणेँ ढुक्कु मरणु' ॥६॥
रावणेँण हसिउ 'किं आयएहिँ । किर काइँ सियालहिँ घाइएहिँ ॥७॥

विवाह कर लिया। उसके वाद आँखोको सुख देनेवाले वरवधूने स्वयंप्रभ नगरमे प्रवेश किया मानो उत्तम राजहस दम्पतिने ही विकसित कमलवनमे प्रवेश किया हो ॥ १–६ ॥

[५] दृढ़ बाहुदण्डवाला महाप्रचण्ड रावण एक दिन अपनी विद्याका प्रदर्शन करता हुआ वहाँ गया जहाँ मनुष्योके कोलाहलसे व्याप्त जलहरधर नामका विशाल पर्वत था। उसमे जगत्-प्रसिद्ध गन्धर्ववापिका थी। कोई ६ हजार गन्धर्व-कुमारियाँ प्रतिदिन उसमे जलक्रीड़ा करने आती थीं। रावण भी अचानक वहाँ पहुँच गया। सहसा परमेश्वरी गन्धर्व-कुमारियोने रावणको इस तरह देखा मानो समस्त महासरिताओने समुद्रको, या कुमुदिनियोने चन्द्रमाको, या कमलिनियोने दिवाकरको ही देखा हो। सवकी सव रत्नोंसे रक्षित और सव तरहके अलकारोसे भूपित थीं। वे कामदेवसे आहत हो उठीं और अपना कन्यासुलभ शील छोड़कर वे सवकी सब रावणसे वोलीं, "तुम्हे छोड़कर, दूसरा हमारा पति नही हो सकता, हमने तुम्हारा वरण स्वय किया है, हे नाथ पाणिग्रहण कर लो।" ॥ १–८ ॥

[६] इसी वीच, यह सव देखकर, व्याकुलचित्त रक्षक सैनिकोने जाकर सुन्दर गन्धर्व विद्याधरसे कहा कि "सव कुमारियाँ एक ही मनुष्यकी हो गई है, उसने भी चाहनेवाली उन अत्यन्त सुन्दरियोका पाणिग्रहण कर लिया है।" यह सुनकर सुन्दर विद्याधर विरुद्ध हो उठा और वह क्रुद्ध कृतातकी तरह दौड़ा। उसके साथ दूसरा देवसम कनकाधिप ? विद्याधर भी हो लिये। उस अगणित विद्याधर सेनाको देखकर, कुमारियोने अपने प्रिय रावणसे कहा—"अव तुम्हे कुछ भी शरण नही है, हमारे कारण तुम्हारी मृत्यु निकट आ गई है।" यह सुनकर रावणने हँसकर

घत्ता

ओसोवणि विज्जएँ सोँ चवेँवि वद्धा विसहर-पासेँहिँ ।
जिह दूर-भव्व भव-सचिएँहिँ दुक्किय-कम्म-सहासेँहिँ ॥८॥

[७]

आमेल्लेवि पुज्जेँवि करेँ वि दास । परिणेप्पिणु कण्णहँ छ वि सहास ॥१॥
गउ रावणु णिय पट्टणु पविट्ठु । स-कियत्थु सयल-परियणेँण दिट्ठु ॥२॥
वहु-कालें मन्दोयरिहेँ जाय । इन्दइ-घणवाहण वे वि भाय ॥३॥
एत्तहेँ वि कुम्भपुरेँ कुम्भयण्णु । परिणाविउ सिय-संपय पवण्णु ॥४॥
रत्तिन्दिउ लङ्काउरि-पएसु । जगडइ वइसवणहोँ तणउ देसु ॥५॥
गय पय कूवारें कोउ हूउ । पेसिउ वयणालङ्कार-दूउ ॥६॥
दहवयणट्ठाणु पइट्ठु जम्पि । तेहि मि किउ अब्भुत्थाणु किं पि ॥७॥
पभणिउ 'सुमालि-पहु देहि कण्णु । पोत्तउ णिवारि इउ कुम्भयण्णु ॥८॥

घत्ता

अवराह-सएहि मि वइसवणु तुम्हहिँ समउ ण जुज्झइ ।
डज्झन्तु वि सवर-पुलिन्दएँहिँ विज्झु जेम ण विरुज्झइ ॥९॥

[८]

पर आएं पेक्खमि विपडिवण्णु । जे णाहिँ णिवारहोँ कुम्भयण्णु ॥१॥
एयहोँ पासिउ तुम्हहँ विणासु । एयहोँ पासिउ आगमणु तासु ॥२॥
एयहोँ पासिउ पायाल-लङ्क । पइसेवउ पुणु वि करेवि सङ्क ॥३॥
मालि वि जगडन्तउ आसि एम । मुउ पडेँवि पईवेँ पयङ्गु जेम ॥४॥

कहा—"अरे घातक इन सियारोंसे क्या ?" उसने तब उत्स्वप्न विद्याका ध्यान किया और नागपाशसे उस विद्याधर सेनाको वैसे ही बाँध लिया जैसे पूर्वजन्मके संचित हजारों पाप कर्म दूर भव्यको बाँध लेते हैं ॥ १–८ ॥

[७] पुनः उनके द्वारा प्रार्थना करनेपर उसने उन्हें दास बनाकर छोड़ दिया और छह हजार कन्याओंसे विवाह कर लिया। अनन्तर रावण अपने नगर लौट गया। पुरजनवासियोंने इसे वैभवके साथ नगरमें प्रवेश करते हुए देखा। पुनः बहुत काल बीत जानेपर मन्दोदरीके इन्द्रजीत और घनवाहन नामके दो पुत्र हुए। इधर कुम्भपुरमें कुम्भकर्णने भी श्रीसंपदासे विवाह कर लिया। वह लङ्कानगरीके वैश्रवणवाले प्रदेशमें उत्पात मचाने लगा। प्रजा बिलखती हुई राजा वैश्रवणके पास पहुँची। उसने क्रुद्ध होकर रावण के पास वचनालंकार दूतको भेजा। दूत जाकर रावणके दरबारमें प्रविष्ट हुआ। उसने दूतका थोड़ा आदर सत्कार किया। दूतने तब कहा, "प्रभु सुमालि, अपनी लड़की दो, और अपने पोते कुम्भकर्णको रोको। सैकड़ों अपराध होनेपर भी वैश्रवण तुम्हारे साथ युद्ध नहीं करना चाहता, वैसे ही जैसे शबर पुलिंदो द्वारा जलाये जाने पर भी विन्ध्याचल उनके विरुद्ध नहीं होता ॥ १–९ ॥

[८] पर इस बातको मैं आपत्तिजनक समझता हूँ यदि तुम कुम्भकर्णको नहीं रोकते। इससे तुम्हारा नाश होगा, इससे धनद का यहाँ आगमन होगा। इसके कारण, आशंकासे तुम्हें फिर पाताल लंकामें प्रवेश करना पड़ेगा। इसी तरह मालि भी झगड़ा करता आया था, परन्तु वह उसी तरह मारा गया जिस तरह दीपकमें पड़कर शलभ मारा जाता है ॥ १–४ ॥

तइयहुँ तुम्हहुँ वित्तन्तु जो ज्जें । एवहिँ दीसइ पडिवउ वि सो ज्जें ॥५॥
वरि एँहु जें समप्पिउ कुल-कयन्तु । अच्छउ तहों घरें णियलइँ वहन्तु ॥६॥
त णिसुणेंवि रोसिउ णिसिअरिन्दु । 'कहों तणउ धणउ कहों तणउ इन्दु' ॥७॥
अवलोइउ भीसणु चन्दहासु । पडिवक्ख-पक्ख-खय-काल वासु ॥८॥
'पइँ पढमु करेप्पिणु वलि-विहाणु । पुणु पच्छएँ धणयहों मलमि माणु' ॥९॥
सिरु णावेंवि वुत्तु विहीसणेण । 'विणिवाइएण दूवेण एण ॥१०॥

घत्ता

परिभमइ अयसु पर-मण्डलेंहिँ तुम्हहँ एउ ण छज्जइ ।
जुज्झन्तउ हरिण-उलेहिँ सहुँ किं पञ्चमुहु ण लज्जइ' ॥११॥

[६]

णीसारिउ दूउ पणट्ठु केम । केसरि-कम-चुक्कु कुरङ्गु जेम ॥१॥
एत्तहेँ वि दसाणणु विप्फुरन्तु । सण्णहेँ वि विणिग्गउ जिह कयन्तु ॥२॥
णीसरिउ विहीसणु भाणुकण्णु । रयणासउ मउ मारिच्चु अण्णु ॥३॥
णीसरिउ सहोयरु मल्लवन्तु । इन्दइ घणवाहणु सिसु वि होन्तु ॥४॥
हइ तूरु पयाणउ दिण्णु जाम । दूएण वि धणयहों कहिउ ताम ॥५॥
'मालिहेँ पासिउ एयहों मरट्टु । उक्खन्धु देवि अण्णु वि पयट्टु ॥६॥
त वयणु सुणेंवि सण्णहेँवि जक्खु । णीसरिउ णाइँ सइँ दससयक्खु ॥७॥
थिउ उड्डेंवि गिरि-गुञ्जक्खेँ जाम । तं जाउहाण-वलु ढुक्कु ताम ॥८॥

घत्ता

हय समर-तूर किय-कलयलइँ अमरिस-रहस-विसट्टइँ ।
वइसवण-दसाणण साहणइँ विण्णि वि रणेँ अब्भिट्टइँ ॥९॥

[१०]

केण वि सुन्दर सु-रमण सु-सेव । आलिङ्गिय गय-घड वेस जेव ॥१॥

जान पड़ता है, उसका जो हाल हुआ वही तुम्हारा होगा। अच्छा तो यह हो कि उस कुल कृतान्तको मुझे सौंप दो, या फिर वह, बेड़ियोंसे जकड़ा हुआ—घरमें ही रहे।" यह सुनकर निशाचर राज रोषसे भरकर बोला, "कौन धनद, और इन्द्र?" फिर शत्रु पक्षका संहार करनेवाली अपनी भीषण चन्द्रहास तलवारकी ओर देखते हुए, उसने कहा, "पहले मैं तुम्हारा बलिविधान करता हूँ, फिर बादमें धनदका मानमर्दन करूँगा।" पर इतनेमें विभीषण सिर झुकाकर रावणसे बोला, "इस दूतको मारनेसे शत्रुमंडलमें हमारी अकीर्ति फैल जायगी। यह तुम्हें शोभा नहीं देता, क्या हिरनोंके झुंडसे लड़ते हुए सिंह लज्जित नहीं होता? ॥ ५-११ ॥

[९] इसपर उसने दूतको निकाल दिया। सिंहके पंजेसे चूके हुए हिरनकी भाँति वह दूत किसी तरह बच गया। इधर रावण भी, तमतमाता हुआ तैयार होकर यमकी भाँति निकल पड़ा। तब विभीषण भानुकर्ण, रत्नाश्रव, मय और मारीच भी निकल पड़े। और भी सहोदर माल्यवन्त इन्द्रजित्, तथा शिशु होते हुए भी मेघवाहन भी निकल आया। तूर्य बजाकर जैसे ही इन लोगोंने प्रणाम किया वैसे ही दूतने जाकर धनदसे कहा, "सुमालिको इतना घमण्ड कि एक तो उसने वैर किया और दूसरे उसने कूच कर दिया है। यह सुनकर, धनदने भी पूरी तैयारीके साथ, इन्द्रकी ही भांति कूच किया। आकर जबतक गुंज पर्वतपर पहुँचकर उसने अपना मोर्चा जमाया तबतक राक्षस सेना भी वहाँ पहुँच गई। रणवाद्य बजते ही कोलाहल होने लगा। अमर्ष और हर्ष से भरी हुई दोनों ओरकी सेनाएँ आपसमें टकरा गईं ॥ १-९ ॥

[१०] कोई सुन्दर वीर गजघटाका आलिंगन वैसे ही कर रहा था जैसे कोई कामुक वेश्याका आलिंगन कर रहा हो। तब

स वि कासु वि उरयलें वेज्झु देइ । ण विवरिय-सुरएं हियउ लेइ ॥२॥
केण वि आवाहिउ मण्डलग्गु । करि-सिरु णिव्वट्टेंवि महिहिँ लग्गु ॥३॥
केण वि कासु वि गय-घाउ दिण्णु । किउ स-रहु स-सारहि चुण्णु चुण्णु ॥४॥
केण वि कासु वि उरु सरहिँ भरिउ । लक्खिज्जइ णं रोमञ्चु धरिउ ॥५॥
केण वि कासु वि रणेँ मुक्कु चक्कु । थिउ हियएँ धरेंवि णं पिसुण-वक्कु ॥६॥
एत्थन्तरेँ धणए ण किउ खेउ । हक्कारिउ आहवेँ कइकसेउ ॥७॥
'लइ तुज्झु जुज्झु एत्तडउ कालु । ढुक्को सि सीह-दन्त-तरालु' ॥८॥

घत्ता

तं णिसुणेँवि रावणु कुइय-मणु वइसवणहों आलग्गउ ।
करु उब्भेवि गज्जेंवि गुलगुलेंवि ण गयवरहों महग्गउ ॥९॥

[११]

अम्बुहर - लील - सदरिसणेण । सर-मण्डउ किउ तहिँ दस-सिरेण ॥१॥
विणिवारिउ दिणयर-कर-णिहाउ । णिसि दिवसु किं ति सन्देहु जाउ ॥२॥
सन्दणेँ हएँ गएँ धय-चिन्धेँ छत्ते । जम्पाणेँ विमाणेँ णरिन्द-गत्तेँ ॥३॥
थरथरहरन्त सर लग्ग केम । धणवन्तएँ माणुसेँ पिसुण जेम ॥४॥
जक्खेण वि हय वाणेहिँ वाण । मुणिवरेण कसाय व ढुक्कमाण ॥५॥
धणु पाडिउ पाडिउ छत्त-दण्डु । दहमुह-रहु किउ सय खण्ड-खण्डु ॥६॥
अण्णेण चडेप्पिणु भिडिउ राउ । णं गिरि-सघायहों कुलिस-घाउ ॥७॥
हउ धणउ भिण्डिवालेण उरसेँ । ओणल्लु भाणु रहसिएँ व दिवसेँ ॥८॥

घत्ता

णिउ णिय-सामन्तेंहिँ वइसवणु विजउ दसाणणेँ घुट्ठउ ।
'कहिँ जाहि पाव जीवन्तु महु' कुम्भयण्णु आरुट्ठउ ॥९॥

उसने (गजघटाने) उसकी छातीमें धक्का दिया मानो वह विपरीत रतिमें मन ले रही थी। किसीने तलवार चलाकर हाथीका सिर धरती पर गिरा दिया। किसीने उर वाणोंसे भर दिया, वह रोमाञ्चकी तरह जान पड़ रहा था। युद्धमें किसीने किसीके ऊपर चक्र छोड़ा। वह, चुगलखोरके शब्दोंकी तरह हृदयमें जाकर लग गया। इतनेमें खेद करते हुए धनदने रावणको ललकारा, "तुम जो युद्ध कर रहे हो, उससे यही जान पड़ता है कि सिंहकी दाढ़ोंसे भी अधिक विकराल काल, तुम्हारे अत्यन्त समीप आ गया है।" यह सुनकर क्रुद्ध रावण, वैश्रवणसे भिड़ गया। हाथ उठाकर वह गरज उठा, मानो एक महागज दूसरेको उभाड़ रहा हो ॥ १-६ ॥

[११] मेघलीलाका प्रदर्शनकर और तीरोंका मंडप तानकर रावणने सूर्यका प्रकाश ढक दिया। उससे दिनरातका सन्देह होने लगा। रथ, अश्व, गज, ध्वज, प्रतीक, छत्र, जम्पाण विमान तथा राजाओंके शरीरमें लगे हुए तीर ऐसे लग रहे थे मानो किसी धनिकके पीछे चापलूस लगे हो। तब धनदने भी वाणों की वर्षासे वाणोंको वैसे ही रोक दिया जैसे महामुनि आती हुई कषायोंको रोक देते है। धनदने छत्र दंड गिराकर रावणके रथके सौ टुकड़े कर दिये। तब वह दूसरे रथपर चढ़कर दौड़ा और उसने ऐसा आघात किया मानो किसी पर्वतपर वज्र ही गिरा हो। उसके भिन्दपाल शस्त्रसे आहत होकर धनद ऐसे धराशायी हो गया, मानो दिनमें सूर्य ही झुककर धरती पर खिसक आया हो ॥ १-८ ॥

तब वैश्रवणको उसके सामन्त उठाकर ले गये। रावणने विजय की घोषणा कर दी। इतनेमें कुम्भकर्ण आवेशमें आकर गरज उठा—"अरे पापिष्ठ तू मेरे जीवित रहते हुए कहाँ जायगा?" ॥९॥

[१२]

'आए समाणु किर कवणु खत्तु । घाइज्जइ णासन्तो वि सत्तु ॥१॥
ज फिट्टइ जम्म-सयाहँ काणि' । किर जाम पधावइ सूल-पाणि ॥२॥
अवरुण्डेंवि धरिउ विहीसणेण । 'किं कायर-णर विद्धसणेण ॥३॥
सो हम्मइ जो पहणइ पुणो वि । किं उरउ म जीवउ णिव्विसो वि ॥४॥
णासउ वराउ णिय-पाण लेवि' । थिउ भाणुकण्णु मच्छरु मुएँ वि ॥५॥
एत्थन्तरें वइसवणहों मणिट्ठु । सु-कलत्तु व पुप्फ-विमाणु दिट्ठु ॥६॥
तहिँ चडिउ णराहिउ मुएँ वि सङ्क । पट्ठविय पसाहा कें वि लङ्क ॥७॥
अप्पुणु पुणु जो जो को वि चण्डु । तहोँ तहोँ ढुक्कइ जिह काल-दण्डु ॥८॥

घत्ता

णिय-बन्धव-सयणेंहिँ परियरिउ दणुवइ दुद्दम-दमन्तउ ।
आहिण्डइ लीलएँ इन्दु जिह देस,स य भु अन्तउ ॥९॥

•

[११. एगारहमो संधि]

पुप्फ-विमाणारूढएँण दहवयणे धवल-विसालाइँ ।
ण घण-विन्दइँ अ-सलिलइँ दिट्ठइ हरिसेण-जिणालाइँ ॥ १ ॥

[१]

तोयदवाहण - वस - पईवें । पुच्छिउ पुणु सुमालि दहगीवें ॥१॥
अहोँ अहोँ ताय ताय ससि-धवलइँ । एयइँ किण जलुग्गय-कमलइँ ॥२॥

[१२] इसके समान नीच शत्रु दूसरा नहीं, नष्ट होते हुए भी इसे मारो, जिससे हमारा सैकड़ों वर्षोंका वैर निर्यातन हो जाय"। यह कहकर, त्रिशूल हाथमें लिये हुए ज्यों ही कुम्भकर्ण दौड़ा त्योंही विभीषणने लिपटकर उसे रोक लिया। उसने कहा, "कायर जन को मारनेसे क्या लाभ, जो आक्रमण कर रहा हो उसे मारना चाहिए। क्या निर्विष साँप भी जिन्दा न रहे। वह तो स्वयं अपने प्राण लेकर नष्ट हो रहा है।" यह सुनकर, कुम्भकर्ण मत्सर छोड़कर रुक गया। इतनेमें, सुकलत्रकी तरह सुन्दर, वैश्रवणका विमान दिखाई दिया। रावण निःशंक होकर उसपर चढ़ गया और प्रसाद पूर्वक कितनोंको लङ्कामें पहुँचा दिया। तथा जो-जो दुष्ट जन थे कालदण्डके समान होकर स्वयं उनकी खोज करने लगा ॥ १-८ ॥

इस प्रकार अपने स्वजन बान्धवोंसे वेष्ठित होकर और उद्दण्ड पुरुषोंका दमन करते हुए वह दानवपति देशका स्वयं भोग करता हुआ लीलापूर्वक इन्द्रके समान घूमने लगा ॥ ९ ॥

ग्यारहवीं सन्धि

[१] एक समय पुष्पक विमानसे जाते हुए रावणने निर्जल मेघ समूहके समान निर्मल और विशाल (हरिषेण द्वारा निर्मित) जिन मन्दिर देखे ॥ १ ॥

[१] तोयदवाहन वंशके कुलभूषण रावणने सुमालि से पूछा—"चन्द्रकी तरह धवल ये क्या हैं? क्या ये जलसे निकले

कि हिम-सिहरइँ साडँवि मुक्कइँ । किं णक्खत्तइँ थाणहों चुक्कइँ ॥३॥
दण्डुहण्ड - धवल - पुण्डरियइँ । किं काह मि सिसुप्परि धरियइँ ॥४॥
अब्भारम्भ - विवज्जिय - गब्भइँ । कि भूमियले गयइँ सुब्भब्भइँ ॥५॥
किय-मङ्गल - सिङ्गार - सहासइँ । किं आवासियाइँ कलहसइँ ॥६॥
जसु सव्वङ्गइँ खण्डेँ विँ खण्डेँ वि । किय गउ को पडीवउ छण्डेँवि ॥७॥
कामिणि - वयणोहामिय-छायइँ । किय ससि-सयइँ मिलेप्पिणु आयइँ ॥

घत्ता

कहइ सुमालि दसाणणहों 'जण-णयणाणन्द-जणेराइँ ।
जिण-भवणइँ छुह-पङ्कियइँ एयइँ हरिसेणहों केराइँ ॥९॥

[२]

अट्ठाहियहेँ मज्झेँ महि सिद्धी । णव-णिहि-चउदह-रयण-समिद्धी ॥१॥
पहिलएँ दिवसेँ महारह-कारणेँ । जाणेवि जणणि-दुक्खु गउ तक्खणेँ ॥२॥
वीयएँ तावस भवणु पराइउ । मयणावलिहेँ मयण-जरु लाइउ ॥३॥
तइयएँ सिन्धुणयरे चुपसण्णउ । हत्थि जिणेप्पिणु लइयउ कण्णउ ॥४॥
वेयमईएँ चउत्थएँ हारिउ । जयचन्दहेँ हियवएँ पइसारिउ ॥५॥
पञ्चमेँ गङ्गाहर - महिहर - रणु । तहिँ उप्पण्णु चक्कु तहों स-रयणु ॥६॥
छट्ठएँ पिहिमि हूअ आवग्गी । अण्णु वि मयणावलि करेँ लग्गी ॥७॥
सत्तमेँ गम्पि जणणि जोक्कारिय । अट्ठमेँ दिवसेँ पुज्ज णीसारिय ॥८॥

घत्ता

एयइँ तेण वि णिम्मियइँ ससि-सङ्ख-खीर-कुन्दुज्जलइँ ।
आहरणइँ व वसुन्धरिहेँ सिव-सासय-सुहइँ व अविचलइँ' ॥९॥

[३]

गउ सुणन्तु हरिसेण-कहाणउ । सम्मेय-इरिहिँ मुक्कु पयाणउ ॥१॥
ताम णिणाउ समुट्ठिउ भीसणु । जाउहाण - साहण - संतासणु ॥२॥

हुए सफेद कमल है, या हिमके शिखर नष्ट होकर बिखरे है, या तारा समूह अपने स्थानसे छूट पड़ा है, या किसी बालकके ऊपर लम्बे दण्डपर स्थित धवल छत्र रखे हैं, या जलरहित भूमिगत सुन्दर मेघ हैं, या मङ्गल शृङ्गार किये हुए हजारों कलहंस बसा दिये गये है, या कोई अपने सम्पूर्ण यशको खण्ड खण्ड करके यहॉ बिखरा गया है, या सुन्दरमुखियोंसे पराजित कान्तिवाला सैकड़ों चन्द्र यहॉ आकर मिल रहे हैं ?" प्रत्युत्तरमे तब सुमालिने कहा—"चूनेसे पुते और जननेत्रोको आनन्द देनेवाले ये विशाल भवन हरिषेणके हैं" ॥ १-९ ॥

[२] कहा जाता है कि उसे अष्टाह्निका के दिनोंमे नौ निधियॉ और चौदह रत्नोंसे समृद्ध धरती सिद्ध हुई थी। पहले ही दिन, अपनी मांको महारथ यात्राके लिए व्याकुल देखकर वहॉ गया। दूसरे दिन तापस वनमे जाकर मदनावलीकी काम-पीड़ा शान्त की। तीसरे दिन, सुप्रसिद्ध सिन्धु नगरमे पहुँचकर राजा हस्तिको पराजितकर उसकी कन्या ग्रहण की। चौथे दिन वेगवती का हरण कर जयचन्द्रसे उसका सम्बन्ध करा दिया। पाचवे दिन गङ्गाधर महीधरसे तुमुल युद्ध हुआ। वहां उसे चक्ररत्नकी प्राप्ति हुई। छठे दिन उसने अपनी भूमिका उद्धार किया। यहॉ उसे एक और मदनावली मिली। तब सातवे दिन जाकर उसने अपनी मॉका अभिनन्दन किया। और आठवें दिन विशाल जिन-पूजा निकाली। ये जिन-मन्दिर उसी हरिषेण राजाके बनवाये हैं। चन्द्र, शंख, दूध और कुंदके समान उज्ज्वल ये जिन-भवन धरतीके आभूषण-समान हैं या शाश्वत शिव-सुखोंको तरह अविचल हैं ॥ १-९ ॥

[३] इस प्रकार हरिषेणकी कहानी सुनते हुए रावणने सम्मेद-शिखरके लिए प्रस्थान किया। इसी बीच राक्षस-सेनाको सताने-

पेसिय हत्थ-पहत्थ पधाइय । वण-करि णिएँ वि पडीवा आइय ॥३॥
'देव देव किउ जेण महारउ । अच्छइ मत्त-हत्थि अइरावउ ॥४॥
गज्जणाएँ अणुहरइ समुद्दहों । सीयरेण जलहरहों रउद्दहों ॥५॥
कद्दमेण णव-पाउस-कालहों । णिज्झरेण महिहरहों विसालहों ॥६॥
रुक्खुम्मूलणेण दुव्वायहों । सुहड-विणासणेण जमरायहों ॥७॥
दसणेण आसीविससप्पहों । विविह-मयावत्थएँ कन्दप्पहों ॥८॥

घत्ता

इन्दु वि चडेंवि ण सक्कियउ खन्धासणेँ एयहों वारणहों ।
गउ चउपासिउ परिभमेंवि जिम अत्थ-हीणु कामिणि-जणहों ॥९॥

[४]

अण्णुप्पण्णु दसण्णय-काणणेँ । माहव-मासेँ देसेँ साहारणेँ ॥१॥
उभय-चारि सव्वङ्गिय-सुन्दरु । भद्द-हत्थि णामेण मणोहरु ॥२॥
सत्त समुत्तुङ्गउ णव दीहरु । दह परिणाहु तिण्णि कर वित्थरु ॥३॥
णिद्ध-दन्तु महु-पिङ्गल-लोयणु । अयसि-कुसुम-णिहु रत्त-कराणणु ॥४॥
पञ्च-मङ्गलावत्तु मयालउ । चक्क - कुम्भ - धय - छत्त-रिहालउ ॥५॥
वट्ट - तरट्टि - थणय-कुम्भत्थलु । पुलय-सरीरु गलिय-गण्डत्थलु ॥६॥
उण्णय-कन्धरु सूयर-पच्छलु । वीस-णहरु सुअन्ध-मय-परिमलु ॥७॥
चाव-वसु थिर-मसु थिरोयरु । गत्त - दन्त - कर - पुच्छ - पईहरु ॥८॥

घत्ता

एम अणेयइँ लक्खणइँ किं गणियइँ णाम-विहूणाइँ ।
' हत्थि-पएसहुँ सव्वहु मि चउदह-सयइँ चऊणाइँ' ॥९॥

वाली एक भीषण ध्वनि सुनाई दी। तब (उसका पता लगानेके लिए) रावणने हस्त-प्रहस्तको भेजा। वे दोनों दौड़कर लौट आये। आकर उन्होंने कहा, "देवदेव! जिसने यह ध्वनि की है वह एक मत्त ऐरावत हाथी है। जो गर्जन करनेमें महासमुद्र, जलकण बरसानेमें प्रलय मेघ, धूल फैलानेमें नूतन पावसकाल, मदकी फुहार छोड़नेमें विशाल पर्वत, वृक्षोंको जड़से उन्मूल करनेमें प्रचण्ड पवन वेग, और सुभटोंका संहार करनेमें यम, दाँतोंसे विपदंत सर्पराज, और मदकी विविध अवस्थाओंमें कामदेव है। इन्द्र भी उस महागजके स्कन्धपर चढ़नेमें समर्थ नहीं हो सका। उसके आस पास घूमकर इन्द्र उसी प्रकार लौट गया जिस प्रकार अर्थहीन व्यक्ति, वेश्याके इधर-उधर चक्कर काटकर चला जाता है ॥१-६॥

[४] यह साहारण देशके दशार्ण जङ्गलमें चैत्रमाहमें उत्पन्न हुआ था। सर्वाङ्ग सुन्दर गिरिधारी और मनोहर इस हाथीका नाम भद्रहस्ति है। सात हाथ ऊँचा, नौ हाथ लम्बा, दश हाथ चौड़ा और तीन हाथ विस्तृत सूँड़ है। उसके दाँत चिकने, आँखें मधु की तरह पीली तथा हाथ और मुख, अलसीके फूलकी तरह लाल है, पंच मङ्गलावर्तोंसे (मस्तक, तालु, हृदय इत्यादि) युक्त और मदोन्मत्त है। वह चक्र, कुंभ, ध्वज और छत्रकी रेखाओंसे युक्त है। उसका शरीर पुलकित, गंडस्थल झरता हुआ, कन्धे ऊँचे, पिछला भाग सूअरकी तरह, बीस नख और सुगन्धित मदजल वाला है। चापवंशी, स्थिर मांस उसका शरीर, दांत, सूँड़, और पूँछ लम्बी है ॥ १-८ ॥

हस्ति-लक्षणमें जो और अनेक लक्षण कहे गये हैं उन सबको गिनानेसे क्या लाभ, चार कम चौदह सौ सभी लक्षण उसमें हैं।९।

[५]

तं णिसुणेवि दसाणणु हरिसिउ । उरें ण मन्तु रोमञ्चु व दरिसिउ ॥१॥
'जइ तं भद्द-हत्थि णउ साहमि । तो जणणोवरि असि वरु वाहमि' ॥२॥
एउ भणेवि स-सेण्णु पधाइउ । तं पएसु सहसत्ति पराइउ ॥३॥
गयवइ णिएँवि विरोल्लिय-णयणें । हसिउ पहत्थु णवर दह-वयणें ॥४॥
'हउँ जाणमि पचण्डु तम्बेरमु । णवर विलासिणि-रूउ व मणोरमु ॥५॥
हउँ जाणमि गइन्द-कुम्भत्थलु । णवर विलासिणि पण-थण-मण्डलु ॥६॥
जाणमि सु-विसाणइँ अ-कलङ्कइँ । णवर पसण्ण-कण्ण-ताडङ्कइँ ॥७॥
हउँ जाणमि भमन्ति भमर-उलइँ । णवर णिरन्तर-पेल्लिय-कुरुलइँ ॥८॥

घत्ता

जाणमि करि-खन्धारुहणु अच्चन्तु होइ भय-भासुरउ ।
णवर पहत्थ मज्झु मणहों उब्वहइ णवल्लु णाइँ सुरउ' ॥९॥

[६]

पुप्फ-विमाणहों लीणु दसाणणु । दिढु णियत्थु किउ केस-णिवन्धणु ॥१॥
लइय लट्ठि उग्घोसिउ कलयलु । तूरइँ हयइँ पधाइउ मयगलु ॥२॥
अहिमुहु धणय-पुरन्दर-वइरिहिं । वासारत्तु जेम विन्झइरिहिं ॥३॥
पुक्खरें ताडिउ लक्कुडि-घाएं । णावइ काल-मेहु दुब्वाएं ॥४॥
देइ ण देइ वेज्झु उरें जावेंहिं । विज्जुल-विलसिय-करणें तावेंहिं ॥५॥
पच्छलें चडिउ घुणेंवि भुव-डालिउ । 'वुदवुद भणेंवि खन्धें अप्फालिउ ॥६॥
जड्डिउ पुणु वि करेणालिङ्गें वि । सुविणा (?) दँइउ जेम गउ लङ्घेंवि ॥७॥
खणें गण्डयलें ठाइ खणें कन्धरें । खणें चउहु मि चलणहुँ अब्भन्तरें ॥८॥

[५] यह सुनकर रावण बहुत प्रसन्न हुआ। मनमे न समा सकनेसे उसका हर्ष मानो रोमांचके रूपमें फूट पड़ा। "यदि मैं उस मद्र हस्तिको वशमे न कर सका, तो अपने ही पितापर तलवार चलाऊँ।" यह कहकर, वह शीघ्र सेनासहित दौड़ गया और उस प्रदेशमे जा पहुँचा। आखे फाड़-फाड़कर, उस हाथीको देख, रावणने अपने प्रहस्त सेनापतिसे मजाक करते हुए कहा—"मैं इसकी प्रचण्ड आकृतिको केवल, विलासिनीके रूपकी तरह मानता हूँ। हाथीका कुम्भस्थल, केवल विलासिनीका स्तन-मण्डल है, उसके अकलंक शुभ्र दाँत केवल विलासिनियोंके ताटंक है, उस पर मड़राते हुये भ्रमर विलासिनियोके चञ्चल केश हैं॥ १–८॥

मै जानता हूँ कि हाथीके कन्धेपर चढ़ना बहुत भयातुर होता है, फिर भी हे प्रहस्त, मेरे मनमे जाने क्यो नवीन सुरतिका अनुभव जैसा हो रहा है॥ ९॥

[६] पुष्पक विमान पर बैठा हुआ वह अपने बालोका निवन्धन मजबूत करने लगा। तूर्यका शब्द होते ही, मदमाता वह गज धनद और पुरन्दरके शत्रु रावणके सम्मुख ऐसा दौड़ा मानो विन्ध्याचलके सम्मुख मेघसमूह दौड़ा हो। लाठीकी चोटसे सूँड़ पर आहत होकर वह महागज, दुर्वातसे आहत कालमेघकी तरह उछल पड़ा। जब तक वह बिजलीकी तरह चमचमाती सूँडसे रावणकी छातीपर चोट करता तब तक वह उसके पिछले भागपर चढ़ गया। उसने उसकी सूँड़रूपी डालपर चोट की। फिर बुदबुद कहकर उसके कन्धेपर आघात किया। और फिर सूँड़का आलिङ्गनकर गर्दनिया दी। वह उसे लाँघ कर वैसा ही निकल गया जैसे कि पति अपनी पत्नी को। एक क्षणमे वह उसके गण्डस्थलपर जा बैठता, तो दूसरे क्षणमे कन्धेपर, और फिर एक क्षणमे उसके

घत्ता

दीसइ णासइ विप्फुरइ परिभमइ चउदिसु कुञ्जरहों।
चलु लक्खिज्जइ गयण-यलें ण विज्जु-पुञ्जु णव-जलहरहों ॥९॥

[७]

हत्थि-वियारणाउ एयारह । अण्णउ किरियउ वीस दु-वारह ॥१॥
दरिसेंवि किउ णिप्फन्दु महा-गउ । थक्कु वेस-मरट्टु व भग्गउ ॥२॥
साहिउ मोक्खु व परम-जिणिन्दे । 'होउ होउ' ण रडिउ गइन्दें ॥३॥
'भलें भलें' पभणिउ चलणु समप्पिउ । तेण वि वामङ्गुट्ठें चप्पिउ ॥४॥
कण्णें धरेंवि आरूढु महाइउ । करें वि वियारण अङ्कुसु लाइउ ॥५॥
तेण विमाण-जाण-आणन्दें । मेल्लिउ कुसुम-वासु सुर-विन्दें ॥६॥
णच्चिउ कुम्भयण्णु स-विहीसणु । हत्थु पहत्थु वि मउ सुयसारणु ॥७॥
मल्लवन्तु मारिच्चु महोयरु । रहणासउ सुमालि वज्जोयरु ॥८॥

घत्ता

हरिस-रसेण करम्बियउ वीर-रसु जेण मणें भावियउ ।
तहिं रावण-णट्टावऍण सो णाहिं जो ण णच्चावियउ ॥९॥

[८]

तिजगविहूसणु णामु पगासिउ । णिउ तहिं सिमिरु जेत्थु आवासिउ ॥१॥
थिउ सहसा करि-कह-अणुराइउ । तहिं अवसरें भडु एक्कु पराइउ ॥२॥
पहर-विहुरु रुहिरोल्लिय-गत्तउ । णरवइ तेण णवेंवि विण्णत्तउ ॥३॥
'देव देव किक्किन्धहों तणऍहिं । सव्वल-फलिह - सूल-हल-कणऍहिं ॥४॥
असिवर-झस - मुसण्ढि-णराऍहिं । चक्क-कोन्त-गय - मोग्गर - घाऍहिं ॥५॥
जमु आरोडिउ भग्गा तेण वि । धरेंवि ण सक्किउ विहि एक्कण वि ॥६॥
पच्चेल्लिउ णिल्लूरिय वाणेंहिं । कह वि कह वि णउ मेल्लिउ पाणेंहिं' ॥७॥
तं णिसुणेवि कुइउ रवखद्धउ । हयउ सगाम भेरि सण्णद्धउ ॥८॥

चारों पैरके बीचमें आ जाता। इसप्रकार उस गजके चारों ओर दिखता छिपता चमकता और घूमता हुआ वह ऐसा जान पड़ रहा था मानो आकाशमें नूतन मेघोंके आसपास विद्युत्समूह हो।१-६।

[७] हाथीको वशमें करनेकी ग्यारह तथा अन्य चालीस क्रियाओंका प्रदर्शनकर, उसने उस महागजको निश्चेष्ट बना दिया। मानो किसी धूर्तने वेश्याका घमण्ड चूर-चूर कर दिया हो, या परम जिनेन्द्रने मानो मोक्ष साध लिया हो। तब वह हाथी 'होऊ होऊ' चिल्लाया। और भी उसने 'भल-भल' कहकर अपना पैर अर्पित किया। रावणने उसे बायें पैरके अँगूठेसे दबा दिया और कान पकड़कर वह उस महागजपर बैठ गया। प्रतारणके लिए उसने हाथमें अंकुश ले लिया। यह देखकर विमान तथा यानोंपरसे देवों ने पुष्प-वर्षा की। विभीषण, कुम्भकर्ण दोनों नाच उठे। हस्त, प्रहस्त, मय, शुक सारण, मन्त्री माल्यवंत, मारीच, महोदर, रत्ना-श्रव, सुमालि तथा वज्रोदर भी आनंदमें नाचे। वीररसको मनसे चाहनेवाला हर्षसे भरा एक भी व्यक्ति वहाँ ऐसा नहीं था जो रावणके इस अभिनयको देखकर नाच न उठा हो ॥१-६॥

[८] उसने उसका नाम 'त्रिजगभूषण' रखा, और वह उसे अपने शिविरमें ले गया। इतनेमें सहसा वहाँ गजकथाका अनु-रागी एक भट आया। प्रहारसे विधुर, उसकी देह रक्त रञ्जित हो रही थी। प्रणाम करके उसने निवेदन किया, "देव देव, किष्किंधके पुत्रने यमपर आक्रमण किया है। सब्बल, परिघि, शूल, हल, बाण, बढ़िया तलवार, झसु, भुसुंढि, नाराच, चक्र, भाला, गदा और मुद्गरोंके आघातसे जब-जब वह उससे भिड़ा तो उसने भी उसे भग्न कर दिया। जब वह एक दूसरेको पकड़ न सके तो यमने उसे तीरोंसे नष्ट कर दिया, किसीप्रकार केवल उसके प्राण नहीं

घत्ता

चन्दहासु करयलें करेंवि स-विसाणु स-वल्लु संचल्लियउ।
महि लङ्घेप्पिणु मयरहरु आयासहों णं उत्थल्लियउ ॥८॥

[६]

कोव-दवग्गि-पलित्तु पधाइउ। णिविसें तं जम-णयरु पराइउ ॥१॥
पेक्खइ सत्त णरय अइ-रउरव। उट्ठिय - वारवार - हाहारव ॥२॥
पेक्खइ णइ वइतरणि वहन्ती। रस-वस-सोणिय-सलिलु वहन्ती ॥३॥
पेक्खइ गय-पय-पेल्लिजन्तइँ। सुहड-सिरइँ टसत्ति भिज्जन्तइँ ॥४॥
पेक्खइ णर-मिहुणइँ कन्दन्तइँ। सम्वलि-रुक्ख धराविज्जन्तइँ ॥५॥
पेक्खइ अण्ण-जीव छिज्जन्तइँ। छुणछुण-सद्दे पउलिज्जन्तइँ ॥६॥
कुम्भीपाकें के वि पचन्ता। एव विविह-दुक्खइँ पावन्ता ॥७॥
सयल वि मम्भीसेंवि मेल्लाविय। जमउरि-रक्खवाल घल्लाविय ॥८॥

घत्ता

कहिउ कियन्तहों किङ्करेंहिँ 'वइतरणि भग्ग णासिय णरय।
विद्धंसिउ असिपत्त-वणु छोडाविय णरवर-वन्दि-सय ॥९॥

[१०]

अच्छइ एउ देव पारक्कउ। मत्त-गइन्द-विन्दु ण थक्कउ' ॥१॥
तं णिसुणेवि कुविउ जमराणउ। 'केण जियन्तु चत्तु अप्पाणउ ॥२॥
कासु कियन्त-मित्तु सणि रुट्ठउ। कासु कालु आसण्णु परिट्ठिउ ॥३॥
जें णर-वन्दि-विन्दु छोडाविउ। असिपत्त-वणु अण्णु मोडाविउ ॥४॥
सत्त वि णरय जेण विद्धंसिय। जें वइतरणि वहति विणासिय ॥५॥
तहों दरिसावमि अज्जु जमत्तणु'। एम भणेंवि णीसरिउ स-साहणु ॥६॥
महिसासणु दण्डग्गय-पहरणु। कसण-देहु गुन्जाहल-लोयणु ॥७॥

निकले। यह सुनते ही रावणने रणभेरी बजवा दी। चन्द्रहास अपने हाथमें लेकर, उसने विमान और सेनाके साथ कूच किया। (ससैन्य) वह ऐसा लग रहा था मानो समुद्र ही धरती लाँघकर आकाशमें उछल पड़ा हो ॥१-९॥

[९] क्रोधाग्निसे प्रदीप्त उसने यमनगरमें प्रवेश करते ही वहाँ भयङ्कर सात समुद्र देखे। वहां बार-बार महाशब्द हो रहा था। वैतरणी नदी बह रही थी। वह नदी रस मज्जा और रक्तरूपी जलसे लबालब भरी थी। उसने गजोंसे ठेले गये योद्धाओंके टूटे-फूटे सिर देखे। शाल्मलि वृक्षके पत्र सिरपर रखे हुए मनुष्यके जोड़े क्रंदन कर रहे हैं। छनछन करते हुए जलते और छीजते हुए कितने जीव देखे। कुम्भीपाक नरकमें पड़े हुए अगणित जन विविध दुःख पा रहे थे। रावणने उन सबको अभय दान देकर, उन्हें मुक्त कर दिया। यमके अनुचरोंको उसने धक्का मारकर भगा दिया। तब अनुचरोंने जाकर यमको खबर दी—"हे देव, वैतरणी नष्ट हो गई है और सातों नरक भी। असिपत्र-वन भी ध्वस्त प्राय है, कितने ही बंदी मुक्त कर दिये गये हैं ॥१-९॥

[१०] हे देव, यह शत्रु मदोन्मत्त गजसमूहके समान है। यह सुनकर यमराज क्रोध से उबल पड़ा। उसने कहा—"यह कौन है जो जीवित ही मरना चाहता है। कृतांत-मित्र शनि किसपर रूठ गया है। किसका समय निकट आ गया है, जिसने बंदी मनुष्योंके समूहको मुक्त किया है ? असिपत्र वनका जिसने संहार किया है, सातों नरकोंका जिसने ध्वंस किया है, बहती हुई वैतरणी जिसने ध्वस्त की है, उसे मैं आज अपना यमपन अवश्य दिखाऊँगा।" यह कहकर वह सेना सहित निकल पड़ा। महिषपर आरूढ़, दंडाग्र अस्त्र लिये, आरक्तनेत्र वह कृष्णशरीर हो रहा था। उसकी

केत्तिउ भीसणत्तु वण्णिज्जइ । मिच्चु वुत्तु पुणु कहोँ उवमिज्जइ ॥८॥

घत्ता

जमु जम-सासणु जम-करणु जम-उरि जम-दण्डु समोत्थरइ ।
एक्कु जि तिहुअणेँ पलय-करु पुणु पञ्च वि रणमुहेँ को धरइ ॥९॥

[११]

जं जम-करणु दिट्ठु भय-भीसणु । धाइउ तं असहन्तु विहीसणु ॥१॥
णवर दसाणणेण ओसारिउ । अप्पुणु पुणु कियन्तु हक्कारिउ ॥२॥
'अरेँ माणव वलु वलु विण्णासहि । मुहियएँ जं जमु णामु पयासहि ॥३॥
इन्दहोँ पाव तुज्झु णिक्करुणहोँ । ससिहेँ पयङ्गहोँ धणयहोँ वरुणहोँ ॥४॥
सव्वहँ कुल-कियन्तु हउँ आइउ । थाहि थाहि कहिँ जाहि अघाइउ' ॥५॥
तं णिसुणेविणु वइरि-खयंकरु । जमेँण मुक्कु रणेँ दण्डु भयकरु ॥६॥
धाइउ धगधगन्तु आयासेँ । एन्तु खुरुप्पेँ छिण्णु दसासेँ ॥७॥
सय-सय-खण्डु करेप्पिणु पाडिउ । खाइँ कियन्त-मडप्फरु साडिउ ॥८॥

घत्ता

धणुहरु लेवि तुरन्तएँण सर-जालु विसज्जिउ भासुरउ ।
तं पि णिवारिउ रावणेँण जामाएँ जिस खलु सासुरउ ॥९॥

[१२]

पुणु वि पुणु वि विणिवारिय-धणयहोँ । विद्धन्तहोँ रयणासव-तणयहोँ ॥१॥
दिट्ठि-मुट्ठि-संधाणु ण णावइ । णवर सिलीमुह-धोरणि धावइ ॥२॥
जाणेँ जाणेँ हएँ हएँ गय-गयवरेँ । छत्तेँ छत्तेँ धएँ धएँ रहेँ रहवरेँ ॥३॥
भडेँ भडेँ मउडेँ मउडेँ करेँ करयलेँ । चलणेँ चलणेँ सिरेँ सिरेँ उरेँ उरयलेँ ॥

भीषणताका कितना वर्णन किया जाय ! बताओ, फिर मृत्युकी उपमा किससे दी जा सकती है ॥१-८॥

यम, यमशासन, यमकरण, यमपुर और यमदंड उछलने लगे ! इनमेसे एक ही त्रिभुवनका प्रलय करनेमे समर्थ है, फिर युद्धमें इन पाँचोको कौन झेल सकता है ॥६॥

[११] जब भयभीषण यमकरण दिखाई दिया तो उसे सहन न करता हुआ विभीषण दौड़ा। तब उसे हटाते हुए, रावणने स्वयं कृतान्तको ललकारा—"अरे-अरे मानव, लौट जाओ, क्यो अपना विनाश करते हो, बार बार जो तुमने यमका नाम प्रकट किया। हे पाप, निष्करुण, तेरा, इन्द्र, शशि, अग्नि, धनद और वरुण, इन सबका मैं कुल कृतान्त हूँ। ठहर-ठहर, पापात्मा कहाँ जाता है।" यह सुनकर यमने शत्रु-संहारक और भयंकर अपना दण्ड उसे मारा। वह धड़धड़ाता हुआ आकाशमे दौड़ा। आते हुए उसको रावणने खुरपेसे काट दिया, और उसके सौ-सौ टुकड़े करके ऐसे गिरा दिया, मानो यमका मान ही नष्ट करके गिरा दिया हो ॥१-८॥

तब यमने शीघ्र ही धनुष लेकर, चमकीले सरोंका जाल छोड़ा। उसका भी रावणने वैसे ही निवारण कर दिया जैसे दामाद दुष्ट ससुरालका त्याग कर देता है ॥६॥

[१२] धनदको हटानेवाले रत्नाश्रवके पुत्र रावणका सैन्य-भेदन करते समय, दृष्टि और मुट्ठीका संधान नहीं जान पड़ता था। केवल तीरोंकी पाँत दौड़ रही थी। यानसे यान, घोड़ेसे घोड़े, गजसे गज, छत्रसे छत्र, ध्वजासे ध्वजा, रथसे रथ, भटसे भट, मुकुटसे मुकुट, करसे करतल, चरणसे चरण, सिरसे सिरतल, उरसे उर टकराने लगे। बाणोंकी मारसे सेना उद्विग्न

भरिय वाण कहुआविय-साहणु । णट्ठु जमो वि विहुरु णिप्पहरणु ॥५॥
सरहहों हरिणु जेम उद्धाइउ । णिविसें दाहिण-सेढि पराइउ ॥६॥
तहिँ रहणेउर-पुरवर-सारहों । इन्दहों कहिउ अण्णु सहसारहों ॥७॥
'सुरवइ लइ अप्पणउ पहुत्तणु । अण्णहों कहों वि समप्पि जमत्तणु ॥८॥

घत्ता

मालि-सुमालिहिँ पोत्तएँहिँ दरिसाविउ कह वि ण मह्नु मरणु ।
लज्जएँ तुज्झु सुराहिवइ धणएण वि लइएउ तह-चरणु' ॥९॥

[१३]

तं णिसुणेंवि जम-वयणु असुन्दरु । किर णिग्गइ सण्णहेँवि पुरन्दरु ॥१॥
अग्गएँ ताम मन्ति थिउ भेसइ । 'जो पहु सो सयलाइँ गवेसइ ॥२॥
तुहुँ पुणु धावइ णाइँ अयाणउ । सो जें कमागउ लङ्कहेँ राणउ ॥३॥
तुम्हेंहिँ मालिहिँ कालें भुत्ती । मण्डु मण्डु जिह पर-कुलउत्ती ॥४॥
ताहेँ जें पढमु जुत्तु पहरेवउ । णउ उक्खन्धें पइँ जाएवउ ॥५॥
देहि ताम ओहामिय-छायहों । सुरसंगीय-णयरु जमरायहों ॥६॥
भुत्तु आसि जं मय-मारिच्चेंहिँ' । एम भणेवि णियत्तिउ भिच्चेंहिँ ॥७॥
दहमुहो वि जमउरि उच्छुरयहों' । किक्किन्धउरि देवि सूररयहों ॥८॥

घत्ता

गउ लङ्कहेँ सवडम्मुहउ णहेँ लग्गु विमाणु मणोहरउ ।
तोयदवाहण-वंस-दलु णं कालें वढ्ढिउ दीहरउ ॥९॥

[१४]

भीसण-मयरहरोवरि जन्तें । उद्धसिहामणि - छाया - भन्तें ॥१॥
परिपुच्छिउ सुमालि दिण्णुत्तरु । 'किं णहयलु' 'ण ण रयणायरु' ॥२॥
'किं तमु किं तमालतरु-पन्तिउ' । 'ण ण इन्दणील-मणि-कन्तिउ' ॥३॥
'किं एयाउ कीर-रिञ्छोलिउ' । 'ण ण मरगय-पवणालोलिउ' ॥४॥

हो उठी। हथियारों और रथके विना यम भी नष्टप्राय हो गया। हरिणकी तरह वेगसे उछलकर, पल भरमें यम दक्षिण श्रेणीमें जा पहुँचा। वहाँ उसने रथनूपुरके स्वामी इन्द्र और सहस्रार से कहा, "सूरपति! लो अपना यह प्रभुत्व, यमका पद किसी और को सौंप दीजिए। मालि-सुमालिके पौत्र रावणने केवल मुझे मृत्युके दर्शन नहीं कराये, हे सुरराज! आपकी लज्जासे धनदने तपश्चरण ले लिया है ॥१-६॥

[१३] यमके इन अशोभन शब्दोंको सुनकर इन्द्रने सन्नद्ध होकर कूच किया। तब उसका मंत्री बृहस्पति आगे जाकर बोला, "जो प्रभु होता है उसे सब बातका विचार करना चाहिए। तुम अज्ञानीकी तरह दौड़े जा रहे हो। वह लंकाका क्रमागत राजा है। मालिके मरनेपर तुमने भी परकुलपुत्री की तरह लंका नगरी का जीभर उपभोग किया। पहले तुम्हें उनपर प्रहार करना चाहिए। पर इस प्रकार हड़बड़ीमें जाना ठीक नहीं। इसलिए आप क्षीण-तेज यमराजको सुरसंगीत नगर कुछ समयके लिए दे दें जिसका कि मय और मारीचने उपभोग किया है।" यह कहकर उसने उसे रोक दिया। तब रावणने भी ऋक्षरवको यमपुरी और सूर्यरव को किष्किंधा नगरी देकर लंका नगरीके लिए प्रस्थान किया। उसका सुन्दर विमान आकाशसे ऐसा जा लगा मानो तोयद-वाहनका वंश ही लम्बी कालपरम्परामेंसे बँध गया हो ॥१-६॥

[१४] भीषण समुद्रके ऊपर से जाते हुए, ऊर्ध्व चूड़ामणिकी कान्तिसे भ्रांत रावणने सुमालिसे पूछा, और उसने उत्तर दिया—क्या यह समतल है? नहीं नहीं यह रत्नाकर है। क्या यह तम है, या तमालपत्तोंकी पंक्ति है? नहीं नही, यह इन्द्रनीलमणियोंकी कांति है। क्या यह तोतेकी कतार है? नहीं नहीं, पवन-प्रेरित

'कि महियलेँ पडियइँ रवि-किरणइँ'। 'णं ण सूरकन्ति-मणि रयणइँ' ॥५॥
'कि गय-घडउ गिल्ल-गिल्लोलउ'। 'ण णं जलणिहि-जल-कल्लोलउ' ॥६॥
'स व्ववसाय जाय किं महिहर'। 'ण ण परिभमन्ति जलेँ जलयर' ॥७॥
एम चवन्त पत्त लङ्काउरि। जा तिकूड-महिहर-सिहरोवरि ॥८॥
जणु णीसरिउ सव्वु परिओसें। जियवर-पणइ-तूर-णिग्घोसें ॥९॥
णन्द-वद्ध-जय-सद्द-पउत्तिहिँ। सेसा-अग्घपत्त-जल-जुत्तिहिँ ॥१०॥

घत्ता

लङ्काहिवइ पइट्ठु पुरेँ परिवद्ध पट्टु अहिसेउ किउ।
जिह सुरवइ सुरवर-पुरिहिँ तिह रज्जु स इ भु ञ्जन्तु थिउ ॥११॥

•

[१२. वारहमो सन्धि]

पभणइ दहवयणु दीहर-णयणु णिय-अत्थाणेँ णिविट्ठउ।
'कहहोँ कहहोँ णरहोँ विज्जाहरहोँ अज्ज वि कवणु अणिट्ठउ ॥१॥

[१]

तं णिसुणेँवि जम्पइ को वि णरु। सिर-सिहर-चडाविय-उभय-करु ॥१॥
'परमेसर दुज्जउ दुट्ठु खलु। चन्दोवरु णामें अतुल-बलु ॥२॥
सो इन्दहोँ तणिय केर करेँवि। पायाल-लङ्क थिउ पइसरेँवि' ॥३॥
अवरेक्कें दोच्छिउ णरवरेंण। 'कि सक्कें किं चन्दोयरेंण ॥४॥
सुव्वन्ति कुमार अण्ण पवल। उच्छुरयहोँ णन्दण णील-णल' ॥५॥
अण्णेक्कें वुच्चइ 'हउँ कहमि। दो-पासिउ जइ ण घाय लहमि ॥६॥
किक्किंधपुरिहिँ करि-पवर-भुउ। णामेण वालि सूररय-सुउ ॥७॥
जा पारिहच्छि मइँ दिट्ठु तहोँ। सा तिहुयणेँ णउ अण्णहोँ णरहोँ ॥८॥

मरकत मणि हैं। क्या ये महीतल पर सूरज की किरणें पड़ रही हैं ? नहीं नहीं, ये सूर्यकान्त मणिरत्न है। क्या यह अत्यन्त आर्द्र गजघटा है, नहीं नहीं ये जलनिधिकी तरंगे हैं। क्या ये महीधर हिल-डुल रहे हैं ? नहीं नही, पानीमे जल-जन्तु घूम रहे हैं। इस प्रकार वाते करते करते वे लंकापुरी पहुँच गये। जो लंका त्रिकूट-शिखर पर वसी हुई थी। ब्राह्मणो, भाट और तूर्य का शब्द सुन-कर सभी प्रसन्नतापूर्वक वाहर आ गये। रावणने तव "खुश रहो, वढ़ो, जय हो" आदि शब्दोंके वीच नगरमे प्रवेश किया। इसके अनन्तर राज्यपट्ट वाँधकर उसका अभिषेक हुआ। अव वह, स्वर्गमे इन्द्रकी तरह, अपने राज्यका भोग करने लगा ॥१-११॥

•

वारहवीं संधि

एक दिन अपने दरवारमें वैठे-वैठे विशालनयन रावणने पूछा—"वताओ, मनुष्य और विद्याधरोंमे अव कौन मेरा शत्रु है" ॥१॥

[१] यह सुनकर किसीने दोनो हाथ माथेसे लगाकर कहा—"हे परमेश्वर ! चन्द्रोदर नामका एक वहुत ही दुष्ट शत्रु है, वह अत्यन्त दुर्जेय है। वह इन्द्रकी आज्ञा मानता है और पाताल लंकामे रहता है।" इसपर दूसरे व्यक्तिने उसे झिड़कते हुए कहा—"इन्द्र और चन्द्रोदर क्या चीज हैं, इक्षुरव के पुत्र नल और नील, वहुत ही प्रवल सुने जाते हैं।" किसी एक ने कहा—"यदि पास में वैठे लोग मुझ पर आघात न करे, तो मैं कहना चाहता हूँ कि किष्कि-न्धापुर-नरेश सूर्यरव के पुत्र वालिमे मैंने जैसा वेग देखा, वैसा तीनो लोकोमें किसी भी व्यक्तिमे नहीं देखा। उसके वाहु हाथीके

घत्ता

रहु वाहँवि अरुणु हय हणँवि पुणु जा जोयणु विण पावइ।
ता मेरुहँ भमँवि जिणवरु णवँवि तहिँ जँ पडीवउ आवइ ॥९॥

[२]

तहोँ जं वलु त ण पुरन्दरहोँ। ण कुवेरहोँ वरुणहोँ ससहरहोँ ॥१॥
मेरु वि टालइ वद्धामरिसु। तहोँ अण्णु णराहिउ तिण सरिसु ॥२॥
कइलास-महीहरु कहि मि गउ। तहिँ सम्मउ णामें लइउ वउ ॥३॥
णिग्गन्थु मुएवि विसुद्ध-मइ। अण्णहोँ इन्दहोँ वि णाहिँ णमइ ॥४॥
तं तेहउ पेक्खेवि गीढ-भउ। पव्वज्ज लेवि गउ सूररउ ॥५॥
'महु होसइ केण वि कारणेँण। समरङ्गणु समउ दसाणणेँण ॥६॥
अवरेकें वुत्तु 'ण इमु घडइ। कइवंसिउ किं अम्हहुँ भिडइ ॥७॥
सिरिकण्ठहोँ लग्गँवि मित्तइय। अण्णु वि उवयार-सएहिँ लइय ॥८॥

घत्ता

अहवइ वाणर वि सुरवर-णर वि रत्तुप्पल-दल-णयणहोँ।
ता सयल वि सुहड जा समर-उब्भड णउ णिएन्ति दहवयणहोँ ॥९॥

[३]

तं वालि-सल्लु हियवएँ धरेँवि। तो रावणु अण्ण वोल्ल करेँवि ॥१॥
गउ एक्क दिवसेँ सुर-सुन्दरिहेँ। जा अवहरणेण तणूयरिहेँ ॥२॥
ता हरेँवि णीय कुल-भूसणेँहिँ। चन्दण हि ह(व?)रिय खर-दूसणेँहिँ ॥३॥
णासन्त णिएवि सहोयरेण। णयरेणालङ्कारोदएण ॥४॥
णं उवरेँ छुहेँवि रक्खिय-सरणु। किय (?) तेहि मि चन्दोवर-मरणु ॥५॥
विणिवाइउ अत्थाणेँ जेँ थिउ। जो ढुक्किउ सो तं वारु णिउ ॥६॥
कुढे लग्गउ जं रयणियर-वलु। रह - तुरय - णाय-णरवर-पवलु ॥७॥
अलहन्तु वारु तं णिप्पसरु। गउ वलेँवि पडीवउ णिय-णयरु ॥८॥

सूँड़के समान प्रचण्ड हैं। वह अपने अरुण रथको हाँककर, घोड़ों-को ताड़ितकर आँखोंके पलक झपनेके पहले ही, मेरुकी प्रदक्षिणा और जिनकी वंदना कर, अपने घर लौट आता है ॥१-६॥

[२] उसमे जितनी शक्ति है उतनी पुरन्दर, कुवेर, वरुण और शशधरमें से भी, किसीमे नहीं है। अमर्षमे आकर वह, सुमेर पर्वत को भी टाल सकता है, दूसरे नराधिप उसके आगे तिनकेके बराबर हैं। विशुद्धमति उसने किसी समय, कैलाश पर्वतपर जाकर, यह व्रत ले लिया है कि जिनको छोड़कर किसी और को नमन नहीं करूँगा। उसका पिता सूर्यरव, इस आशंकासे कि मेरा किसी भी बातपर रावणसे युद्ध न हो जाय, दीक्षा लेकर तप करने चला गया।" तब किसी एकने कहा—"यह बात ठीक नहीं, क्या वानरवंश हमसे लड़ेगा? श्रीकण्ठके समयसे तथा अन्य और उपकारों के कारण उनसे (वानरोंसे) हमारी मित्रता है अथवा चाहे वे नभचर हों या सुरश्रेष्ठ? रक्तकमलकी तरह नेत्रवाले रावण की समरझड़ीमें कोई भी योद्धा सम्मुख नहीं आयेगा" ॥१-६॥

[३] इतने मे बालिकी शल्य मनमे रखकर रावणने बातका प्रसंग बदल दिया। एक दिन वह तनूदरा नामकी सुरबालाका अपहरण करनेके लिए गया। उसकी अनुपस्थितिमे कुलभूषण, खर और दूषण रावणकी बहन चन्द्रनखाको हरकर ले गये। अपने भाई सूर्यरवका मरण देखकर, राक्षसशरणसे पाताल-लंकाका उद्धार चन्द्रो-दयने किया था। इन्होंने चन्द्रोदरको भी मार गिराया जो जिस स्थान पर था उसे वहीं गिरा दिया। जो भी उसके पास पहुँचा वही मारा गया। रथ, अश्व, गज और नर-वीरोंसे प्रबल राक्षस-सेना उसका पीछा कर रही थी परन्तु द्वार न मिलनेसे वह प्रवेश नहीं कर सकी और अपने नगर वापस आ गई ॥१-८॥

घत्ता

छुडु छुडु दहवयणु परितुट्ठ-मणु किर स-कलत्तउ आवइ ।
उम्मण-दुम्मणउ असुहावणउ णिय-घरु ताम विहावइ ॥९॥

[४]

तुरमाणे केण वि वज्जरिउ । खर - दूसण - कण्णा - दुच्चरिउ ॥१॥
अत्थक्कऍ आयम्बिर-णयणु । कुढें लग्गइ स-रहसु दहवयणु ॥२॥
करें धरिउ ताम मन्दोवरिऍ । णं गङ्गा-वाहु जउण-सरिऍ ॥३॥
'परमेसर कहों वि ण अप्पणिय । जिह कण्ण तेम पर-भायणिय ॥४॥
एक्क इ करवाल-भयङ्करहुँ । चउदह सहास विज्जाहरहुँ ॥५॥
जइ आण-वडीवा होन्ति पुणु । तो घरें अच्छन्तिऍ कवणु गुणु ॥६॥
पट्ठवहि महन्ता मुऍवि रणु । कण्णहें करन्तु पाणिग्गहणु' ॥७॥
तं वयणु सुणेंवि मारिच्च-मय । पेसिय दहवत्तें तुरिअ गय ॥८॥

घत्ता

तेहिं विवाहु किउ खरु रज्जें थिउ अणुराहहें विज्ज-सहिउ ।
वणें णिवसन्तियहें वय-वन्तियहें सुउ उप्पण्णु विराहिउ ॥९॥

[५]

एत्थन्तरें जम-जूरावणेंण । तं सल्लु धरेप्पिणु रावणेंण ॥१॥
पट्ठविउ महामइ दूउ तहिं । सुग्गीव-सहोयरु वालि जहिं ॥२॥
वोल्लाविउ थाऍवि अहिमुहेंण । 'हउँ एम विसज्जिउ दहमुहेंण ॥३॥
एक्कूणवीस - रज्जन्तरइँ । मित्तइयऍ गयइँ णिरन्तरइँ ॥४॥
कों वि कित्तिधवलु णामेण चिरु । सिरिकण्ठ-कज्जें थिउ देवि सिरु ॥५॥
णवमउ परिणाविउ अमरपहु । जें धएँ हिं लिहाविउ कइ-णिवहु ॥६॥
दहमउ कइ-केयणु सिरि-सहिउ । एयारहमउ पडिवलु कहिउ ॥७॥
वारहमउ णयणाणन्दयरु । तेरहमउ खयराणन्दु वरु ॥८॥

अपनी नई पत्नीको लेकर, संतुष्ट मन जब रावण लौटकर आया तो उसे अपना घर एकदम उदास और अशोभन दीख पड़ा ॥९॥

[४] इतनेमे ही किसीने आकर उसे बताया कि खर और दूषण चन्द्रनखाको हर ले गये हैं। यह सुनते ही उसकी आँखे लाल हो गईं और तुरन्त वह उनका पीछा करने चल पड़ा। किन्तु उसकी पत्नी मन्दोदरीने उसे इस तरह रोक दिया मानो यमुनाने गंगाके प्रवाहको रोक दिया हो। "परमेश्वर! सोचो जैसी अपनी बहन वैसी ही पराई कन्या नहीं होती? फिर आप अकेले हैं, और वे खड्गधारी चौदह हजार भयंकर विद्याधर हैं। यदि वे आपकी आज्ञा मान भी ले तो भी लड़कीको घरमें रखनेसे क्या लाभ! इसलिए युद्धसे विरत हो, मंत्रियोको भेजकर उसका विवाह कर दे।" यह सुनकर उसने यम और मारीचको वहाँ भेजा। वे तुरन्त चल पड़े। खरने चन्द्रनखासे विवाह कर लिया। खर राज्य गद्दी पर बैठा। अनुराधा व्रतोंका अनुष्ठान करती हुई वनमें रहने लगी। वहीं उसके विराधित नामका पुत्र उत्पन्न हुआ ॥१-९

[५] इसके बाद भी, यमको संताप पहुँचाने वाले रावणके मनमें बालिका खटका बना था। उसने महामति दूतको, सुग्रीवके भाई बालिके पास भेजा। वह सम्मुख जाकर बालिसे बोला—"मुझे यह कहनेके लिए रावणने भेजा है कि हम लोग राजोकी १९ पीढ़ियोसे निरन्तर मित्रताके सूत्रमे बँधे चले आ रहे हैं। बहुत पहले कोई कीर्तिधवल नामका राजा हुआ है जो श्रीकण्ठके लिए अपना सिर तक देने के तत्पर हो गया था। नवमी पीढ़ीमे राजा अमरप्रभु हुआ उसने पताकाओपर वानरसमूहके चिह्न अंकित करवाये। दसवां राजा श्रीसपन्न कपिकेतन हुआ। ग्यारहवां

चउदहमउ गिरि-किंवेरवलु (?) । पण्णारहमउ णन्दणु अजउ ॥६॥
सोलहमउ पुणु कों वि उवहिरउ । तडिकेस-विगमे किउ तेण तउ ॥१०॥
सत्तारहमउ किक्किन्धु पुणु । तहों कवणु सुकेसें ण किउ गुणु ॥११॥
अट्ठारहमउ पुणु सूररउ । जसु भन्जें वि तहों पइसारु कउ ॥१२॥
तुहुँ एवहिँ एक्कुणवीसमउ । अणुहुन्जें रज्जु भणे मुएवि मउ ॥१३॥

घत्ता

आउ णिहालें मुहु तं णमहि तहुँ गम्पि दसाणण-राणउ ।
जेण देइ पवलु चउरङ्ग-वलु इन्दहों उवरि पयाणउ' ॥१४॥

[६]

ज किउ जयकारु णाम-गहणु । तं णवर वलें वि थिउ अण्ण-मणु ॥१॥
ण करेइ कण्णें वयणाइँ पहु । जिह पर-पुरिसहों सु-कुलीण-वहु ॥२॥
एत्थन्तरें दहमुह - दूअएँण । अच्चन्त - विलक्खीहूअएँण ॥३॥
णिब्भच्छिउ मेल्लेंवि सयण-किय । 'जो को वि णमेसइ तासु सिय ॥४॥
णीसरु तुहुँ आयहों पट्टणहों । णं तो भिडु परएँ दसाणणहों' ॥५॥
तं णिसुणेंवि कोव-करम्विएँण । पडिदोच्छिउ सीहविलम्विएँण ॥६॥
'अरें वालि देउ किं पइँ ण सुउ । महु महिहरु जेण भुअहिँ विहुउ ॥७॥
जो णिविसद्धेण पिहिवि कमइ । चत्तारि वि सायर परिभमइ ॥८॥

घत्ता

जासु महाजसेंण रणें अणवसेंण धवलीहूअउ तिहुवणु ।
तासु वियट्टाहों अब्भिट्टाहों कवणु गहणु किर रावणु' ॥९॥

[७]

सो दूउ कडुय-वयणासि-हउ । सामरिसु दसासहों पासु गउ ॥१॥
'किं वहुएँ एत्तिउ कहिउ मइँ । तिण-समउ विण गणइ वालि पइँ' ॥२॥

राजा प्रतिबल हुआ। बारहवां नयनानंदकर, तेरहवां खेचरानंद, चौदहवां गिरिकिंकिरबल, पन्द्रहवां अजयनंदन और सोलहवा उद्-धिरथ, जो तडित्केशके वियोगमें तप करने चला गया था। सत्रहवां राजा किष्किंध हुआ। बताओ उसके पुत्र सुकेशने कौन सी भलाई नहीं की। अठारहवां राजा सूर्यरव हुआ, उसने यमको भग्नकर वहां प्रवेश किया। अब इस समय उन्नीसवें तुम हो, इसलिए अहं-कार छोड़कर अपने राज्यका भोग करो। आओ, चलकर रावणसे भेंट करो (उसका मुख देखो) और उसे प्रणाम करो जिससे अपने प्रबल चतुरंगबलको लेकर वह इन्द्रपर अभियान कर सके ॥१–१४॥

[६] दूतने जयकारके साथ जो रावणका नाम लिया उससे वालि केवल पराङ्मुख होकर रह गया। उसने उसके शब्दोंपर वैसे ही ध्यान नहीं दिया जैसे कुलवधू परपुरुषके शब्दों पर ध्यान नहीं देती। इसी बीचमें, रावणका दूत अत्यन्त विद्रूप हो उठा। शिष्टताको ताकमें रखकर वह बोला, "जिस किसीको उसकी श्री माननी होगी, तुम इस नगरसे निकल जाओ, नहीं तो सवेरे रावणसे लड़ो।" यह सुनकर वालिका मंत्री सिंहविलम्बित क्रुद्ध हो उठा। उसने दूतको डाटते हुए कहा—"अरे क्या तुमने उस वालिदेवका नाम नहीं सुना, जिसने मधु और महीधरको धरतीमें मिला दिया। जो आधे ही पलमें धरतीको कँपा सकता है और चारों समुद्रोंको घुमा सकता है। युद्धमें जिसके महायशसे तीनों लोक धवलित हो गये, उस विलक्षण वालिके आगे रावण क्या चीज है" ॥१–६॥

[७] तब दूत, इन कटुवचनोंसे आहत होकर अमर्पसे भरा रावणके पास गया। वह बोला, "बहुत कहनेसे क्या, हे देव, वालिके मंत्रीने यह कहा है कि वह तुम्हें तिनके के बराबर

त वयणु सुणेप्पिणु दससिरेँण । वुच्चइ रयणायर - रव - गिरेँण ॥३॥
'जइ रण-मुहेँ माणु ण मलमि तहोँ । तो छिवमि पाय रयणासवहोँ' ॥४॥
आरुहेँवि पइज्ज पयट्टु पहु । ण कहोँ वि विरुद्धउ कूर-गहु ॥५॥
थिउ पुप्फविमाणेँ मणोहरएँ । णं सिद्धु सिवालएँ सुन्दरएँ ॥६॥
करेँ णिम्मलु चन्दहासु धरिउ । ण घण-णिसण्णु तडि-विप्फुरिउ ॥७॥
णीसरिएँ पुर-परमेसरेण । णीसरिय वीर णिमिसन्तरेण ॥८॥

घत्ता

'अम्हहुँ पय-भरेँण णिरु णिट्ठुरेँण म मरउ धरणि वराइय' ।
एत्तिय-कारणेँण गयणङ्गणेँण णावइ सुहड पराइय ॥९॥

[८]

एत्तहेँ वि समर-दुज्जोहणिहिँ । चउदहहिँ णरिन्द-अखोहणिहिँ ॥१॥
सण्णहेँवि वालि णीसरिउ किह । मज्जाय-विवज्जिउ जलहि जिह ॥२॥
पणवेप्पिणु विण्णि वि अतुल-वल । थिय अग्गिम-खन्धेँहिँ णील-णल ॥३॥
विरइउ णारायणु रणेँ अचलु । पहिलउ जेँ णिविड्डु पायाल-वलु ॥४॥
पुणु पच्छएँ हिलिहिलन्त स-भय । खर-खुरेँहिँ खणन्त खोणि तुरय ॥५॥
पुणु सइल-सिहर-सण्णिह सयड । पुणु मय-विहलङ्घल हत्थि-हड ॥६॥
पुणु णरवइ वर-करवाल-धर । आसण्ण ढुक्क तो रयणियर ॥७॥
किर समरेँ भिडन्ति भिडन्ति णइ । थिय अन्तरेँ मन्ति सु-विउल-मइ ॥८॥

घत्ता

'वालि-दसाणणहोँ जुज्झण-मणहोँ एउ काइँ ण गवेसहोँ ।
किएँ खएँ वन्धवहुँ पुणु केण सहुँ पच्छएँ रज्जु करेसहोँ ॥९॥

भी नहीं समझता।" ये शब्द सुनकर रावणने समुद्रकी तरह गरजते हुए कहा, "मैं रणके सम्मुख अवश्य ही उसके मानका दमन न करूँ, तो अपने पिता रत्नाश्रवके पैर छूने से रहा।" प्रतिज्ञा करके वह चल पड़ा। (वह ऐसा लगता) मानो कोई दुष्ट ग्रह ही कुपित हो उठा हो। सुन्दर पुष्पक विमानमे वह वैसे ही जा बैठा जैसे सुंदर शिवालयमे सिद्ध जा बैठे हों? उसके हाथमे चन्द्रहास तलवार ऐसी चमक रही थी मानो मेघरहित बिजली ही हो। नगर-परमेश्वर रावणके निकलते ही पलभरमे सभी योधा निकल पड़े॥ १-८॥

वे सब योधा आकाश मार्गसे गये, शायद इस विचारसे कि कहीं हमारे पदभारसे धरती ध्वस्त न हो जाय॥ ९॥

[८] यहाँ भी समर मे दुर्जेय बालि, चौदह नरेन्द्र और अक्षौहिणी सेनाओंके साथ संनद्ध होकर मर्यादाहीन, समुद्रकी भाँति निकल पड़ा। अतुलबली, नल और नील भी, प्रणाम करके अग्रिम सेनामें जा मिले। बालिने अटल युद्ध रचना की। पहले पैदल सेना रक्खी, उसके पीछे सभय हींसते हुए और खुरोंसे धरती खोदते हुए अश्व थे। उसके बाद शैल-शिखरकी तरह विशाल रथ, और तब मदविह्वल गज-सेना थी। फिर, हाथमे तलवार लेकर राजा, निशाचर रावणके पास पहुँचा। युद्धमे वे दोनो भिड़ने ही वाले थे कि विपुलमति नामके मंत्रीने बीचमे पड़कर कहा, "युद्धोत्सुक आप दोनों (बालि और रावण) को यह सोचना चाहिए कि स्वजनोंके क्षय हो जानेपर राज्य किस पर होगा॥ १-९॥

[६]

जो कित्तिधवल-सिरिकण्ठ-किउ । किक्किन्ध-सुकेसहिँ विद्धि णिउ ॥१॥
त खयहो णेहु मा णेह-तरु । जइ धरँ वि ण सक्कहों रोस-भरु ॥२॥
तो वे वि परोप्परु उत्थरहों । जो को वि जिणइ जयकारु तहों ॥३॥
तं णिसुणेँ वि वालि-देउ चवइ । 'सुन्दरु भणन्ति लङ्काहिवइ ॥४॥
खउ तुज्झु व मज्झु व णिव्वडउ । जिम धुव जिम मन्दोवरि रडउ ॥५॥
किं वहवँहिँ जीवेँहिँ घाइएँहिँ । वन्धव-सयणेँहिँ विणिवाइएँहिँ ॥६॥
लइ पहरु पहरु जइ अत्थि छलु । पेक्खहुँ तुह विज्जहुँ तणउ वलु' ॥७॥
तं णिसुणेवि समर-सएहिँ थिरु । वावरेँ वि लग्गु वीसद्ध-सिरु ॥८॥
आमेल्लिय विज्ज महोयरिय (?) । फणि-फण-फुक्कार दिन्ति गइय ॥९॥

घत्ता

वालि भीसणिय अहि-णासणिय गारुड-विज्ज विसज्जिय ।
उत्त-पडुत्तियएँ कुल-उत्तियएँ ण पुण्णालि परज्जिय ॥१०॥

[१०]

दहवयणें गरुड-परायणिय । पम्मुक्क विज्ज णारायणिय ॥१॥
गय - सङ्ख - चक्क - सारङ्ग-धरि । चउ-भुअ गरुडासण-गमण-करि ॥२॥
सूररय-सुएण वि संभरिय । णामेण विज्ज माहेसरिय ॥३॥
कङ्काल-कराल तिसूल-करि । ससि - गउरि - गङ्ग - खट्टङ्ग-धरि ॥४॥
किर अवसर विसज्जइ दहवयणु । सय-वारउ परिअञ्चेवि रणु ॥५॥
स-विमाणु स-खग्गु महावलेँण । उच्चाइउ दाहिण-करयलेँण ॥६॥
णं कुञ्जर-करेँण कवलु पवरु । ण वाहुवलीसें चक्कहरु ॥७॥
णहेँ दुन्दुहि ताडिय सुरयणेँण । किउ कलयलु कइधय-साहणेँण ॥८॥

[९] प्रेमके जिस महावृक्षको कीर्तिधवल और श्रीकण्ठने आरोपित किया, जिसे किष्किन्ध और सुकेशने आगे बढ़ाया, उसे नष्ट न करो। यदि अपने आवेशके भारको शान्त करनेमें आप असमर्थ हैं तो आपसमे द्वन्द्-युद्ध कर ले। दोनोंमे जो जीत जाय, उसकी जय हो।" यह सुनकर वालि बोला, "लंकानरेश, यह सुन्दर कह रहे हैं। युद्धमें चाहे तुम्हारा विनाश हो या मेरा, उसमे जैसे ध्रुवा (वालिकी पत्नी) विधवा होगी, वैसे ही मन्दोदरी। अत वहुतसे जीवोके संहार और अपने ही वन्धुओकी हत्यासे क्या। लो प्रहार करो, यदि बल हो तो मै भी देखूँ कि तुम्हारा कितना वल है।" यह सुनते ही सैकड़ो युद्धोमे अविचल रावणने उसपर आक्रमण कर दिया। उसने सर्पिणी विद्या छोड़ी। वह सॉपोंके फनोसे फुफकारती हुई आई, तव वालिने सर्प विद्याकी नाशक, और अत्यन्त भयानक गरुड़-विद्याका प्रयोग किया। उससे वह वैसे ही पराजित हो गई जैसे कुलपुत्रीकी उक्तियो-प्रति उक्तियोसे पुंश्चली पराजित हो जाती है॥ १-१०॥

[१०] तव रावणने गरुड़-विद्याको पराजित करनेवाली नारायणी विद्या छोड़ी, वह गदा, शंख, चक्र, सारंग और चार हाथ धारण कर गरुड़ासन पर जाने लगी। इस पर सूर्यरवके पुत्र वालिने माहेश्वरी विद्याका प्रयोग किया। कराल कंकाल वह, हाथमे त्रिशूल, सिर पर सॉप, चन्द्रमा और गगा धारण किये हुई दौड़ी। उसके ऊपर रावण और क्या छोड़ता? महावली वालिने रथसहित उसे पकड़कर और युद्धमें सौ वार घुमाकर हथेली पर ऐसे उठा लिया मानो हाथीकी सूँड़ने अपनी कौर उठा लिया हो, या वाहुवलिने भरत को उठा लिया हो। इसपर देवोने दुंदुभि

घत्ता

माणु मलेवि तहों लङ्काहिवहों वद्धु पट्टु सुग्गीवहों।
'करि जयकारु तुहुँ अणुभुञ्जें सुहु भिच्चु होहि दहगीवहों'॥९॥

[११]

महु तणउ सीसु पुणु दुण्णमउ। जिह मोक्ख-सिहरु सव्वुत्तमउ ॥१॥
पणवेप्पिणु तिल्लोक्काहिवइ। सामण्णहों अण्णहों णउ णवइ ॥२॥
महु तणिय पिहिवि तुहुँ भुञ्जि पहु। रिज्झउ कइ-जाउहाण-णिवहु ॥३॥
अण्णु मि जो पइँ उवयारु किउ। तालहों कारणें जमराउ जिउ ॥४॥
तहों मइँ किय पडिउवयार-किय। आवग्गी भुञ्जहि राय-सिय' ॥५॥
गउ एम भणेप्पिणु तुरिउ तहिँ। गुरु गयणचन्दु णामेण जहिँ ॥६॥
तवचरणु लइउ तग्गय-मणेंण। उप्पण्णउ रिद्धिउ तक्खणेंण ॥७॥
अणुदिणु जिणन्तु इन्दिय-वइरि। गउ तित्थु जेत्थु कइलास-गिरि ॥८॥

घत्ता

उप्परि चडिउ तहों अट्ठावयहों पञ्च-महावय-धारउ।
अत्तावण-सिलहें सासय-इलहें ण थिउ वालि भडारउ ॥९॥

[१२]

एत्तहें सिरिप्पह भइणि तहों। सुग्गीवें दिण्ण दसाणणहों ॥१॥
वोलाविउ गउ लङ्का-णयरें। णल-णील विसज्जिय किक्क-पुरें ॥२॥
सुउ धुव-महएविहें सथविउ। ससिकिरणु णियद्ध-रज्जें थविउ ॥३॥
तहिँ अवसरें उत्तर-सेढि-विहु। विज्जाहरु णामें जलणसिहु ॥४॥
तहों धीय सुतार-णाम णरेंण। मग्गिज्जइ दससयगइ-वरेंण ॥५॥
गुरु-वयणें तासु ण पट्ठविय। सुग्गीवहों णवर परिट्ठविय ॥६॥

बजाई और वानरसेना कोलाहल करने लगी। इस प्रकार लंका-नरेशका मान मर्दनकर अपने छोटे भाई सुग्रीवके मस्तकपर राजपट्ट बाँधकर अभिनन्दन पूर्वक उससे कहा—"अब तुम रावणके अधीन रहकर सुखका भोग करना।" ॥ १-६ ॥

[११] मेरा सिर वैसे ही दुर्दमनीय है, जैसे सर्वोत्तम मोक्ष शिखर। त्रिलोकपति जिनकी वंदना करके यह, अब और किसी साधारण जनके आगे नहीं झुक सकता। अत. मेरी धरतीका तुम उपभोग करो और वानर तथा राक्षस समूहको रिझाओ और जो तुमने, पिताके कारण यमको जीतकर मेरा उपकार किया है, उसका मैंने बदला चुका दिया (प्रत्युपकार कर दिया)। अब तुम स्वाधीन होकर राज्यश्रीका उपभोग कर सकते हो, यह कहकर वह गगनचन्द्र मुनिके पास चला गया। वहाँ दीक्षा ले और तल्लीन हो, वह तपस्यामें रत हो गया। तत्काल ही उसे ऋद्धि उत्पन्न हो गई। दिन-दिन इसी प्रकार इन्द्रिय रूपी शत्रुओंको जीतते हुए उसने कैलाश पर्वतकी ओर विहार किया॥ १-८ ॥

अंतमें पञ्च महाव्रतोंको धारण करनेवाले भट्टारक बालि, अष्टापद शिखरपर स्थित आतापनी शिलापर बैठकर शाश्वत तपकी साधना करने लगे॥ ६ ॥

[१२] इधर सुग्रीवने अपनी बहिन श्रीप्रभा रावणको व्याह दी। उसे लेकर रावण लका चला गया। नल और नीलने किष्क-पुरके लिए प्रस्थान किया, ध्रुवा महादेवीके पुत्र शशिकरणको सुग्रीव अपने आधे राज्यपर नियुक्त कर दिया। इसी समय, विजयार्धकी उत्तर श्रेणिके राजा ज्वलनसिंहको अपने सुतारा नामकी लड़की गुरुके आदेशसे सुग्रीवको व्याह दी। वैसे इसके पहले ही वह सहस्रगतिको मॅगनीमें दी जा चुकी थी। वह भी

परिणेवि कण्ण णिय णियय-पुरु । दससयगइहेँ वि विरहग्गि गुरु ॥७॥
पजलइ उप्पायइ कलमलउ । उण्हउ ण सुहाइ ण सीयलउ ॥८॥
उव्भन्तउ कहि मि पइट्ठु वणु । साहन्तु विज्ज थिउ एक्क-मणु ॥९॥

घत्ता

ताइ मि धण-पउरेँ किक्किन्ध-पुरेँ अङ्गङ्गय वड्ढन्तइँ ।
थियइ रयण [इँ] णइँ वेण्णि वि जणइँ रज्जु स इं भु अन्तइँ ॥१०॥

[१३. तेरहमो संधि]

पेक्खेप्पिणु वालि-भडारउ रावणु रोसाऊरियउ ।
पभणइ 'किं मइँ जीवन्तेण जाम ण रिउ मुसुमूरियउ' ॥१॥

[१]

दुवई

विज्जाहर-कुमारि रयणावलि णिच्चालोय-पुरवरे ।
परिणेँ वि वलइ जाम ता थम्भिउ पुप्फविमाणु अम्वरे ॥१॥

महरिसि-तव-तेएँ थिउ विमाणु । ण दुक्किय-कम्म-वसेण दाणु ॥२॥
ण सुक्के खलिउ मेह-जालु । ण पाउसेण कोइल-वमालु ॥३॥
ण दूसामिएँण कुडुम्व-वित्तु । ण मच्छे धरिउ महायवत्तु (?) ॥४॥
ण कञ्चण-सेले पवण-गमणु । ण ढाण-पहावेँ णीय-भवणु ॥५॥
णीसद्दउ हूयउ किङ्किणीउ । ण सुरएँ समत्तएँ कामिणीउ ॥६॥
घग्घरेँ हि मि घवघव-घोसु चत्तु । णं गिम्भयालु दद्दुरहुँ पत्तु ॥७॥
णरवरहुँ परोप्परु हूउ चप्पु । अहोँ धरणि एजेविणु धरणि-कम्पु ॥८॥
पडिपेल्लियउ वि ण वहइ विमाणु । ण महरिसि भइयएँ मुअइ पाणु ॥९॥

घत्ता

विहडइ थरहरइ ण ढुकइ उप्परि वालि-भडाराहोँ ।
छुडु छुडु परिणियउ कलत्तु व रइ-दइयहोँ वड्डाराहोँ ॥१०॥

उससे विवाह कर अपने नगर लौट आया। सहस्रगति विरहकी इस ज्वालाको सहन नहीं कर सका, उसे क्षण-क्षण वेदनाकी कसमसाहट होने लगी। न उसे ठंड अच्छी लगती और न गर्मी। वह उद्विग्न होकर वनमें विद्या सिद्ध करनेके लिए चला गया। सुग्रीवको भी दो रत्नोंके समान उज्ज्वल, अंग और अंगद नामके दो पुत्र उत्पन्न हुए और वह स्वयं सुखपूर्वक राजभोग करने लगा॥१-१०॥

तेरहवीं संधि

परन्तु जब कभी भट्टारक बालिका विचार मनमें आता रावण रोषसे भर उठता। "मेरे जिन्दा रहनेसे क्या, यदि मैं (रावण) शत्रुको न मसल सका।" एक समय वह विद्याधरकुमारी रत्नावलीसे विवाह कर, नित्यालोक नगरसे लौट रहा था। अचानक उसका विमान आकाशमें अवरुद्ध हो गया। जैसे पापकर्मके वश से दान, शुक्रसे मेघजाल, वर्षासे कोयलका कलरव, अमित दोषोंसे कुटुम्बका धन, मच्छसे महाकमल, सुमेरु पर्वतसे पवनका वेग और दानके प्रभावसे नीतिवचन जाते हैं, वैसे ही भट्टारक श्रीवालिके प्रभावसे रावणका विमान रुक गया। उसकी किंकिणियाँ ऐसे निःशब्द हो उठीं मानो सुरति समाप्त होने पर कामिनी मूक हो उठी हो। छोटी-छोटी घण्टियोंका रव उसी तरह शांत हो गया मानो मेंढकोंके लिए ग्रीष्मकाल आ गया हो। वे नरवर आपसमें चपने लगे; धरतीका कम्प बढ़ने लगा। ठेलनेपर भी विमान आगे नहीं बढ़ रहा था। वह वालि महाऋषिके ऊपर वैसे ही नहीं पहुँच सक रहा था जैसे नवविवाहिता पत्नी अपने सयाने कामुक पतिके पास नहीं जाती॥१-१०॥

[२]

दुवई

तो एत्थन्तरेंण कय पहुणा सव्व-दिसावलोयणं ।
सव्व-दिसावलोयणेण वि रत्तुप्पलमिव णहङ्गण ॥१॥

'मरु कहोँ अथक[एँ] कालु कुद्धु । करु केण भुयङ्गम-वयणेँ छुद्धु ॥२॥
कें सिरेंण पडिच्छिउ कुलिस-घाउ । को णिग्गउ पञ्चाणण-मुहाउ ॥३॥
कोँ पइट्टु जलन्तएँ जलण-जालेँ । को ठिउ कियन्त-दन्तन्तरालेँ' ॥४॥
मारिच्चें वुच्चइ 'देव देव । स-भुअङ्गमु चन्दण-रुक्खु जेम ॥५॥
लम्बिय-थिर - थोर - पलम्ब-बाहु । अच्छइ कइलासहोँ उवरि साहु ॥६॥
मेरु व अकम्पु उवहि व अखोहु । महियलु व बहु-क्खमु चत्त-मोहु ॥७॥
मज्झणह-पयङ्गु व उग्ग-तेउ । तहोँ तव-सत्तिएँ पडिखलिउ वेउ ॥८॥
ओसारि विमाणु दवत्ति देव । फुट्टइ ण जाम खलु हियउ जेम' ॥९॥

घत्ता

त माम-वयणु णिसुणेप्पिणु दहमुहु हेट्ठामुहु वलिउ ।
गयणङ्गण-लच्छिहें केरउ जोव्वण-भारु णाइँ गलिउ ॥१०॥

[३]

दुवई

तो गज्जन्त - मत्त-मायङ्ग - तुङ्ग-सिर - घट्ट-कन्धरो ।
उक्खय-मणि-सिलायलुच्छालिय-हल्लाविय-वसुन्धरो ॥१॥

बहु - सूरकन्त - हुयवह - पलित्तु । ससिकन्त-णीर - णिज्झर-किलित्तु ॥२॥
मरगय - मऊर - संदेह - वन्तु । णील-मणि - पहन्धारिय-दियन्तु ॥३॥
वर-पउमराय - कर - णियर-तम्बु । गय-मय-णइ-पक्खालिय-णियम्बु ॥४॥

[२] तब रावणने सब दिशाओंमें दृष्टिपात किया। सब ओर देखने पर भी, केवल लाल-लाल आकाशके सिवाय उसे कुछ भी दृष्टिगत नहीं हुआ। (अन्तमें) हैरान होकर उसने मारीचसे पूछा, "कहो, चंचल काल आज किस पर कुपित हुआ है ? कौन साँपके मुँहको क्षुब्ध कर रहा है ? किसने अपने सिरके ऊपर वज्रपात किया ? सिंहके मुखके सम्मुख होकर कौन निकलना चाहता है ? आगकी जलती लपटोंमें कौन प्रवेश करना चाहता है ? कौन कृतान्तकी दाढ़के भीतर बैठना चाहता है ? इस पर मारीचने उत्तरमें कहा, "देव देव ! जैसे चंदनके वृक्षपर साँप रहता है, वैसे ही लम्बी लम्बी स्थिर बाहुवाला एक महाऋषि कैलाश पर्वतपर रहता है। वह मेरुकी तरह अकप, समुद्रकी तरह गम्भीर, धरतीकी तरह समर्थ, मोहशून्य और मध्याह्न सूर्यकी तरह उग्रतेज है। उसकी तप.शक्तिके प्रभावसे आपके विमानका वेग प्रतिहत हो गया है। अतः हे देव, हृदयकी तरह टूक-टूक होनेके पहले ही आप इस विमानको फौरन उतार ले।" अपने मामाके ये वचन सुनकर रावणका मुख नीचा हो गया, मानो आकाशकी शोभा-रूपी लक्ष्मीका यौवनभार ही गलकर गिर गया हो ॥१-१०॥

[३] उतरकर रावणने कैलाश पर्वतपर एक महामुनिको तपस्यामें लीन देखा। वह पर्वत गरजते हुए मत्त हाथियोंके ऊँचे सिरोंकी टक्करसे व्याप्त था। उत्क्षिप्त मणि-चट्टानोंसे धरती उछलती और काँप-सी रही थी। प्रदीप्त सूर्यकांत मणियोंकी ज्वालासे वह चमक रहा था। चन्द्रकान्त मणियोंके निर्झर बहा रहे थे, मरकत मणियोंसे मयूरोंको भ्रम उत्पन्न हो रहा था। नीलम मणियोंसे चारों ओर अंधेरा हो रहा था। समूचा पर्वत, पद्मराग मणियोंके

तरु-पडिय-पुप्फ - पङ्गुत्त - सिहरु । मयरन्द - सुरा-रस - मत्त-भमरु ॥५॥
अहि-गिलिय - गइन्द-पमुत्त-सासु । सासुग्गय - मोत्तिय - धवलियासु ॥६॥
सो तेहउ गिरि-कइलासु दिट्ठु । अण्णु वि मुणिवरु मुणिवर-वरिट्ठु ॥७॥
पच्चारिउ 'लइ मुणिओ सि मित्त । स-कसाय-कोव - हुववह - पलित्त ॥८॥
अज्ज वि रणु इच्छहि मइँ समाणु । जइ रिसि तो किं थम्भिउ विमाणु ॥९॥

घत्ता

ज पइँ परिहव-रिणु दिण्णउ तं स-कलन्तरु अल्लवमि ।
पाहाणु जेम उम्मूलेँवि कइलासु जेँ सायरेँ घिवमि' ॥१०॥

[४]

दुवई

एम भणेवि झत्ति पडिउ इव वालिहेँ तणॆण सावेण ।
तलु भिन्देवि पइट्ठु महिदारणियहेँ विज्जहेँ पहावेणं ॥१॥

चिन्तेप्पिणु विज्ज-सहासु तेण । उम्मूलिउ महिहरु दहमुहेण ॥२॥
सु-पसिद्धउ सिद्धउ लद्ध-संसु । णावइ दुप्पुत्तें णियय-वसु ॥३॥
अहवइ णवन्तु दुक्किय-भरेण । तइलोक्कु वखित्तु (?) व जिणवरेण ॥४॥
अहवइ भुवइन्द - ललन्त-णालु । णीसारिउ महि-उवरहोँ व वालु ॥५॥
अहवइ ण वसुह महोहराइँ । छोडाविय वालालुञ्छिराइँ ॥६॥
अहवइ चलवलइ भुअङ्ग-थट्टु । ण धरणि-अन्त-पोट्टलु विसट्टु ॥७॥
खोलुक्खउ खोणि-खयालु भाइ । पायालहोँ फाडिउ उअरु णाइँ ॥८॥
गिरिविरॆण चलन्तें चउ-समुद्द । अहिमुह उत्थल्लाविय रउद्द ॥९॥

घत्ता

जं गयउ आसि णासेप्पिणु सायर-जारें माणियउ ।
त मण्ड हरेवि पडीवउ जलु कु-कलत्त व आणियउ ॥१०॥

किरण-जालसे भरा था। उसकी उपत्यका गजमद्की धाराओंसे स्नात-सी थी। शिखर पेड़से गिरे फूलोंसे भरे हुए थे। भौंरे मकरन्द-सुरापानके लिए उतावले हो रहे थे। साँपोंसे डसे गये हाथी दीर्घ श्वास छोड़ रहे थे। साँसोंके साथ ही, मोतियोंके समान स्वच्छ उनके अश्रुकण गिर रहे थे। रावणने उस महामुनिसे कहा, "मित्र! मुनि होकर भी तुम कषाय और क्रोधकी आगमें जल रहे हो, यदि आज भी तुम्हारी मेरे साथ युद्ध करनेकी इच्छा न होती तो ऋषि होकर भी मेरा विमान क्यों रोका? तुमने पराभवका जो ऋण मुझे दिया था कालान्तरमें उसे अब चुका रहा हूँ। पत्थरकी तरह कैलाश पर्वतको ही उखाड़कर समुद्रमें फेंक दूँगा" ॥१-१०॥

[४] यह सोचकर, मानो वालिके अभिशापसे पतित हुआ सा वह महिदारिणी विद्याकेप्रभावसे कैलाशके तल भागको भेदकर उसमें घुस गया। हजार विद्याओंका चिंतनकर उसने पर्वतको ऐसे उखाड़ लिया, मानो खोटे पुत्रने, सुप्रसिद्ध प्रशंसाप्राप्त और सिद्ध अपना कुटुम्ब ही उखाड़ डाला है। अथवा दुष्कृत भारसे नमित और विक्षिप्त त्रैलोक्यका जिनने उच्छेद कर दिया हो। अथवा धरतीके उदरसे नाभिनालकी तरह व्याल ही निकल आया हो। या सर्पोंसे व्याप्त पर्वतको धरतीने ही छोड़ दिया हो, या मानो चिलबिलाते हुए सर्पोंका समूह हो। अथवा धरतीके विनाशका ढेरविशेप हो। अत्यन्त गहरा वह गड्ढा ऐसा लगता था मानो पातालका उदर ही विदीर्ण कर दिया गया हो। कैलाशके गिरते ही चारों समुद्र चलायमान हो उठे। भयंकर शेषनागका मुख भी उबल पड़ा। मानो समुद्ररूपी जारने आनन्द लेकर जो जल नष्ट कर दिया था, खोटी स्त्रीकी तरह उस जलको बलपूर्वक लाकर धरतीने मानो फिरसे रख दिया ॥१-१०॥

[५]

दुवई

सुरवर - पवरकरि - कराकार - करग्गुग्गामिएँ धरे ।
भग्ग-भुयङ्ग-उग्ग-णिग्गय-विसग्गि - लग्गन्त-कन्दरे ॥१॥

कत्थइ विहडियइँ सिलायलाइँ । सइलग्गइँ कियइँ व खलहलाइँ ॥२॥
कत्थइ गय णिग्गय उद्ध-सुण्ड । ण धरएँ पसारिय वाहु-दण्ड ॥३॥
कत्थइ सुअ-पन्तिउ उट्ठियाउ । णं तुट्टउ मरगय-कण्ठियाउ ॥४॥
कत्थइ भमरोलिउ धावडाउ । उड्डन्ति व कइलासहों जडाउ ॥५॥
कत्थइ वणयर णिग्गय गुहेहिं । ण वमइ महागिरि वहु-मुहेहिं ॥६॥
उच्छलिउ कहि मि जलु धवल-धारु । ण तुट्टेंवि गउ गिरिवरहों हारु ॥७॥
कत्थइ उट्ठियइँ वलाय-सयइँ । ण तुट्टेंवि गिरि-अट्ठियइँ गयइँ ॥८॥
कत्थइ उच्छलियइँ विद्दुमाइँ । णं रुहिर-फुलिङ्गइँ अहिणवाइँ ॥९॥

घत्ता

अण्णु वि जो अण्णहों हत्थेंण णिय-थाणहों मेल्लावियउ ।
णिच्चलु ववसाय-विहूणउ कवणु ण आवइ पावियउ ॥१०॥

[६]

दुवई

ताम फडा-कडप्प-विप्फुरिय-परिप्फुड-मणि-णिहायहो ।
आसण-कम्पु जाउ पायालयले धरणिन्द-रायहो ॥१॥

अहि अवहि पउञ्जँ वि आउ तेत्थु । रावणु केलासुद्धरणु जेत्थु ॥२॥
जहिँ मणि-सिलायलुप्पीलु फुट्टु । गिरि-डिम्भहों णं कडिसरउ तुट्टु ॥३॥
जहिँ वणयर-थट्ट-मरट्टु भग्गु । जहिँ वालि महारिसि सोवसग्गु ॥४॥
जल्ल-मल - पसाहिय-सयल-गत्तु । विज्जा - जोगेसरु रिद्धि-पत्तु ॥५॥
तिण - कणयकोडि - सामण्ण-भाउ । सुहि - सत्तु - एक्क-कारण-सहाउ ॥६॥

[५] ऐरावत हाथीकी सूँड़के समान हाथकी अंगुलीपर उस कैलाश पर्वतको उठाते ही, भग्नसर्पोंकी विषज्वालाएँ गुफाओंसे निकलने लगी। कहीं चट्टानें चूर-चूर हो रही थी, कही पहाड़ोंके अग्रिम भागमें खलबली मच रही थी। कहीं हाथी, सूँड़ ऊँची किये ऐसे निकल रहे थे, मानो पहाड़ोंने अपने ही हाथ उठा दिये हों। कहीं टूटी हुई मरकतमालाकी तरह, तोते उड़ते हुए दिखाई दे रहे थे। कहीं भौंरोंकी कतारें उड़ रही थीं मानो कैलाश पर्वतकी जड़ें उड़ रही हों। गुफाओंसे निकले हुए बन्दर ऐसे लगते थे मानो कैलाश पर्वत ही हजार मुखोंसे बोल रहा हो। कहीं टूटे हुए हारकी तरह गिरिवरकी जलधारा उछल पड़ी। कही सैकड़ों बगुले उड़ रहे थे, मानो कैलाशकी हड्डियाँ ही चरमरा गई हों। कहीं अभिनव रक्त-कणोंकी तरह विद्रुम (मूँगा) चमक रहे थे ॥१-९॥

ठीक भी है यह। क्योंकि जो दूसरोंके हाथसे अपने स्थानसे हटा दिया जाता है, निश्चय ही, व्यवसाय रहित वह कौन-सी आपत्ति नहीं उठाता ॥१०॥

[६] इतनेमें, पाताललोकमें चमकते हुए मणियोंसे सहित धरणेन्द्रका आसन कंपायमान हुआ। अवधिज्ञानसे सब वृत्तान्त जानकर, सर्पराज वहाँ पहुँचे, जहाँ रावण कैलाश पर्वतको उठाये हुए खड़ा था। वहाँ उसे टूटी हुई मणिमय चट्टानोंके पत्थर ऐसे मालूम हुए मानो गिरिरूपी शिशुका कटिसूत्र ही टूट गया हो। वनचरोंके समूहोंका मान चूर चूर हो चुका था। वहाँपर केवल महामुनि बालि अविचल तथा मूकभावसे ध्यानमें लीन उपसर्गमें बैठे थे। विद्यायोगके अधिपति वह ऋद्धियाँ प्राप्त कर चुके थे। कोटि-कोटि स्वर्ण और तृण, शत्रु और पण्डितमें, उनका भाव सम

सो जइवरु कुञ्चिय-कर-कमेण । परिअञ्चिउ णमिउ सुअङ्गमेण ॥७॥
महियल-गय-सीसावलि विहाइ । किय अहिणव-कमलच्चणिय णाइँ ॥८॥
रेहइ फणालि लणि-विप्फुरन्ति । णं वोहिय पुरउ पईव-पन्ति ॥९॥

घत्ता

पणवन्तेँ दससयलोयणेँण हेट्ठामुहु कइलासु णिउ ।
सोणिउ दह-मुहेँहिँ वहन्तउ दहमुहु कुम्भागारु किउ ॥१०॥

[७]

दुवई

ज अहिपवर-राय-गुरुभारकन्त-धरेण पेल्लिओ ।
दस-दिसिवह-भरन्तु दहवयणेँ घोराराउ मेल्लिओ ॥१॥

त सद्दु सुणेवि मणोहरेण । सुरवर - करि - कुम्भ - पयोधरेण ॥२॥
केऊर - हार - णेउर - धरेण । खणखणखणन्त - कङ्कण - करेण ॥३॥
कञ्ची - कलाव - रङ्खोलिरेण । मुह - कमलासत्तिन्दिन्दिरेण ॥४॥
विब्भम - विलास - भूभङ्गुरेण । हाहारउ किउ अन्तेउरेण ॥५॥
'हा हा दहमुह जय-सिरि-णिवास । दहवयण दसाणण हा दसास ॥६॥
वीसद्ध-गीव वीसद्ध-जीह । दससिर सुरवर-सारङ्ग-सीह' ॥७॥
मन्दोवरि पभणइ 'चारु-चित्त । अहोँ वालि-भडारा करेँ परित्त ॥८॥
लङ्केसहोँ जाइ ण जीउ जाम । भत्तार-भिक्ख महु देहि ताम' ॥९॥

घत्ता

त कलुण-वयणु णिसुणेप्पिणु धरणिन्देँ उद्धरिउ धरु ।
मघ-रोहिणि-उत्तर-पत्तेँण अङ्गारेण व अम्वुहरु ॥१०॥

[८]

दुवई

सेल-विसाल-मूल-तल-तालिउ लङ्काहिउ विणिग्गओ ।
केसरि-पहर-णहर-खर-चवढण-चुक्को इव महग्गओ ॥१॥

लुअ-केसर - उक्खय-णह-णिहाउ । ण गिरि-गुह मुएँवि मइन्दु आउ ॥२॥
कुण्डलिय सीस - कर-चरण - जुम्मु । ण पायालहोँ णीसरिउ कुम्मु ॥३॥
कक्खड-फड-णिसुढिय-फड-कडप्पु । णं गरुड-मुहहोँ णीसरिउ सप्पु ॥४॥

था। आते ही धरणेन्द्रने उनकी प्रदक्षिणा और वंदना की। मणियोंसे चमकती हुई उसकी फणावलि ऐसी सोह रही थी मानो महामुनि (वालि) के सन्मुख दीपमाला जल रही हो। नागराजके नमन करते ही कैलाश पर्वत नीचे धसने लगा। रावणके मुखसे रक्तकी धारा वह निकली, वह कछुएकी भाँति ढेर हो गया ॥१-१०॥

[७] सर्पराजके थोड़ा और चपेटने पर रावण जोरसे चिल्ला उठा, उससे दशों दिशाएँ भयातुर हो उठीं। उस घोर शब्दको सुनते ही ऐरावतके कुम्भस्थलके समान स्तनोंवाली रावणकी रानियाँ, केयूर, हार, नूपुर कंकणवाले अपने दोनों करोंको खनखनाकर और करधनी हिलाकर, जिनके मुखकमलपर भौंरे मँडरा रहे थे तथा विभ्रम और विलाससे जिनकी भ्रुकुटियाँ कुटिल हो रही थी वे हा हा शब्द करने लगीं। यथा—"हा दशमुख! हा श्रीनिवास, हा दशवदन! हा दशानन! हा दशास्य! हा दशग्रीव! हा दशजिह्व! हा दशसिर! हा देवतारूपी हरिणो के लिए सिंह के समान!" मन्दोदरीने कहा कि "हे उदार भट्टारक वालि! जिसमे लंकेशका जीवन न जावे ऐसी हमे भर्त्तांकी भीख दो।" इस प्रकार करुण क्रंदनको सुनकर, धरणेन्द्रने पहाड़ वैसे ही उठा लिया जैसे मघा और रोहिणीके उत्तरमे पहुँचा मंगल मेघोको उठा लेता है ॥१-१०॥

[८] आहत होकर रावण कैलाशके तलभागसे निकल आया, मानो सिंहके तीखे प्रहारसे महागज ही बचकर आया हो, या मानो अयाल लौंचकर तथा नख उखाड़कर मृगेन्द्र ही अपनी गुफा छोड़कर आया हो। या सिर, हाथ, पाँव समेटकर, कछुआ ही पाताल लोकसे निकला हो, या कर्कश वृष्टिके कारण भग्नफण-

मयलञ्छणु दूसिउ तेय-मन्दु । ण राहु-मुहहों णीसरिउ चन्दु ॥५॥
गउ तेत्तहें जेत्तहें गुण-गणालि । अच्छइ अत्तावण-सिलहिं वालि ॥६॥
परिअञ्चेंवि वन्दिउ दससिरेण । पुणु किय गरहण गग्गर-गिरेण ॥७॥
'महँ सरिसउ अण्णु ण जगेँ अयाणु । जो करमि केलि सीहें समाणु ॥८॥
महँ सरिसउ अण्णु ण मन्द-भग्गु । जो गुरुहु मि करमि महोवसग्गु ॥९॥

घत्ता

जं तिहुवण-णाहु मुएप्पिणु अण्णहों णामिउ ण सिर-कमलु ।
तं सम्मत्त-महद्दुमहों लद्ध देव पइँ परम-फलु' ॥१०॥

[९]

दुवई

पुणरवि वारवार पोमाएँवि दसविह-धम्मवालयं ।
गउ तेत्तहें तुरन्तु प जेत्तहें भरहाहिव-जिणालयं ॥१॥

कइलास - कोडि - कम्पावणेण । किय पुज्ज जिणिन्दहों रावणेण ॥२॥
फल फुल्ल-समद्धि-वणासइ व्व । सावय-परियरिय महाडइ व्व ॥३॥
अहिणव-उल्लाव विलासिणि व्व । णर-दड्ड-धुत्त खल-कुट्टणि व्व ॥४॥
वहु-दीव समुद्दन्तर-महि व्व । पेल्लिय-वलि णारायण-मइ व्व ॥५॥
घण्टारव-मुहलिय गय-घड व्व । मणि-रयण-समुज्जल अहि-फड व्व ॥६॥
ण्हाणद्ध वेस-केसावलि व्व । गन्धुक्कड कुसुमिय पाडलि व्व ॥७॥
तं पुज्ज करेँवि आढत्तु गेउ । मुच्छण - कम - कम्प - तिगाम-भेउ ॥८॥
सर-सज्ज-रिसह - गन्धार-वाहु । मज्झिम - पञ्चम - धइवय - णिसाहु ॥९॥

समूहवाला सर्प ही गरुडके मुखसे निकल आया हो, या दूषित, तेजहीन चन्द्र ही राहुके मुखसे निकल आया हो। रावण आतापिनी शिलापर गुणोंसे युक्त ध्यानस्थ वालि महामुनिके निकट पहुँचा। परिक्रमा देकर उसने उनकी स्तुति की और फिर गद्‌गद स्वरमे अपनी ही निन्दा करता हुआ बोला, "मेरे समान अज्ञानी दुनियामे दूसरा नहीं, जो मैं सिंहके साथ खिलवाड़ करना चाहता हूँ। भला, मेरे समान दूसरा मंदभाग्य कौन हो सकता है, जो मैंने गुरुके ऊपर भी महा उपसर्ग किया। हे देव, आपने त्रिलोक-स्वामी जिनको छोड़कर और किसीको अपना सिरकमल नहीं झुकाया, सचमुच आपने सम्यक्त्वरूपी महाद्रुमका फल पा लिया ॥१-१०॥

[६] दश धर्मोंके आश्रय-निकेतन महामुनि वालिकी इस तरह स्तुतिकर, रावण भरतद्वारा निर्मित जिन-मन्दिरोके दर्शन करनेके लिए गया। वहाँ पहुँचकर, कैलाश पर्वतको कँपानेवाले रावणने जिनकी पूजा की। उसकी वह पूजा वनस्पतिकी तरह फल-फूलोंसे समृद्ध थी, महाटवीकी तरह, सावय (श्वापद और श्रावकों) से घिरी हुई थी, विलासिनीकी तरह, अभिनव उल्लास-वाली थी। दुष्ट कुट्टनीकी तरह नरोंसे दग्ध और कम्पित, समुद्रके बीचकी धरतीकी तरह, बहुत दीप (दिया और द्वीप) वाली, नारायणकी बुद्धिकी तरह वलि (राजा वलि और पूजाकी सामग्री) को प्रेरित करनेवाली, गजघटाकी तरह घण्टारवसे मुखरित, साँपके फनकी तरह मणि और रत्नोंसे समुज्ज्वल, वेश्याके बालोंकी तरह स्नानसे सहित, पाटलपुष्पकी तरह गंधसे उत्कट और कुसुमित थी। जिनेन्द्रकी पूजा करनेके अनन्तर उसने गान प्रारम्भ किया। उसमे मूर्छना क्रम, कंप, त्रिग्राम आदि सभी भेद थे। षड्ज

घत्ता

महुरेण थिरेण पलोट्टॅण जण-वसियरण समत्थऍण ।
गायइ गन्धव्वु मणोहरु रावणु रावणहत्थऍण ॥१०॥

[१०]

दुवई

सालङ्कारु सु-सरु सु-वियड्ढु सुहावउ पिय-कलत्तु वं ।
आरोहि-अध (व ?) रोहि-थाइय-सचारिहिँ सुरय-तत्तु वं ॥१॥

णव-वहुअ-णिडालु व तिलय-चारु । णिग्घण-गयणयलु व मन्द-तारु ॥२॥
सण्णद्ध-वलु पिव लइय-ताणु । धणुरिव सज्जीउ पसण्ण-वाणु ॥३॥
तं गेउ सुणेप्पिणु दिण्ण णियय । धरणिन्दें सत्ति अमोहविजय ॥४॥
तियसाह णवेप्पिणु रिसह-देउ । पुणु गउ णिय-णयरहों कइकसेउ ॥५॥
एत्थन्तरॅ सुग्गीउत्तमासु । उप्पण्णउ केवलुणाणु तासु ॥६॥
वाहुवलि जेम थिउ सुद्ध-गत्तु । उप्पण्णु अण्णु धवलायवत्तु ॥७॥
भामण्डलु कमलासण-समाणु । वहु-दिवसेँहिँ गउ णिव्वाण-थाणु ॥८॥
दससिरु वि सुरासुर-डमर-भेरि । उव्वहइ पुरन्दर-वइर-वेरि ॥९॥

घत्ता

'पइसरॅवि जेण रण-सरवरॅ मालिहेँ खुडियउ सिर-कमलु ।
तहों खलहों पुरन्दर-हंसहों पाडमि पाण-पक्ख-जुअलु' ॥१०॥

[११]

दुवई

एम भणेवि देवि रण-भेरि पयट्टु तुरन्तु रावणो ।
जो जम-धणय-कणय-वुह-अट्ठावय-धर-थरहरावणो ॥१॥

णीसरिऍ दसाणणें णिसियरिन्द । ण मुक्कङ्कुस णिग्गय गइन्द ॥२॥
माणुण्णय णिय-णिय-वाहणत्थ । दणु-दारण पहरण-पवर-हत्थ ॥३॥

ऋषभ, गांधारवाही, मध्यम, पंचम, धैवत और निषाद स्वरमें उसने सुन्दर संगीत प्रारम्भ किया। मधुर, स्थिर, प्रवृत्तिशील और जनवशीकरणमें समर्थ अपने हाथसे शत्रुको रुलानेवाले रावणने सुन्दर गन्धर्व गान किया ॥१-१०॥

[१०] उसका वह गान सुन्दर स्त्रीकी तरह अलंकार और सुन्दर स्वरोंसे युक्त विदग्ध और सुहावना था। अथवा सुरतितन्त्र की तरह आरोही, अवरोही, स्थायी और संचारी भावकी गतियोंसे सहित था। नववधूके भालकी तरह तिलकसे सुन्दर, मेघरहित आकाशकी भाँति मंदतार (तारा और ताल), सन्नद्ध सेनापतिकी तरह तान लेनेवाला, सजे हुए धनुषकी तरह प्रसन्न वाणवाला उसके गीतको सुनकर, नागराजने अपनी अमोघ विजय नामकी शक्ति दे दी। तेरह दिन तक ऋषभकी वंदना करनेके वाद रावण अपने घर चला आया। इसी समय महामुनि वालिको केवलज्ञान उत्पन्न हो गया, वाहुवलि ही की तरह उनका शरीर भी पवित्र हो गया और भी उन्हें धवल छत्र, भामंडल और कमलासन आदि प्रकट हुए। वहुत समय पश्चात् उन्होंने निर्वाण प्राप्त किया। परंतु इधर रावण सुरासुरको भी डरानेवाला इन्द्रके प्रति विद्वेषसे भर उठा। उसने कहा कि जिसने रणरूपी सरोवरमें घुसकर मालिका सिरकमल तोड़ा है मैं उस हंसरूपी इन्द्रके दोनो पंख उखाड़कर फेक दूँगा ॥१-११॥

[११] यह विचारकर उसने रणभेरी वजवाकर कूच कर दिया। वही रावण जिसने यम, धनद, वुध और कैलाश पर्वतको थर्रा दिया था। रावणके प्रस्थान करते ही राक्षस भी ऐसे निकल पड़े मानो अंकुशहीन गजेन्द्र ही निकल पड़े हो। अभिमानी वे अपने-अपने विमानोपर आरूढ़ थे, प्रहार करनेमें निपुण हाथवाले उन

समुह वड णिविड गय-घड घरट्ट(?)। णन्दीसर-दीवु व सुर पयट्ट ॥४॥
पायाललङ्क पावन्तएण। दहगीवें वइरु वहन्तएण ॥५॥
पज्जलिउ जलणु जालासएण (?) ॥६॥
वुच्चइ 'खर-दूसण लेहु ताव। खल खुद्द पिसुण परिघिट्ठ पाव' ॥७॥
तं वयणु सुणेप्पिणु मामएण। लङ्काहिउ वुज्झाविउ मएण ॥८॥
'सहुँ सालएहिँ किर कवण काणि। जइ घाइय तो तुम्हहुँ जि हाणि ॥९॥
लहु वहिणि-सहोवर-णिलएँ जाहुँ। आरूसेंवि किज्जइ काइँ ताहुँ' ॥१०॥

घत्ता

तं वयणु सुणेंवि दहवयणेंण मच्छरु मणेँ परिसेसियउ।
चूडामणि-पाहुड-हत्थउ इन्दइ कोक्कउ पेसियउ ॥११॥

[१२]

दुवई

आइय तेत्थु ते वि पिय-ववणेंहिँ जोक्कारिउ दसाणणो।
गउ किक्किन्ध-णयरु सुग्गीउ वि मिलिउ स-मन्ति-साहणो ॥१॥

साहिउ अरि-अक्खोहणि-सहासु। एत्तडिय सङ्ख णरवर-वलासु ॥२॥
रह-तुरय-गइन्दहुँ णाहिँ छेउ। उव्वहइ पयाणउ पवण-वेउ ॥३॥
थिय अग्गिम-वेल्लि-महाविसालेँ। रेवा-विञ्झइरिहिँ अन्तरालेँ ॥४॥
अत्थवणहोँ ढुक्कु पयङ्गु ताम। अल्लीण पासु णिसिअडय (?) णाव ॥५॥
वरि-सग्ग-वत्थ सीमन्त-वाह। णक्खत्त - कुसुम - सेहर - सणाह ॥६॥
किसिय - चच्चक्किय - गण्डवास। भग्गव - भेसइ - कण्णावयस ॥७॥
वहुलक्खण ससहर-तिलय-तार। जोण्हा - रङ्गोलिर - हार - भार ॥८॥
णं वञ्चेवि दिट्ठि दिवायरासु। णिसि-वहु अल्लीण णिसायरासु ॥९॥

भयंकर निशाचरोंके सम्मुख निविड गजघटा ऐसी उमड़ पड़ी मानो देवोंने ही नन्दीश्वरद्वीपको प्रस्थान किया हो। आगकी लपटोंकी तरह जलता हुआ, रोपसे प्रदीप्त रावण पाताललङ्कामें जाकर बोला—"खल, दुष्ट और पिशुन खरदूषणसे बदला ले लो" यह सुनकर मामा मयने लंकाधिपति रावणको समझाया और कहा, "बहनोईसे वैर करनेमें क्या लाभ?" उसके मरनेसे तुम्हारी ही हानि है, शीघ्र तुम बहनके पतिके घर जाओ। उससे रूठनेमें कोई लाभ नहीं।" यह वचन सुनकर रावणने मत्सर छोड़ दिया। चूड़ामणिके उपहारके साथ उसने इन्द्रजीतको उसे बुलाने भेजा ॥१-११॥

[१२] खर-दूषण—दोनोंने आकर मधुर शब्दोंमें रावणका स्वागत किया। सुग्रीव भी मंत्रियों और सेनाको लेकर अपने नगर किष्किंधपुर चला गया। रावणके पास उत्तम लोगोंकी एक हजार अक्षौहिणी सेना, और इतने ही शंख थे। रथ, अश्व और गजोंका तो अंत ही नहीं था। पवन-वेगकी तरह वह आकाशमें उड़ती जा रही थी। वह, रेवा और विंध्याचलके अन्तरालमें एक विशाल तटपर ठहर गया। ठीक इसी समय सूर्यास्त हुआ, मानो सूरज रातरूपी अटवीके आश्रयमें जाना चाह रहा हो। परन्तु निशारूपी वधू, उसकी आँख चुराकर चंद्रमाके आश्रमकी खोजमें चल दी। चमकते हुए तारे, मानो उनके वस्त्र थे, और दिशाएँ हाथ। नक्षत्रके फूलोंसे उसकी वेणी गुथी हुई थी, उसका कपोलतल कृत्तिकासे मण्डित था। शुक्र और बृहस्पति उसके कर्णफूल थे। अन्धकार उसकी आँखोंका अंजन था और शशधर तिलक। चाँदनी की परम्परा ही उसका हार-भार थी ॥१-६॥

घत्ता

विण्णि वि दुस्सील-सहावइँ सुरउ स इं भु अन्ताइँ ।
'मा दिणयरु कहि मि णिएसउ' णाइँ स-सङ्कइँ सुत्ताइँ ॥१०॥

* * *

इय इत्थ प उ म च रि ए धणञ्जयासिय-स य म्भु ए व-कए ।
क इ ला सु द्ध र ण मिणं तेरसम साहिय पव्वं ॥ ॥१० ॥

प्रथमं पर्व

[१४. चउदहमो संधि]

विमलेँ विहाणएँ कियएँ पयाणएँ उययइरि-सिहरेँ रवि दीसइ ।
'मइँ मेल्लेप्पिणु णिसियरु लेप्पिणु कहिँ गय णिसि' णाइँ गवेसइ ॥१॥

[१]

सुप्पहाय - दहि - अस - रवण्णउ । कोमल-कमल-किरण-दल-छण्णउ ॥१॥
जय-हरेँ पइसारिउ पइसन्तें । णावइ मङ्गल-कलसु वसन्तें ॥२॥
फग्गुण-खलहों दूउ णीसारिउ । जेण विरहि-जणु कह व ण मारिउ ॥३॥
जेण वणप्फइ-पय विब्भाडिय । फल-दल-रिद्धि-मडप्फर साडिय ॥४॥
गिरिवर गाम जेण धूमाविय । वण-पट्टण-णिहाय संताविय ॥५॥
सरि-पवाह-मिहुणइँ णासन्तइँ । जेण वरुण-घण-णियलेँहिँ घित्तइँ ॥६॥
जेण उच्छु-विड जन्तेँहिँ पीलिय । पव-मण्डव-णिरिक्क आवीलिय ॥७॥
जासु रज्जेँ पर रिद्धि पलासहों । तहों मुहु मइलेँवि फग्गुण मासहों ॥८॥

घत्ता

पङ्कय वयणउ कुवलय-णयणउ केयइ-केसर-सिर-सेहरु ।
पल्लव करयलु कुसुम-णहुज्जलु पइसरइ वसन्त-णरेसरु ॥९॥

वे दोनों (निशा और चन्द्र) दुःशील स्वभावके थे। कहीं सूर्य न देख ले मानो इसीसे दोनों, सुरतिका आनन्द लेकर, सशंक सो रहे थे ॥१०॥

इस तरह धनञ्जयके आश्रित स्वयम्भू कविकृत पउमचरिउमें कैलाशका उद्धार नामक तेरह सन्धिवाला पर्व समाप्त हुआ।

॥ प्रथम पर्व समाप्त ॥

चौदहवीं सन्धि

दूसरे दिन विमल प्रभातमें प्रणाम करते ही उन्हें उदयगिरि पर उगता हुआ सूर्य दीख पड़ा। वह मानो यह खोज-सा रहा था कि रात मुझे छोड़कर चन्द्रमाके साथ कहाँ चली गई ॥१॥

[१] लाल-लाल सूर्य-पिंड ऐसा जान पड़ता था मानो प्रवेश करते वसन्तने जगतरूपी घरमें, कोमल किरणोंके दलसे ढका हुआ, सुप्रभातरूपी दधि-अंशसे सुन्दर मंगल-कलश ही रख दिया है। वसन्तने फाल्गुनके दुष्टदूत पाले (हिम) को भगा दिया। उसने केवल विरही जनोंको किसी तरह मारा भर नहीं था। उसने वनस्पति रूपी प्रजाको नष्ट कर दिया था। फल-ऋद्धिका अहंकार चूर-चूर हो गया था। पहाड़ोंके समूह धूम-धूसरित हो रहे थे, वर्फ जम जाने से वनरूपी नगरोंको वह बहुत ही संतप्त कर रहा था। उसने नदियोंके प्रवाहको अवरुद्ध कर दिया था, और नदी, मेघ और जलबंधोंको तहस-नहस कर डाला था। यंत्रोंसे उसने इक्षुवनको खूब पीड़ित किया, प्रपामंडपोंको भी उसने खूब सताया था। उसके राज्यमें वह केवल पलाशकी वैभव-वृद्धि कर रहा था। वसन्त राजाने ऐसे उस फाल्गुन माहका मुँह काला कर दिया। धीरे-धीरे अब वसन्त राजाका प्रवेश हुआ। कमल उसका मुख था, कुमुद नेत्र, केतकी, पराग, सिर शेखर—सिरमुकुट, पल्लव करतल और फूल उसके उज्ज्वल नख थे ॥१-६॥

[२]

डोला - तोरण - वारँ पईहरँ । पइठु वसन्तु वसन्त-सिरी-हरँ ॥१॥
सररुह-वासहरँ हिँ रव-णेउरु । आवासिउ महुअरि-अन्तेउरु ॥२॥
कोइल-कामिणीउ उज्जाणँहिँ । सुय-सामन्त लयाहर-थाणँहिँ ॥३॥
पङ्कय-छत्त-दण्ड सर णियरँहिँ । सिहि-साहुलउ महीहर-सिहरँहिँ ॥४॥
कुसुमा-मञ्जरि-धय साहारँहिँ । दवणा-गण्ठिवाल केयारँहिँ ॥५॥
वाणर-मालिय साहा-चन्दँहिँ । महुअर मत्तवाल (?) मयरन्दँहिँ ॥६॥
मञ्जु-ताल कल्लोलावासँहिँ । भुञ्जा अहिणव-फल-महणासँहिँ ॥७॥
एम पइट्ठु विरहि विद्धन्तउ । गयवइ-वम्मँहिँ अन्दोलन्तउ ॥८॥

घत्ता

पेक्खँवि एन्तहोँ रिद्धि वसन्तहोँ महु-इक्खु-सुरासव-मत्ती ।
णम्मय-वाली भुम्भल-भोली ण भमइ सलोणहोँ रत्ती ॥९॥

[३]

णम्मयाएँ मयरहरहोँ जन्तिएँ । णाइँ पसाहणु लइउ तुरन्तिएँ ॥१॥
घवघवन्ति जे जल-पब्भारा । ते जि णाइँ णेउर-झङ्कारा ॥२॥
पुलिणइँ जाइँ वे वि सच्छायइँ । ताइँ जेँ उड्ढणाइँ णं जायइँ ॥३॥
जं जलु खलइ वलइ उल्लोलइ । रसणा-दामु तं जि णं घोलइ ॥४॥
जे आवत्त समुट्ठिय चङ्गा । ते जि णाइँ तणु-तिवलि-तरङ्गा ॥५॥
जे जल-हत्थि-कुम्भ सोहिल्ला । ते जि णाइँ थण अद्धुम्मिल्ला ॥६॥
जो डिण्डीर-णियरु अन्दोलइ । णावइ सो जेँ हारु रङ्खोलइ ॥७॥
जं जलयर-रण-रङ्गिउ पाणिउ । त जि णाइँ तम्बोलु समाणिउ ॥८॥
मत्त-हत्थि-मय-मइलिउ जं जलु । तं जि णाइँ किउ अक्खिहिँ कज्जलु ॥९॥
जाउ तरङ्गिणिउ अवर-ओहउ । ताउ जि भङ्गुराउ ण भउहउ ॥१०॥
जाउ भमर-पन्तिउ अल्लीणउ । केसावलिउ ताउ ण दिण्णउ ॥११॥

[२] राजा वसन्तने डोला और तोरणोंसे सजे द्वार वाले वसन्तश्री के घरमें प्रवेश किया। कमलोंके वासगृहोंमें शब्दरूपी नूपुर था। मधुकरियोंका अन्तःपुर उसमें बसा हुआ था। उद्यानोंमें कोयलरूपी कामिनी थी। लतागृहके स्थानोंमें शुकरूपी सामन्त थे। सरोवरोंमें कमलोंके छत्र-दण्ड थे। पहाड़ोंके शिखरोंपर मयूरका नृत्य (साहुलउ) था। आम्रवृक्षोंमें कुसुम और मंजरीकी पताकाएँ थीं। केदार-वृक्षोंमें दवनालतारूपी भाण्डार-रक्षक थे। शाखाओंमें वन्दररूपी माली थे। मकरंदमें मधुकररूपी मत्त बाल थे। लहरोंके आवासमें सुन्दर ताल था। अभिनय फलोंके भोजन-गृहोंमें अग्रभोजक थे। इस तरह गजराज कामदेवसे आन्दोलित विरहीको जलाता हुआ वसन्त आ पहुँचा। आते हुए वसन्तकी इस तरहकी ऋद्धिको देखकर मधु, इक्षुरस और सुरासे मस्त, भोली-भाली नर्वदा नदीरूपी बाला ऐसी मचल उठी, मानो कामदेवकी रति ही मचल उठी हो ॥१-९॥

[३] समुद्रको जाती हुई उसने तुरन्त अपनी साजसज्जा बना ली। कल-कल करती जलकी धाराएँ, उसके नूपुरोंकी झंकार थी, कान्तिवाले किनारे उसकी ओढ़नी थी, उछलता-खलबलाता जल उसकी करधनीकी ध्वनिको व्यक्त कर रहा था। जो बढ़िया आवर्त उठ रहे थे वही उसके शरीरकी त्रिबलि-तरंगके समान थे। जो रोमिल शरीर जलहाथियोंके कुंभ-स्थल थे वही उसके अध-खुले स्तन थे। हिलता-डुलता फेनसमूह ही हारके रूपमें शोभित हो रहा था। जलचरोंके युद्धसे रंगा हुआ पानी ही उसका ताम्बूल था। मदमाते हाथियोंके मदजलसे मटमैला पानी ही आँखोंका काजल था, ऊपर नीचे आने वाली तरंगें ही बाहुओंका चित्र राग थीं। उसकी आश्रित भ्रमरमाला ही केशकलाप थी ॥१-११॥

घत्ता

मज्झें जन्तिएँ मुहु दरसन्तिएँ माहेसर-लङ्क-पईवहुँ।
मोहुप्पाइउ णं जरु लाइउ तहुँ सहसकिरण-दहगीवहुँ ॥१२॥

[४]

सो वसन्तु सा रेवा तं जलु। सो दाहिण-मारुउ सिय-सीयलु ॥१॥
ताइँ असोय-णाय-चूय-वणइँ। महुअरि-महुर-सरइँ लय-भवणइँ ॥२॥
ते धुयगाय ताउ कीरोलिउ। ताउ कुसुम-मञ्जरि-रिञ्छोलिउ ॥३॥
ते पल्लव सो कोइल-कलयलु। सो केयइ-केसर-रय-परिमलु ॥४॥
ताउ णवल्लउ मल्लिय-कलियउ। दवणा-मञ्जरियउ णव-फलियउ ॥५॥
ते अन्दोला तं जुवईयणु। पेक्खेंवि सहसकिरणु हरिसिय-मणु ॥६॥
सहुँ अन्तेउरेण गउ तेत्तहेँ। णम्मय पवर महाणइ जेत्तहेँ ॥७॥
दूरे थिउ आरक्खिय-णिय-बलु। जलु जन्तिएँहिँ णिरुद्धउ णिम्मलु ॥८॥

घत्ता

वड्ढिय-हरिसउ जुवइहिँ सरिसउ माहेसरपुर-परमेसरु।
सलिलब्भन्तरेँ माणस-सरवरेँ ण पइट्ठु सुरिन्दु स-अच्छरु ॥९॥

[५]

सहसकिरणु सहसत्ति णिउड्डेंवि। आउ णाइँ महि-वहु अवरुण्डेंवि ॥१॥
दिट्ठु मउडु अद्धुम्मिल्लउ। रवि व दरुग्गमन्तु सोहिल्लउ ॥२॥
दिट्ठु णिडालु वयणु वच्छत्थलु। ण चन्दद्धु कमलु णह-मण्डलु ॥३॥
पभणइ सहसरासि 'लइ ढुक्कहोँ। जुज्झहोँ रमहोँ ण्हाहोँ उलुक्कहोँ' ॥४॥
तं णिसुणेंवि कडक्ख-विक्खेविउ। वुड्डउ उक्कराउ महएविउ ॥५॥
उप्परि-करयल-णियरु परिट्ठिउ। णं रत्तुप्पल-सण्डु समुट्ठिउ ॥६॥
ण केयइ-आरामु मणोहरु। णक्ख-सूइ कडउल्ला केसरु ॥७॥

इस प्रकार मुँह दिखाकर, बीचमें जाती हुई उस रेवाको देखकर माहेश्वर और लंकापति दोनों अधिपतियोंको मोह और ज्वर उत्पन्न हो गया ॥१२॥

[४] वह वसन्त, वह रेवा, वह पानी और वही अमृत शीतल दक्षिण-पवन, वे, अशोक, नाग और आम्रके वन। वे मधुकरियोंसे मधुर और सरस मुखरित लतागृह, वे हिलते-डुलते क्रीड़ारत शुकसमूह, कुसुम मंजरियोंकी वह कतार। वे किसलय, कोयलका वह कलकल। केतकी पुष्पका वह रस और परिमल। नई जूहीका वह चटकना, वह नई दवना मंजरी, वे झूले, वह युवतीजन, यह सब देखकर माहेश्वर अधिपति सहस्र-किरणका मन प्रसन्न हो उठा। अन्तःपुरके साथ वह पहुँचा जहाँ नर्वदाका प्रवाह अत्यन्त वेगशील था। उसने यन्त्रोंसे नदीके स्वच्छ पानीको रुकवा दिया। रत्नको और सेनाको दूर ही छोड़ दिया ॥१-८॥

इस तरह माहेश्वर पुर-परमेश्वर वह, सुन्दरियोंके साथ पानीके भीतर घुसा। मानो इन्द्र ही अप्सराओंके साथ मानसरोवरमें घुसा हो ॥९॥

[५] सहस्रकिरण जलमें डूबा, और धरावधूसे मिलकर तुरन्त ही ऊपर निकल आया, उसका अधडूबा मुकुट, अधउगे सूरजकी तरह मालूम हो रहा था, भाल, मुख और वक्षःस्थल क्रमसे अर्धचन्द्र कमल और आकाशमण्डलकी तरह दिखाई दिये। इतनेमें सहस्रकिरणने कहा, "लो, छुओ, लड़ो, रचो, नहाओ, पियो" यह सुनते ही महादेवी तिरछी निगाहसे देखकर, सिर पैरसे डूब गईं, फिर उसकी दोनों हथेलियाँ धीरे-धीरे ऐसे ऊपर निकलीं, मानो रक्तकमलोंका समूह ही ऊपर उठ रहा हो, या सुन्दर केतकीका उपवन हो। नखसूची और कड़े मानो केशर-

महुयर सर-भरेण अल्लीणा । कामिणि-भिसिणि भणें वि ण लीणा ॥८॥

घत्ता

सलील-तरन्तहुँ उम्मीलन्तहुँ मुह-कमलहुँ केइ पधाइय ।
आयइँ सरसइँ किय(र ?)तामरसइँ णरवइहें भन्ति उप्पाइय ॥९॥

[६]

अवरोप्परु जल-कील करन्तहुँ । घण-पाणालि - पहर मेल्लन्तहुँ ॥१॥
कहि मि चन्द-कुन्दुज्जल-तारेंहिँ । धवलिउ जलु तुट्टन्तेंहिँ हारेंहिँ ॥२॥
कहि मि रसिउ णेउरेंहिँ रसन्तेंहिँ । कहि मि फुरिउ कुण्डलेंहिँ फुरन्तेंहिँ ॥३॥
कहि मि सरस-तम्वोलारत्तउ । कहि मि वउल-कायम्वरि-मत्तउ ॥४॥
कहि मि फलिह कप्पूरेंहिँ वासिउ । कहि मि सुरहि मिगमय-वामीसिउ ॥५॥
कहि मि विविह-मणि-रयणुज्जलियउ । कहि मि धोअ-कज्जल-संवलियउ ॥६॥
कहि मि वहल-कुङ्कुम-पिञ्जरियउ । कहि मि मलय-चन्दण-रस-भरियउ ॥७॥
कहि मि जक्खकद्दमेंण करम्विउ । कहि मि भमर-रिञ्छोलिहि चुम्विउ ॥८॥

घत्ता

विद्दुम-मरगय- इन्दणील-सय- चामियर-हार-संघाएँहिँ ।
वहु-वण्णुज्जलु णावइ णहयलु सुरधणु-घण-विज्जु-वलायहिँ ॥९॥

[७]

का वि करन्ति केलि सहुँ राएं । पहणइ कोमल-कुवलय-घाए ॥१॥
का वि मुद्ध दिट्ठएँ सुविसालएँ । का वि णवल्लएँ मल्लिय-मालएँ ॥२॥
का वि सुयन्धेंहिँ पाडलि-हुल्लेंहिँ । का वि सु-पूयफलेंहिँ वउल्लेंहिँ ॥३॥
का वि जुण्ण-पण्णेंहिँ पट्टणिएँहिँ । का वि रयण-मणि-अवलम्वणिएँहिँ ॥४॥
का वि विलेवणेंहिँ उव्वरियहिँ । का वि सुरहि-दवणा-मञ्जरियहिँ ॥५॥
कहँ वि गुज्झु जलें अद्धुम्मिल्लउ । णं मयरहर-सिहरु सोहिल्लउ ॥६॥

रज थे या मानो मधुकरके स्वर-भारसे आश्रित, भ्रमरी रूपी कामिनी लीन हो गई हो ॥१-८॥

पानीमे तैरती हुई और दौड़ती हुई किसीके उन्मीलित मुख-कमलको देखकर, राजाको यह भ्रम हो गया कि यह सरस मुख है या रक्तकमल ॥ ६ ॥

[६] एक दूसरेपर जलकी बौछार फेकते हुए वे जलक्रीड़ा करने लगे। कहींपर, पानी, चन्द्र और कुंद फूलकी तरह स्वच्छ और शुभ्र, टूटे हुए हारोंमे सफेद हो गया था। कही, झंकृत नूपुरो से झंकृत हो उठा। कहीं स्फुरित कुंडलोसे चमक रहा था, कहीं सरसपानोसे लाल हो उठा, तो कहीं वकुल और मदिरासे मत्त। कहीं फलिह और कपूरसे सुवासित, तो कहीं सुरभित कस्तूरीसे मिश्रित था। कहीं विविध मणि-रत्नोसे उज्ज्वल, तो कहीं धुले हुए काजलसे मिलित था। कहीं वहुत केशरसे पीला तो कहीं मलय चन्दनरससे भरित हो रहा था। कहीं सुगंधित चूर्णसे संचित था तो कहीं भ्रमरमालासे चुम्बित हो रहा था। विद्रुम, मरकत, इन्द्रनील, स्वर्ण और हीरोंके समूहसे रंगबिरंगा तथा उज्ज्वल वह पानी ऐसा लगता था मानो इन्द्र-धनुप, मेघ, विजली और वगुलोंसे चित्र-विचित्र आकाशतल हो ॥१-६॥

[७] कोई कोमल कमलसे प्रहार करती हुई राजाके साथ क्रीड़ा कर रही थी, कोई मुग्ध विशाल दृष्टिसे, कोई नवीनतम मालती मालासे, कोई सुगन्धित पाटल पुष्पसे, कोई पूगफल और वकुलसे। कोई जीर्ण पत्तो और पट्टणियोसे, कोई रत्नमणियो की मालाओंसे, कोई बचे हुए अवलेपसे और कोई दवना मंजरीसे प्रहार कर रही थीं। किसीका जलमे छिपा हुआ आधा निकला गहना ऐसा लग रहा था मानो कामदेवका मुकुट ही सोह रहा

कहेँ वि कसण रोमावलि दिट्ठी। काम-वेणि णं गलेँवि पइट्ठी ॥७॥
कहेँ वि थणोवरि ललइ अहोरणु। णाइँ अणङ्गहोँ केरउ तोरणु ॥८॥

घत्ता

कहँ वि स-रुहिरइँ दिट्ठइँ णहरइँ थण-सिहरोवरि सु-पहुत्तइँ।
वेगेँण वलग्गहोँ मयण-तुरङ्गहोँ ण पायइँ छुडु छुडु खुत्तइँ ॥९॥

[८]

तं जल-कील णिएवि पहाणहुँ। जाय वोल्ल णहयलेँ गिव्वाणहुँ ॥१॥
पभणइ एक्कु हरिस-सपण्णउ। 'तिहुअणेँ सहसकिरणु पर धण्णउ ॥२॥
जुवइ-सहासु जासु स-वियारउ। विब्भस - हाव - भाव-वावारउ ॥३॥
णलिणि-वणु व दिणयर-कर-इच्छउ। कुमुय-वणु व ससहर तण्णिच्छउ(?)॥४॥
कालु जाइ जसु मयण-विलासेँ। माणिणि - पत्तिज्जवणायासेँ ॥५॥
अच्छउ सुरउ जेण जगु मत्तउ। जल-कीलएँ जि किण्ण पज्जत्तउ' ॥६॥
त णिसुणेँवि अवरेक्कु पवोल्लिउ। 'सहसकिरणु केवल सलिलोल्लिउ ॥७॥
इत्थु पवाहु मणोहर-वन्तउ। जो जुवइहिँ गुज्झन्तु वि पत्तउ ॥८॥

घत्ता

जेण खणन्तरेँ सलिलब्भन्तरेँ गलियंसु-धरण-वावारएँ।
सरहसु ढुक्कउ माणेँवि मुक्कउ अन्तेउरु एक्कएँ वारएँ ॥ ९॥

[९]

रावणो वि जल-कील करेप्पिणु। सुन्दर सियय-वेइ विरएप्पिणु ॥१॥
उप्परि जिणवर-पडिम चडावेँवि। विविह-विताण-णिवहु वन्धावेँवि ॥२॥
तुप्प-खीर-सिसिरेँहिँ अहिसिञ्चेँवि। णाणाविह-मणि-रयणेँहिँ अञ्चेँवि ॥३॥
णाणाविहहिँ विलेवण-भेएँहिँ। दीव - धूव-वलि - पुप्फ-णिवेएँहिँ ॥४॥
पुज्ज करेँवि किर गायइ जावेँहिँ। जन्तिएहिँ जलु मेल्लिउ तावेँहिँ ॥५॥
पर-कलत्तु संकेयहोँ ढुक्कउ। णाइँ वियड्ढहिँ माणेँवि मुक्कउ ॥६॥

हो। किसीकी काली रोमावली ऐसी लगती थी मानो कामवेणी ही गलकर प्रविष्ट हो गई है। किसीके स्तनपर दुपट्टा ऐसा लहरा रहा था मानो कामदेवका तोरण हो, किसीके स्तनके अग्रभागमे लगे रक्तरंजित नख-चिह्न ऐसे लगते थे मानो वेगसे जाते हुए काम-तुरगके पैरोंके घाव ही हो ॥१-८॥

[८] जलक्रीडाको देखकर आकाशमें प्रधान-प्रधान देवोमे बाते होने लगीं। एकने प्रसन्न होकर कहा,—"तीनो लोकोमे एक सहस्रकिरण ही धन्य है जिसके पास, विभ्रम और हाव-भाव युक्त विकारशील हजारो स्त्रियाँ हैं। वैसे ही जैसे सूर्यके पास इच्छित कमलवन और चन्द्रके पास कुमुदवन हैं। काम-विलासिनी और मानिनी स्त्रियोके मनाने-रिझानेमे ही जिसका समय जाता है। जिससे दुनिया मतवाली हो रही है, वह सुरति उसे प्राप्त है। और फिर जल-क्रीड़ामे क्या नहीं मिलता।" यह सुनकर दूसरेने कहा, "सहस्रकिरण केवल जलका बगुला है।" यहाँ नदीका सुन्दर प्रवाह स्त्रियोके द्वारा छिप जानेपर भी पुन. प्राप्त हो जाता है, और जिसके कारण पानीके भीतर, ढीले वस्त्रोंको धारण करनेकी चेष्टा करती हुई स्त्रियाँ मान छोड़कर, तेजीसे क्षणभरमे ही उसके पास आ पहुँचती हैं ॥१-६॥

[६] रावणने भी जल-क्रीडा करनेके बाद, बालूकी सुन्दर वेदी बनाई और उसपर जिनवरकी प्रतिमा रखकर, तरह-तरहके वितान बॉधे, फिर घी, दूध और दहीसे अभिषेककर वह नाना रत्नमणियोसे उसकी अर्चा करने लगा। भॉति-भॉतिके विलेपन, दीप, धूप, पुष्प, नैवेद्यसे पूजा करके, ज्यों ही उसने गान प्रारम्भ किया, त्यो ही, ऊपरसे यंत्रोंने पानी ऐसे छोड़ दिया मानो संकेत स्थानपर पहुँची हुई परस्त्रीका धूर्तोंने आनन्द लेकर, उसे छोड़

धाइउ उहय-तडइँ पेल्लन्तउ । जिणवर-पवर-पुज्ज रेल्लन्तउ ॥७॥
दहमुहु पडिम लेवि विहडप्फडु । कह वि कह वि णीसरिउ वियावडु ॥८॥

घत्ता

भणइ 'णरेसहोँ तुरिउ गवेसहोँ किउ जेण एउ पिसुणत्तणु ।
किं बहु-वुत्तेण तासु णिरुत्तेण दक्खवमि अज्जु जम-सासणु' ॥९॥

[१०]

तो एत्थन्तरेँ लद्धाएसा । गय मण-गमणाऽणेय गवेसा ॥१॥
रावणेण सरि दिट्ठ वहन्ती । भुय-महुयर-दुक्खेण व जन्ती (?) ॥२॥
चन्दण-रसेँण व बहल-विलित्ती । जल-रिद्धिएँ ण जोव्वणइत्ती ॥३॥
मन्थर-वाहेण व वीसत्थी । जच्च-पट्टवत्थइँ व णियत्थी ॥४॥
वीणाहोरणइँ व पइगुत्ती । वालाहिय-णिद्दाएँ व सुत्ती ॥५॥
मल्लिव-दन्तेहिँ व विहसन्ती । णीलुप्पल-णयणेँहिँ व णिएन्ती ॥६॥
वउल-सुरा-गन्धेण व मत्ती । केयइ हत्थेँहिँ व णच्चन्ती ॥७॥
महुअरि-महुर-सरु व गायन्ती । उज्झर-मुरवाइँ व वायन्ती ॥८॥

घत्ता

अरमिय-रामहोँ णिरु णिक्कामहोँ आरूसेँ वि परम-जिणिन्दहोँ ।
पुज्ज हरेप्पिणु पाहुड्ड लेप्पिणु गय णावइ पासु समुद्दहोँ ॥९॥

[११]

तहिँ अवसरेँ जे किङ्कर धाइय । ते पडिवत्त लएप्पिणु आइय ॥१॥
कहिय सुणन्तहोँ खन्धावारहोँ । 'लइ एत्तडउ सारु संसारहोँ ॥२॥
माहेसरवइ णर-परमेसरु । सहसकिरणु णामेण णरेसरु ॥३॥
जा जल-कील तेण उप्पाइय । सा अमरेहि मि रसेँ वि ण णाइय ॥४॥

दिया हो। दोनों तटोंको पेलता, और जिनवरकी पूज्यप्रतिमाको ठेलता हुआ, वह पानी बढ़ने लगा। तब हड़बड़ाकर रावण जिन-प्रतिमाको लेकर, व्याकुलतासे किसी तरह बाहर निकला ॥१-८॥

उसने कहा, "राजाओ जल्दी उसे खोज लाओ जिसने यह नीचता की है, आज मैं उसे अवश्य ही यमका शासन दिखाऊँगा। बहुत कहनेसे कोई लाभ नहीं ?" ॥९॥

[१०] इतनेमें उसके आदेशसे लोग पता लगाने गये। रावणने देखा कि नर्वदा नदी, मृत मधुकरोंके दुखसे ही बहती हुई जा रही थी, चन्दन-रससे लिप्त, जलकी वृद्धिसे वह यौवनवतीकी तरह, जान पड़ती थी। मन्द प्रवाहसे विश्राम करती-सी, उत्तम वस्त्रोंसे सहित, ऊपरके वस्त्र (दुपट्टा) से अपनेको छिपाती-सी, बालसर्पको नींदसे सोती हुई-सी, मल्लिका कुसुमके दाँतोंसे हँसती-सी, नील कमलोंके नेत्रोंसे देखती-सी, बकुल-सुराकी गंधसे मदमाती-सी, हाथोंसे केतकीको नचाती, मधुकरोंके मधुर स्वरमें गाती और निर्झरोंके मृदङ्गको बजाती-सी वह दीख पड़ती थी ॥१-८॥

स्त्रीका रमण नहीं करनेवाले परम निष्काम, परम जिनेन्द्रसे रूठकर ही, मानो, नर्वदा नदी उनकी पूजाके द्रव्यका हरणकर और उपहार लेकर अपने प्रिय समुद्रके पास जा रही थी ॥९॥

[११] जो अनुचर खोज करने गये थे, वे खबर लेकर लौट आये। सुनते हुए स्कन्धावारसे उन्होंने कहा, "संसारमें बस इतना ही सार पाया कि माहेश्वरपति नरश्रेष्ठ, सहस्रकिरण, नामके राजाने जैसी जल-क्रीड़ा की, वैसी करना शायद देवता भी नहीं जानते।" ॥१-४॥

सुव्वइ कासु को वि किर सुन्दरु । सुरवइ भरहु सयर-चक्केसरु ॥५॥
महवा सणक्कुमारु ते सयल वि । णउ पावन्ति तासु एक्क-यल वि ॥६॥
का वि अउव्व लील विम्माणिय । धम्मु अत्थु विण्णि वि परियाणिय ॥७॥
काम-तत्तु पुणु तेण जें णिम्मिउ । अण्ण रमन्ति पसव-कोढ्ढमिउ ॥८॥

घत्ता

मइ पहवन्तेंण सुयणें तवन्तेंण गयणत्थु पयङ्गु ण णा(भा?)वइ ।
एण पयारेंण पिय-वावारेंण थिउ सलिलें पईसेंवि णावइ' ॥९॥

[१२]

अवरेक्केण वुत्तु 'मइँ लक्खिउ । सच्चउ सव्वु एण जं अक्खिउ ॥१॥
ज पुणु तहों केरउ अन्तेउरु । ण पच्चक्खु जें मयरद्धय-पुरु ॥२॥
णेउर-सुरयहुँ पेक्खणया-हरु । लायण्णम्भ-तलाउ मणोहरु ॥३॥
सिर-मुह-कर-कम-कमल-महासरु । मेहल-तोरणाहँ छुण-वासरु ॥४॥
थण-हत्थिहिँ साहारण-काणणु । हार-सग्ग-वच्छहों गयणङ्गणु ॥५॥
अहर - पवाल - पवालायायरु । दन्त - पन्ति - मोत्तिय-सदणयरु ॥६॥
जीहा-कलयण्ठिहिँ णन्दणवणु । कण्णन्दोलयाहँ वेत्तत्तणु ॥७॥
लोयण-भमरहुँ केसर-सेहरु । भमुहा-भङ्गहुँ णट्टावय-घरु ॥८॥

घत्ता

काइँ वहुत्तेंण (पुण) पुणरुत्तेंण मयणग्गि-डमरु संपण्णउ ।
णरहुँ अणन्तहुँ मण-धण-वन्तहुँ धुउ चोरु चण्डु उप्पण्णउ' ॥९॥

[१३]

अवरेक्केण वुत्तु 'मइँ जन्तइँ । दिट्ठइँ णिम्मलेँ सलिलेँ तरन्तइँ ॥१॥
अइ सुन्दरइँ सुकिय-कम्माइँ व । सुघडियाइँ अहिणव-पेम्माइँ व ॥२॥
णिग्गलाइँ सु-किविण-हिययाइँ व । णिउण-समासिय सुकइ-पयाइँ व ॥३॥

और भी जो सुन्दर कामदेव, इन्द्र, भरत, सगर चक्रवर्ती अथवा सनत्कुमार आदि सुने जाते हैं वे भी इसके एक अंशको नहीं पा सकते। उसने अपूर्व जल-क्रीड़ा की है। वह धर्म और अर्थ दोनोंको जानता है। काम तत्त्व तो वही समझता है, और लोग तो सुरति (पसवकोद्भिउ) का रमण करते हैं। दुनियामे मेरे रहते और तपते हुए आकाशका सूर्य शोभा नहीं पाता इसीलिए मानो वह राजा प्रिय व्यापार पूर्वक जलमे प्रविष्ट हो गया है ॥५–६॥

[१२] इतनेमे किसी दूसरेने कहा, "इसने जो सुनाया वह सच है। मैंने भी यही सब देखा है।" उसका अन्त.पुर सचमुच कामपुरीके समान जान पड़ता है। उसमे सुन्दर नूपूर, मुरज, प्रेक्षणक गृह हैं। वह मानो सौन्दर्य जलसे भरा सुन्दर सरोवर ही है। सिर, मुख, कर और चरणरूपी कमलोंका वह महासरोवर है। करधनी रूपी तोरणोंसे सजा हुआ वह उत्सवका दिन स्तन रूपी हाथियोंसे साहारण-कानन, हाररूपी कल्पवृक्षोंसे गगनांगन, अधररूपी प्रवालोंसे प्रवालाकर, दन्त-पंक्ति रूपी मोतियोंसे रत्नाकर, जीभ और कलकंठोंसे नन्दनवन, कानोंके आन्दोलनसे वेत्र वन, नेत्ररूपी भ्रमरोंसे केसर-मुकुट और घूमती हुई भौंहोंसे नाचघर सा लगता है। वहुत वार-वार कहनेसे क्या वह अन्तःपुर भयंकर कामाग्निकी तरह सम्पूर्ण हो रहा है, मानो मन रूपी धनवाले वहुतसे मनुष्योंके लिए प्रचण्ड चोर ही उत्पन्न हो गया है।"॥१–६॥

[१३] तब किसी एकने कहा, कि मैंने निर्मल पानीमे तैरते हुए जलयन्त्र देखे हैं। जो पुण्यकर्मकी तरह अत्यन्त सुन्दर, अभिनव प्रेमकी तरह अत्यन्त सुघर, अत्यन्त कृपणके हृदयकी तरह कठोर (जंजीरोंसे बँधे), सुकविके पदोंकी तरह, णिउदो (शिष्ट शब्द-न्यास, और दूसरे पक्षमें, काठकी

सचारिमइँ कु-पुरिस-धणाइँ व । कारिमाइँ कुट्टणि-वयणाइँ व ॥४॥
पइरिक्कइँ सज्जण-चित्ताइँ व । वद्धइँ अत्थइत्त-वित्ताइँ व ॥५॥
दुल्लङ्घणियइँ सुकलत्ताइँ व । चेट्ठ-विहूणइँ वुड्ढन्ताइँ व ॥६॥
वारि वमन्ति ताइँ सिरि-णासेँहिँ । उर-कर - चरण - कण्ण-णयणासेहिँ ॥७॥
तेहिँ एउ जलु थम्भेँ वि मुक्कउ । तेण पुज्ज रेल्लन्तु पढुक्कउ ॥८॥

घत्ता

त णिसुणेप्पिणु 'लेहु' भणेप्पिणु असिवरु सइँभु वेण पकड्ढिउ ।
सहइ समुज्जलु ससि-कर-णिम्मलु ण पत्त-दाण-फलु वड्ढिउ ॥९॥

❀ * ❀

जल-कीलाएँ सयम्भू चउमुहएव च गोग्गइ-कहाएँ ।
भद्द (ट्ट) च मच्छवेहे अज्ज वि कइणो ण पावन्ति ॥

❁

[१५. पण्णारहमो संधि]

दाण-मयन्धेँण गय-गन्धेँण जेम मइन्दु वियट्टउ ।
जग-कम्पावणु रणेँ रावणु सहसकिरणेँ अब्भिट्टउ ॥१॥

[१]

आएसु दिण्णु णिय-किङ्करहुँ । वज्जोयर - मयर - महोयरहुँ ॥१॥
मारिच्च-मयहुँ सुय-सारणहुँ । इन्दइकुमार - घणवाहणहुँ ॥२॥
हथ - हत्थ - पहत्थ - विहीसणहुँ । विहि - कुम्भयण्ण - खर-दूसणहुँ ॥३॥
ससिकर - सुग्गीव - णील - णलहुँ । अवरहु मि अणिट्ठिय-भुयवलहुँ ॥४॥
उद्धाइय मच्छर-मलिय-कर । भीसावण - पहरण - णियर-धर ॥५॥
सहसयरु वि जुतइहिँ परियरिउ । छुड्डु जे छुड्डु सलिलहोँ णीसरिउ ॥६॥
ताणन्तरेँ तूरइँ णिसुणियइँ । पणवेप्पिणु भिच्चहिँ पिसुणियइँ ॥७॥
'परमेसर पारक्कउ पडिउ । लइ पहरणु समरु समावडिउ' ॥८॥

छोटी-छोटी कलशियों) से रचित कुपुरुषके धनकी तरह, चंचल, कुट्टनीके वचनोंकी तरह कृष्ण, सज्जनके वचनोंकी तरह निपुण, भिखारीके धनकी तरह अच्छी तरह बँधे हुए, सती स्त्रीकी तरह दुर्लंघ्य, डूबते हुए व्यक्तिकी तरह चेष्टारहित हैं। वे यन्त्र सिर, नाक, उर, हाथ, चरण, कान, नेत्र और मुखोंसे पानी उगलते है, उन्हींसे यह पानी रोककर उसने बादमें छोड़ दिया है। इसीसे पूजाको बहाता हुआ पानी यहाँ आ पहुँचा है। यह सुनकर रावणने "पकड़ो" कहकर अपने हाथमें तलवार खींच ली। चन्द्रकिरणोंकी तरह निर्मल और उज्ज्वल वह तलवार ऐसी लगती थी मानो सत्पात्रको दिये हुए दानका फल ही बढ़ रहा हो ॥१-६॥

जल-क्रीड़ामें स्वयम्भूको, गोग्रह-कथामें चतुर्मुखको, और मत्स्य-वेधनमें 'भद्र' को आज भी कविलोग नहीं पा सकते।

पन्द्रहवीं सन्धि

मदान्ध गंधगज जैसे सिंहपर टूट पड़ता है वैसे ही, जगको कम्पित करनेवाला रावण, सहस्रकिरणपर टूट पड़ा ॥१॥

[१] उसने अपने अनुचरों तथा मारीच, मय, सुक, सारण, इन्द्रकुमार, मेघवाहन, हय, हस्त, प्रहस्त, विभीषण, कुम्भकर्ण, खर और दूषण, शशिकर, सुग्रीव, नील, नल, तथा और दूसरे अनिर्दिष्ट बाहुवाले वीरोंने मत्सरसे मलिन होकर, भयंकर हथियारोंको उठा लिया। इधर सहस्रकिरण भी वनितासमूहसे घिरा हुआ, जल्दी-जल्दी पानीसे निकला। इतनेमें तूर्य सुनाई देने लगे। अनुचरोंने आकर निवेदन किया, "देव! शत्रु आक्रमण कर रहा है, हथियार ले लीजिए। युद्ध निकट

घत्ता

तं णिसुणेप्पिणु धणु करेँ लेप्पिणु णिसियर-पवर-समूहहोँ।
थिउ समुहाणणु णं पञ्चाणणु णाइँ महा-गय,जूहहोँ ॥९॥

[२]

ज जुज्झ-सज्जु थिउ लेवि धणु। त डरिउ असेसु वि जुवइयणु ॥१॥
मम्भीसिउ राएँ चुण्ण-मणु। 'किं अण्णहोँ णाउँ सहसकिरणु ॥२॥
एक्केकहोँ एक्केकउ जेँ करु। परिरक्खइ जइ तो कवणु डरु ॥३॥
अच्छहोँ भुव-मण्डवेँ वइसरेँवि। जिह करिणिउ गिरि-गुह पइसरेँवि ॥४॥
जा दलमि कुम्भि-कुम्भत्थलइँ। होसन्ति कुडुम्बिहिँ उक्खलइँ ॥५॥
जा खणमि विसाणइँ पवराइँ। होसन्ति पयहोँ पच्चवराइँ ॥६॥
जा कड्ढमि करि-सिर-मोत्तियइँ। होसन्ति तुम्ह हारत्तियइँ ॥७॥
जा फाडमि फरहरन्त-धयइँ। होसन्ति वेणि-बन्धण-सयइँ ॥८॥

घत्ता

एम भणेप्पिणु त धीरेप्पिणु णरवइ रहवरेँ चडियउ।
जुवइहुँ करुणेँण(?) × × विणु अरुणेँण णाइँ दिवायरु पडियउ ॥९॥

[३]

एत्थन्तरेँ आरोडिउ भडेँहिँ। ण केसरि मत्त-हत्थि-हडेँहिँ ॥१॥
सो एक्कु अणन्तउ जइ वि बलु। पप्फुल्लु जो वि तहोँ मुह-कमलु ॥२॥
जं लइउ अखत्तें सहसयरु। त चविउ परोप्परु सुर-पवरु ॥३॥
'अहोँ अहोँ अणीइ रक्खेहिँ किय। एक्कु एँ बहु अण्णु वि गयणेँ थिय ॥४॥
पहरणइँ पवण-गिरि-वारि-हवि। आएहिँ सरिस जणेँ भीरु ण वि' ॥५॥
त णिसुणेँवि णिसियर लज्जियइँ। थिय महियलेँ विज्ज-विवज्जियइँ ॥६॥

आ गया है।" यह सुनते ही, धनुष हाथमें लेकर वह राक्षसोंके प्रबल समूहके सम्मुख ऐसे स्थित हो गया मानो महागजघटाके सन्मुख सिंह हो गया हो ॥१-६॥

[२] धनुष लेकर, उसे युद्धके लिए तैयार देखकर स्त्रियाँ घबराईं, तब खिन्नमन होकर उसने ढाढ़स बँधाते हुए कहा, 'डरो मत। क्या सहस्रकिरण किसी दूसरेका नाम है। तुम्हें क्या डर है, मेरा एक-एक हाथ तुम्हारी रक्षा करेगा? धरतीमण्डपमें तुम लोग उसी तरह बैठी रहो, जैसे हथिनी गिरि-गुहामें घुसकर छिपी रहती है। मैं जो हाथियोंके कुम्भस्थलोंको फाड़ूँगा उससे परिवारके लिए ओखली हो जायगी और जो बड़े-बड़े हाथी-दाँत उखाड़ूँगा उनसे प्रजाको मूसल मिल जायँगे। जो उनके सिरोंसे मोती निकालूँगा उनसे तुम्हारे हार बन जायँगे और जो फहराती हुई पताकाओंके कपड़े फाड़ूँगा उनसे चोटी बाँधनेके सैकड़ों फीते (रिबेन) बन जायँगे।" इस तरह उन्हें धीरज बँधाकर, वह वीर नरवर, रथपर चढ़ गया। स्त्रियोंकी करुणासे वह ऐसा लग रहा था मानो बिना सारथिका सूर्य ही आ पड़ा हो ॥१-६॥

[३] इसी बीच, योद्धाओंने उसे रोका, मानो हाथियोंके झुण्डने शेरको रोका हो। वह वीर अकेला ही था, जब कि सेना अनन्त थी। फिर भी उसका मुखकमल एक दम खिला हुआ था। उसे इस तरह अकेला देखकर, देवोंने आपसमें (बातों-बातोंमें) कहा, "अरे राक्षस, यह बहुत बड़ी अनीति कर रहे हैं, वह अकेला है, और ये बहुत हैं, उसपर भी ये आकाशमें स्थित होकर पवन, पहाड़, पानी और आगके अस्त्रोंसे हमला कर रहे है, इनके समान कायर कोई भी नहीं है।" यह सुनकर राक्षस लोग बहुत ही लज्जित हुए। अपनी-अपनी विद्याएँ छोड़कर वे

तो सहसकिरणु महसहिँ करेँहिँ । णं विद्धइ सहस-सहस-सरेँहिँ ॥७॥
दूरहोँ जि णिरुद्धउ वइरि-वलु । ण जम्बूदीवेँ उवहि-जलु ॥८॥

घत्ता

अमुणिय-थाणहोँ किय-सधाणहोँ दिट्ठि-मुट्ठि-सर-पयरहोँ ।
पासु ण ढुक्कइ ते उल्लुकइ तिमिरु जेम दिवसयरहोँ ॥९॥

[४]

अट्ठावय - गिरि - कम्पावणहोँ । पडिहारेँ अक्खिउ रावणहोँ ॥१॥
'परमेसर एक्केँ होन्तएँण । वलु सयलु धरिउ पहरन्तएँण ॥२॥
रणेँ रहवरु एक्कु जेँ परिभमइ । सन्दण-सहासु ण परिभमइ ॥३॥
धणु एक्कु एक्कु णरु दुइ जेँ कर । चउदिसहिँ णवर णिवडन्ति सर ॥४॥
करु कहोँ वि कहोँ वि उरु कप्परिउ । करि कहोँ वि कहोँ वि रहु जज्जरिउ' ॥५॥
तं णिसुणेँवि उवहि जेम खुहिउ । लहु तिजगविहूसणेँ आरुहिउ ॥६॥
गउ तेत्तहेँ जेत्तहेँ सहसकरु । कोक्किउ 'मरु पाव पहरु पहरु ॥७॥
हउँ रावणु दुज्जउ केण जिउ । जेँ पाराउट्ठउ धणउ किउ' ॥८॥

घत्ता

एम भणन्तेँण विद्धन्तेँण स-रहि महारहु छिण्णउ ।
पणइ-सहासेँहिँ चउ-पासेँहिँ जसु चउरिसु विक्खिण्णउ ॥९॥

[५]

माहेसरपुर-वइ विरहु किउ । णिविसद्धेँ मत्त-गइन्देँ थिउ ॥१॥
णं अञ्जण-महिहरेँ सरय-घणु । उत्थरिउ स-मच्छरु गीढ-घणु ॥२॥

धरतीपर आ गये। तब सहस्रकिरण अपने हजार हाथोंसे प्रहार करने लगा मानो शेष नाग ही अपने हजार फनोंसे वेधन करने लगा हो। दूरसे उसने शत्रु सेनाको ऐसे रोक लिया मानो जम्बु द्वीपने समुद्रका जल रोक लिया हो। स्थानका विचारकर, तीर चढ़ाकर वह दृष्टि-मुष्टि और तीरोंसे ऐसा प्रहार कर रहा था कि शत्रुसमूह पास नहीं फटक पा रहा था, वह (युद्धमे) वैसे ही छिप गया जैसे सूर्योदयसे अन्धकार छिप जाता है ॥१-६॥

[४] इतनेमे, प्रतिहारोंने, कैलाश पर्वतको भी कॅपानेवाले रावणसे कहा—"परमेश्वर, अकेले होकर भी, उस एकने हमारी समस्त सेनाको प्रहारसे परास्त कर दिया। युद्धमे उसका एक ही रथ घूमता है, पर लगता ऐसा है मानो हजार रथ घूम रहे हों, धन्य है, कि वह अकेला है, और दो ही उसके हाथ हैं, फिर भी चारो दिशाओमे तीरोंकी वौछार हो रही है। किसीका हाथ, किसीका उर टूट-फूट गया है। किसीका हाथी तो किसीके रथ चकनाचूर हो गये हैं।" यह सुनते ही रावण, समुद्रकी भॉति क्षुब्ध हो उठा। शीघ्र ही त्रिजगभूषण हाथीपर चढ़कर वह सहस्रकिरणके पास पहुॅचा और ललकार कर बोला—"लो प्रहार करो, और मरो, मै रावण हूॅ। मुझे कौन जीत सकता है। मैंने धनदको भी विमुख कर दिया था।" यह कहकर उसने तीरोंकी वौछारसे महारथी सहस्रकिरणको रथसहित छिन्न-भिन्न कर दिया। तब चारो ओर फैले हुए वन्दीजनोंने चारो दिशाओंमें उसका यश फैला दिया ॥१-६॥

[५] तब, माहेश्वर पुरपति सहस्रकिरण, रथहीन होते ही, आधे ही पलमे हाथीपर जा वैठा। वह ऐसा लग रहा था मानो अंजन गिरि पर्वतपर शरदके नवमेघ ही प्रतिष्ठित हो। आवेगमे

सण्णाहु खुरुप्पें कप्परिउ । लङ्काहिउ कह व समुव्वरिउ ॥३॥
जें सव्वायामें मुअइ सर । लुअ-पक्ख पक्खि ण जन्ति घर ॥४॥
दससयकिरणेण णिरिक्खियउ । पच्चारिउ 'कहिँ धणु सिक्खियउ ॥५॥
जज्जाहि ताम अब्भासु करेँ । पच्छलेँ जुज्झेज्जहि पुणु समरेँ' ॥६॥
त णिसुणेँवि जमेँण व जोइयउ । कुञ्जरु कुञ्जरहोँ पचोइयउ ॥७॥
आसण्णे चोएँवि विगय-भउ । णरवइ णिडालेँ कोन्तेण हउ ॥८॥

घत्ता

जाम भयङ्करु असिवर-करु पहरइ मच्छर-भरियउ ।
ताम दसासेँण आयासेँण उप्पएवि पहु धरियउ ॥९॥

[६]

णिउ णिय-णिलयहोँ भय-वियलियउ । ण मत्त-महागउ णियलियउ ॥१॥
'मा मइ मि धरेसइ दहवयणु' । ण भइयएँ रवि गउ अत्थवणु ॥२॥
पसरिउ अन्धारु पमोक्कलउ । ण णिसिएँ वित्त मसि-पोट्टलउ ॥३॥
ससि उग्गउ सुट्ठु सुसोहियउ । ण जग-हरेँ दीवउ बोहियउ ॥४॥
सुविहाणेँ दिवायरु उग्गमिउ । ण रयणिहिँ मइयवट्टु भमिउ ॥५॥
तो णवर जङ्घचारण-रिसिहिँ । सयकरहोँ विणासिय-भव-णिसिहिँ ॥६॥
गय वत्त 'सहासकिरणु धरिउ' । चउविह-रिसि-सङ्घे परियरिउ ॥८॥

घत्ता

रावणु जेत्तहेँ गउ (सो) तेत्तहेँ पञ्च-महावय-धारउ ।
दिट्ठु दसासेँण सेयसेँण णावइ रिसहु भडारउ ॥८॥

आकर, अपना विशाल धनुष लेकर वह उछला। सन्नद्ध होकर उसने खुरूप चलाया पर रावण किसी तरह बच गया। पूरे वेगसे जब वह तीर छोड़ता तो वे ऐसे लगते मानो परहीन होकर पक्षी ही धरतीको जा रहे हैं। सहस्रकिरण रावणको देखकर बोला, "तुमने धनुष कहाँ सीखा, जाओ-जाओ अभ्यास करो फिर बादमें आकर युद्धमें लड़ना" ॥१-६॥

यह सुन और यमकी तरह देखकर रावणने उसके हाथीपर अपना हाथी दौड़ाया। पास जाकर उसने निडर होकर, सहस्र-किरणके मस्तकपर भालेकी चोट की। वह भी मत्सर से भरकर, तलवारसे आघात पहुँचाना ही चाह रहा था कि रावणने उछल कर उसे पकड़ लिया ॥७-६॥

[६] वह बँधे हुए, मदविगलित महागजके समान उसे अपने डेरेपर ले आया। इतनेमें, इस आशंकासे कि रावण मुझे भी न पकड़ ले, सूरज भी डूब गया। मुक्त अन्धकार ऐसे फैलने लगा मानो रातने स्याहीकी पोटली ही बिखेर दी हो। कुछ देर बाद चन्द्रमाका उदय हुआ, मानो विश्वरूपी घरमें दीपक जल उठा हो ॥१-४॥

फिर सुन्दर प्रभातमें सूरज निकल आया मानो रातने अपना मदन पट्ट ही घुमा दिया हो। इसी बीच, भवनिशाका अन्त करनेवाले जंघाचरण ऋषि शतकरके पास जाकर किसीने यह खबर पहुँचा दी कि सहस्रकिरण पकड़ लिया गया है। तब अपने संघको लेकर वह वहाँ गये जहाँ रावण था। पाँच महाव्रतो को धारण करनेवाले उन्हें रावणने इस तरह देखा, मानो राजा श्रेयांसने ऋषभजिनको ही देखा हो ॥५-८॥

[७]

गुरु वन्दिय दिण्णइँ आसणइँ । मणि-वेयडियइँ सुह-दंसणइँ ॥१॥
मुणि-पुङ्गउ चवइ विसुद्धमइ । 'मुएँ सहसकिरणु लङ्काहिवइ ॥२॥
एँहु चरिसटेहु सामण्णु ण वि । महु तणउ भव्व-राईव-रवि' ॥३॥
तं णिसुणेँवि जम-कम्पावणेँण । पणवेप्पिणु वुच्चइ रावणेँण ॥४॥
'महु एण समाणु कोउ कवणु । पर पुज्जहेँ कारणेँ जाउ रणु ॥५॥
अज्जु वि एहु जेँ पहु सा जि सिय । अणुहुञ्जउ मेइणि जेम तिय' ॥६॥
त णिसुणेँवि सहसकिरणु चवइ । 'उत्तमहोँ एउ किं सभवइ ॥७॥
त मणहर सलिल-कील करेँवि । पइँ समउ महाहवेँ उत्थरेँवि ॥८॥

घत्ता

एवहिँ आयएँ विच्छायएँ राय-सियएँ किं किज्जइ ।
वरि थिर-कुलहर अजरामर सिद्धि-वहुव परिणिज्जइ' ॥९॥

[८]

तें वयणें मुक्कु विसुद्ध-मइ । माहेसर - पवर - पुराहिवइ ॥१॥
णिय-णन्दणु णियय-थाणेँ थवेँवि । परियणु पट्टणु पय सथवेँवि ॥२॥
णिक्खन्तु खणद्धे विगय-भउ । रावणु वि पयाणउ देवि गउ ॥३॥
परिपेसिउ लेहु पहाणाहोँ । अणरण्णहोँ उज्झहेँ राणाहोँ ॥४॥
सुह-वत्त कहिय 'दहमुहेँण जिउ । लइ सहसकिरणु तव-चरणेँ थिउ' ॥५॥
तं णिसुणेँवि णरवइ हरिसिउ । ईसीसि विसाउ पदरिसियउ ॥६॥
संगाम-सहासेँहिँ दूसहहोँ । सिय सयल समप्पेँवि दसरहहोँ ॥७॥
सहसत्ति सो वि णिक्खन्तु पहु । अण्णु वि तहोँ तणउ अणन्तरहु ॥८॥

घत्ता

ताम सुकेसेँण लङ्केसेँण जमहर-अणुहरमाणउ ।
जागु पणासेँ वि रिउ तासेँ वि मगहहँ मुक्कु पयाणउ ॥९॥

[७] तब गुरुकी वन्दना-भक्तिकर, रावणने उन्हें मणिरत्नोंका शुभ दर्शनीय आसन दिया। विशुद्धमति मुनिश्रेष्ठ शतकर बोले, "लंकानरेश, तुम सहस्रकिरणको मुक्त कर दो, वह साधारण जन नहीं, प्रत्युत चरमशरीरी है। वह मेरा पुत्र है जो भव्यजन रूपी कमलोंके लिए सूर्य है।" यह सुनकर, यमसंतापक रावणने प्रणाम पूर्वक उत्तर दिया, "इसपर मेरा जरा भी क्रोध नहीं। केवल जिन-पूजाको लेकर हम दोनोंमे युद्ध हुआ। हे प्रभु, यह चाहे तो आज भी अपनी राज्यश्री, और धरतीका उपभोग कर सकते है।" यह सुनकर सहस्रकिरण बोला, "अरे इस सबसे क्या सम्भव है। उस जल-क्रीड़ा, और जमकर आपसे हुए युद्धमे जो आनन्द आया, वह अब इस नीरस राज्यश्रीके उपभोगमे कहाँ ? इससे अच्छा तो यह है कि मैं स्थिर कुलवाली, अजर और अमरमुक्तिरूपी वधूका पाणिग्रहण करूँ" ॥१-६॥

[८] इतना कहते ही, रावणने माहेश्वरपुरके अधिपति सहस्रकिरणको मुक्त कर दिया। वह भी अपने पुत्रको राज्य-गद्दीपर बैठा तथा नगर और प्रजाकी व्यवस्था करके अभय होकर, आधे पलमे ही दीक्षित हो गया। रावणने भी वहाँसे प्रस्थान किया। इसके बाद, अयोध्याके मुख्य राजा अनरण्यके पास इस आशयका लेखपत्र भेजा गया कि रावणसे, जीते जी बचकर, सहस्रकिरण जिन-दीक्षा लेकर तपमे रत हो गये हैं। यह सुनकर अयोध्या-नरेश अनरण्यको बहुत प्रसन्नता हुई और थोड़ा-सा खेद भी। अन्तमे उसने भी, हजारों युद्धोंमे दु सह अपने पुत्र दशरथको समस्त राज्यश्री देकर, अपने पुत्र अनन्तरथके साथ दीक्षा ले ली। इधर सुकेश और रावणने यमघरके समान, एक दारुण यज्ञको ध्वस्तकर, शत्रुको सताकर, मगधके लिए प्रस्थान किया ॥१-६॥

[९]

णारउ धीरेँवि मरु वसिकरेँवि । तहोँ तणिय तणय करयलेँ धरेँवि ॥१॥
णव णव संवच्छर तेत्थु थिउ । पुणु दिण्णु पयाणउ मगहु गउ ॥२॥
पेक्खेँवि रावणु आसङ्कियउ । महु महुरपुराहिउ वसिकियउ ॥३॥
जसु चमरेँ अमरेँ दिण्णु वरु । सूलाउहु सयलाउह-पवरु ॥४॥
णिय तणय तासु लाएवि करेँ । थिउ णवर गम्पि कइलास-धरेँ ॥५॥
मन्दाइणि दिट्ठ मणोहरिय । ससिकन्त-णीर - णिज्झर-भरिय ॥६॥
गय-मय णइँ मइलिय-उभय-तड । स-तुरङ्गम-कुञ्जर ण्हाय भड ॥७॥
वन्देप्पिणु जिणवर-भवणाइँ । दहमुहु दक्खवइ णिव्वाणाइँ ॥८॥
'इह सिद्ध सिद्धि-मुहकमल-अलि । जिणवरु भरहेसरु वाहुवलि ॥९॥

घत्ता

एत्थु सिलासणेँ अत्तावणेँ अच्छिउ वालि-भडारउ ।
जसु पय-भारेँण गरुयारेँण हउँ किउ कुम्मायारउ' ॥१०॥

[१०]

जम - धणय - सहासकिरण - दमणु । जं थिउ अट्ठावएँ दहवयणु ॥१॥
तं पत्त वत्त णलकुव्वरहोँ । दुल्लङ्घ - णयर - परमेसरहोँ ॥२॥
परिचिन्तिउ 'हय-गय-रह-पवलेँ । आसण्णेँ परिट्ठिएँ वइरि-वलेँ ॥३॥
एत्थु वि अमराहिवेँ रणेँ अजएँ । जिण-वन्दणहत्तिएँ मेरु गएँ ॥४॥
एहएँ अवसरेँ उवाउ कवणु' । तो मन्ति पवोल्लिउ हरिदवणु ॥५॥
'वलवन्तइँ जन्तइँ उट्ठवहोँ । चउदिसु आसालि-विज्ज ठवहोँ ॥६॥
ज होइ अछेउ अभेउ पुरु । ता रक्खहुँ पावइ जा ण सुरु' ॥७॥
तं णिसुणेँवि तेहि मि तेम किउ । सइ-चित्तु व णयरु दुलङ्घु थिउ ॥८॥

[९] नारदको धीरज बँधाकर, राजा मरुको अपने अधीन बनाकर उसकी लड़कीसे रावणने विवाह कर लिया। नौ वर्ष वहाँ ठहरकर, वह मगधकी ओर गया। मधुपुरके राजा मधुको आशंकित देखकर, उसे अपने वशमें कर लिया। इस राजाको चमरेंद्र देवने, समस्त शस्त्रोंमें श्रेष्ठ, शूलायुध नामका अस्त्र दिया था। रावणने उसकी लड़कीसे भी विवाह कर लिया और अब उसने कैलाश पर्वतकी ओर कूच किया। मार्गमें उसे चन्द्रकान्त मणियोंके निर्झरोंसे स्रावित सुन्दर गंगा नदी दीख पड़ी। गजमद के जलसे उसके दोनों तट मटमैले हो रहे थे, अश्व और गजोंके साथ सवार उसमें स्नान कर रहे थे। जिन-मन्दिरोंकी वन्दना करनेके अनन्तर, विविध निर्वाण-स्थानोंको नव वधूको दिखाते हुए वह बोला, "सिद्धवधूके मुखकमलके भ्रमर बाहुबलि यहाँ मुक्त हुए और यहाँ, इस आतापिनी शिलापर भट्टारक बालि विराजमान थे जिनके भारी पदभारसे मैं कछुएके आकारका हो गया था ॥१–१०॥

[१०] यम, धनद और सहस्रकिरणका दमन करनेवाला रावण अष्टापद पर्वतपर जाकर ठहरा। इसकी खबर दुर्लंघ्य नगरके राजा नलकूबरके पास पहुँची। वह इस सोचमें पड़ गया कि शत्रु सेना अत्यन्त निकट है। इन्द्र-युद्धमें भी अजेय रावण इस समय जिनकी वन्दना-भक्तिके लिए सुमेरुपर गया है। तब तक क्या उपाय करना चाहिए। यह सुनकर राजा नलकूबरके मन्त्री हरिदमनने उसे यह परामर्श दिया, "शक्तिशाली यन्त्रोंको उठवा दो, नगरके चारों ओर आशालीविद्या स्थापित करवा दो, जिससे नगर अछेद्य और अभेद्य हो जाय, और राक्षस उसका सुराख भी न पा सके।" यह सुनकर राजाने वैसा ही किया।

घत्ता

ताव विरुद्धेंहिँ जस-लुद्धेंहिँ रावण-भिच्च-सहासेँहिँ ।
वेढिउ पुरवरु संवच्छरु णावइ वारह-मासेँहिँ ॥६॥

[११]

जन्तहँ भइयएँ विहडप्फडेंहिँ । दहमुहहाँ कहिउ केहि मि भडेंहिँ ॥१॥
'दुग्गेज्झु भडारा त णयरु । दूसिद्धहुँ जिह तिहुअण-सिहरु ॥२॥
तहिँ जन्त-सयइँ समुट्ठियइँ । जम-करइँ जमेण व छुड्डियइँ ॥३॥
जोयणहाँ मज्झेँ जो संचरइ । सो पडिजीवन्तु ण णीसरइ' ॥४॥
त णिसुणेँवि चिन्तावण्णु पहु । थिउ ताय जाम उवरम्भ वहु ॥५॥
अणुरत्त परोक्खए जेँ जसेँण । जिह महुअरि कुसुम-गन्ध-वसेँण ॥६॥
ण गणइ कप्पूरु ण चन्दमसु । ण जलद्दु ण चन्दणु तामरसु ॥७॥
तहेँ दसमी कामावत्थ हुय । विसग्गि-दट्ठ णउ कह मि मुय ॥८॥

घत्ता

'इमु महु जोव्वणु ऍहु (सो) रावणु एह रिद्धि परिवारहों ।
जइ मेलावहि तो हलेँ सहि एत्तिउ फलु ससारहों' ॥६॥

[१२]

त णिसुणेँवि चित्तमाल चवइ । 'मइँ होन्तिएँ काइँ ण संभवइ ॥१॥
आएसु देहि छुड्ड एत्तडउ । एँउ सुन्दरि कारणु केत्तडउ ॥२॥
तुह रूवहों रावणु होइ जइ । लइ वट्टइ तो एत्तडिय गइ' ॥३॥
त णिसुणेँवि मणहर-अहरयलु । उवरम्भहेँ विहसिउ मुह-कमलु ॥४॥
'हलेँ हलेँ सहि ससिमुहि हस-गइ । सो सुहउ ण इच्छइ कह वि जइ ॥५॥
आसाल-विज्ज तो देहि तहों । अण्णु वि वज्जरहि दसाणणहों ॥६॥

और उसने उस नगरको सतीके मनकी तरह अलंघ्य बना दिया। परन्तु यशके लोभी रावणके अनुचरोंने उस नगरको वैसे ही घेरे लिया जैसे 'वर्ष' को बारह माह घेरे रहते है ॥१-६॥

[११] तदनन्तर, रावणके अनुचरोंने उन यन्त्रोसे घबड़ाकर व्याकुलताके साथ आकर कहा, "हे परम आदरणीय, वह नगर दुर्लंघ्य है, वैसे ही जैसे सिद्धपुर कुसाधुओंके लिए अलंघ्य होता है। यम-मुक्त यमकरणोंकी भाँति वहाँ सैकड़ो यंत्र लगे हुए हैं, एक योजनके आगे जो भी जायगा वह वहाँसे जीवित नहीं लौट सकता।" यह सुनकर रावण चिन्तामे पड़ गया। इसी बीच नलकूवर राजा की पत्नी उपरंभा, रावणकी परोक्ष प्रशंसा सुनकर उसी तरह आसक्त हो उठी जिस तरह मधुकरी, गंधवाससे फूल पर मुग्ध हो उठती है। वह कामकी दशवीं अवस्थामे पहुँच गई। कपूर, चन्द्रमा, शीतल जलके छींटे, चन्दन और कमल, कुछ भी अच्छा नहीं लग रहा था। विरहसे दग्ध होकर वह केवल किसी तरह प्राण नहीं छोड़ पा रही थी। यह मेरा यौवन, यह वह रावण, और यह कुटुम्बकी सम्पदा सब ठीक है। उसने अपनी सहेलीसे कहा, "किसी तरह उससे मिला सको तभी मेरा जीवन सफल है" ॥१-६॥

[१२] यह सुनकर, उसकी सहेली चित्रमाला बोली "हला, मेरे रहते क्या सम्भव नहीं हो सकता। शीघ्र आज्ञा दो, मेरे लिए यह कितना-सा काम है, मैं ऐसा ही मार्ग ढूंढ़ निकालूँगी कि रावण तुम्हारे रूपपर आसक्त हो जाय।" यह सुनते ही उपरंभाके मधुर अधरोंवाले मुखकमलपर हलकी मुसकान खिल गई। उसने तब फिर कहा, "हे शशि-मुखी और हंसगति वाली सखी! यदि वह सुभग किसी तरह मुझे न चाहे, तो यह आशाली विद्या उसे देकर,

वुच्चइ रहडु भड-लिह-लुहणु। इन्दाउहु अच्छइ सुअरिसणु' ॥७॥
तं णिसुणेंवि दूई णिग्गइय। लङ्केसावासु णवर गइय ॥८॥

घत्ता

कहिउ दसासहों सुर-तासहों ज उवरम्भएँ वुत्तउ।
'एत्तिउ दाहेंण तुह विरहेंण सामिणि मरइ णिरुत्तउ ॥९॥

[१३]

उवरम्भ समिच्छहि अज्जु जइ। तो जं चिन्तहि तं सभवइ ॥१॥
आसाली सिज्झइ पुरवरु वि। सुअरिसणु चक्कु णलकुब्वरु वि' ॥२॥
त णिसुणेंवि सुट्ठु वियक्खणहों। अवलोइउ वयणु विहीसणहों ॥३॥
पइसारिय दूई मज्जणएँ। थिय वे वि सहोयर मन्तणएँ ॥४॥
'अहों साहसु पभणइ पहु सुयवि। जं महिल करइ त पुरिसु ण वि ॥५॥
दुम्महिल जि भीसण जम-णयरि। दुम्महिल जि असणि जगन्त-यरि ॥६॥
दुम्महिल जि स-विस भुयङ्ग-फड। दुम्महिल जि वइवस-महिस-झड ॥७॥
दुम्महिल जि गरुय वाहि णरहों। दुम्महिल जि वग्घि मज्झें घरहों' ॥८॥

घत्ता

भणइ विहीसणु सुह-दंसणु 'एत्थु एउ ण घट्टइ।
सामि णिसण्णहों णउ अण्णहों भेयहो अवसरु वट्टइ ॥९॥

[१४]

जइ कारणु वइरि सिद्धएँण। णयरें धण-कणय-समिद्धएँण ॥१॥
तो कवडेण वि "इच्छामि" भणु। पुण्णालि असच्चि दोसु कवणु ॥२॥
छुडु केम वि विज्ज समावडउ। उवरम्भ तुज्झु पुणु मा वडउ' ॥३॥
तं णिसुणेंवि गउ दहगीउ तहिं। मज्जणयहों णिग्गय दूइ जहिं ॥४॥

यह कहना कि सेनाकी पंक्तिको तोड़ने वाला इन्द्रका सुदर्शन चक्र भी मेरे पास है।" यह सुनकर, दूती निकली और सीधी रावणके डेरेपर गई। उपरम्भाने जो कुछ कहा था वह सब ज्यों-का-त्यों बताते हुए, दूतीने सुरसंतापक रावणसे कहा, "निश्चय ही हमारी स्वामिनी आपकी विरह-जलनमें झुलस रही हैं" ॥१-९॥

[१३] यदि आप उपरंभाको चाहने लगे तो जो कुछ आप सोच रहे हैं वह सब सम्भव हो जाय। आशाली विद्या, सुदर्शन चक्र और नलकूवर सभी कुछ सिद्ध हो सकता है। यह सुनकर विलक्षण-बुद्धि रावणने विभीषणका मुख देखा, दूतीको स्नानके लिए विसर्जित कर, दोनों भाई विचार-परामर्श करने लगे। वह बोला, "ओह उसकी इतनी हिम्मत ! ठीक भी है, स्त्री जो कर सकती है, वह पुरुष नहीं कर सकता।" सचमुच असती स्त्री यम-नगरीकी तरह भयंकर, संसारका नाश करनेवाली बिजली, विष भरे साँपका फन और आगकी प्रचण्ड ज्वाला होती है। असती स्त्री मनुष्यको बहा ले जानेवाली नदी तथा घरकी बाघ होती है।" तब शुभ दर्शन विभीषणने कहा—"यहाँ पर इस प्रसंगमें यह सब कहना ठीक नहीं जँचता। हे स्वामी, सुनो, इस समय इसे छोड़कर भेद पानेका दूसरा उपाय नहीं दिख रहा है" ॥१-९॥

[१४] अतः यदि आप धन, सुवर्णसे समृद्ध नगर तथा शत्रुपर विजय पाना चाहते हैं तो कपटसे झूठमूठ ही यह कह दीजिये कि मैं उसे चाहता हूँ। फिर पुंश्चलीसे झूठ बोलने में कौन-सा दोष है। किसी तरह पहले विद्या प्राप्त कर लो, फिर चाहे उसे मत छूना।" यह सुनकर रावण उस स्थानपर गया जहाँ स्नान करके दूती निकल रही थी। उसने उसे दिव्य वस्त्र, रत्नोंकी

देवङ्गइँ वत्थइँ ढोइयइँ । आहरणइँ रयणुज्जोइयइँ ॥५॥
केऊर - हार - कडिसुत्ताइँ । णेउरइँ कडय सजुत्ताइँ ॥६॥
अवरइ मि देवि तोसिय-मणेँण । आसाल-विज्ज मग्गिय खणेँण ॥७॥
ताएँ वि दिण्ण परितुट्ठियाएँ । णिय हाणि ण जाणिय मुद्धियाएँ ॥८॥

घत्ता

ताव विसालिय आसालिय णहेँ गज्जन्ति पराइय ।
तं विज्जाहरु णलकुव्वरु मुएँ वि णाइँ सिय आइय ॥९॥

[१५]

गय दूई किउ कलयलु भडेँहिँ । परिवेढिउ पुरवरु गय-घडेँहिँ ॥१॥
सण्णहेँ वि समरेँ णिच्छिय-मणहोँ । णलकुव्वरु भिडिउ विहीसणहोँ ॥२॥
बलु बलहोँ महाहवेँ दुज्जयहोँ । रहु रहहोँ गइन्दु महागयहोँ ॥३॥
हउ हयहोँ णराहिवु णरवरहोँ । पहरण-धरु वर-पहरण-धरहोँ ॥४॥
चिन्धिउ चिन्धियहोँ समावडिउ । वइमाणिउ वइमाणिहेँ भिडिउ ॥५॥
तहिँ तुमुलेँ जुज्झेँ भीसावणेँण । जिह सहसकिरणु रणेँ रावणेँण ॥६॥
तिह विरहु करेविणु तक्खणेँण । णलकुव्वरु धरिउ विहीसणेँण ॥७॥
सहुँ पुरेँण सिद्धु तं सुअरिसणु । उवरम्भ ण इच्छइ दहवयणु ॥८॥

घत्ता

सो ज्जेँ पुरेसरु णलकुव्वरु णियय केर लेवाविउ ।
समउ सरम्भएँ उवरम्भएँ रज्जु स इं भु ञ्जाविउ ॥९॥

*

आभासे चमकते हुए आभूषण, केयूर, हार, करधनी और कटकसे युक्त नूपुर दिये और फिर सन्तुष्ट मनसे उससे आशाली विद्या माँगी। प्रसन्न होकर उसने भी दे दी। वह मूर्खा अपना अहित नहीं समझ सकी ॥१-८॥

तब विशाल आकाशमें गरजती हुई आशाली विद्या रावण के पास ऐसे आ गई, मानो शोभा ही नलकूबर राजाको छोड़कर उसके पास आ गई हो ॥६॥

[१५] दूतीके जाते ही, उसके भट कोलाहल करने लगे। उन्होंने गजघटाओंसे नगरको घेर लिया। सन्नद्ध होकर रावण निश्चित मनसे नलकूबरसे भिड़ गया। उसका दुर्जेय महायुद्ध होने लगा। सेनासे सेना, रथसे रथ, हाथीसे हाथी, अश्वसे अश्व, राजासे राजा, शस्त्रधारीसे शस्त्रधारी और ध्वजसे ध्वज टकरा गये तथा वैमानिकोंसे वैमानिक जुट गये। जैसे रावणने युद्धमें भयङ्कर सहस्रकिरणको पकड़ लिया था वैसे ही उस घोर युद्धमें विभीषणने नलकूबरको रथहीन कर, तत्काल पकड़ लिया। रावणको उस नगरके साथ सुदर्शन चक्र भी प्राप्त हो गया। पर उसने उपरम्भाको नहीं चाहा, उसके नगरके राजा नलकूबरसे अपनी सेवाकी प्रतिज्ञा करवाई। वह भी उपरम्भाके साथ रमण करता हुआ स्वय राज्य भोग करने लगा।

[१६. सोलहमो संधि]

णलकुव्वरे धरियएँ विजएँ घुट्ठे वइरिहिँ तणएँ ।
णिय-मन्तिहिँ सहियउ इन्दु परिट्ठिउ मन्तणएँ ॥

[१]

जे गूढपुरिस पट्ठविय तेण । ते आय पडीवा तक्खणेण ॥१॥
परिपुच्छिय 'लइ अक्खहोँ दवत्ति । केहउ पहु केहिय तासु सत्ति ॥२॥
कि वलु केहउ पाइक्क-लोउ । किं वसणु कवणु गुणु को विणोउ ॥३॥
तं णिसुणेँ वि दणु-गुण-पेरिएहिँ । सहसक्खहोँ अक्खिउ हेरिएहिँ ॥४॥
'परमेसर रणेँ रावणु अचिन्तु । उच्छाह - मन्त-पहु - सत्ति-वन्तु ॥५॥
चउ-विज्ज-कुसलु छग्गुण-णिवासु । छव्विह-वलु सत्त-पयइ-पयासु ॥६॥
सत्तविह-वसण - विरहिय-सरीरु । वहु-वुद्धि-सत्ति-खम - काल-धीरु ॥७॥
अरिवर - छव्वग्ग - विणासयालु । अट्ठारहविह - तित्थाणुपालु ॥८॥

घत्ता

तहोँ केरएँ साहणेँ सव्वु सामि-सम्माणियउ ।
णउ कुद्धउ लुद्धउ को वि भीरु अवमाणियउ ॥१॥

सोलहवीं संधि

नलकूबरके पकड़े जाने और शत्रुकी विजय-घोषणासे चिन्तित होकर इन्द्र अपने मन्त्रियोसे विचार-विमर्श करने बैठा।

[१] इतनेमे उसके भेजे गुप्तचर आये। उसने उनसे पूछा,—"जल्दी बताओ, रावण कैसा क्या है, और उसकी शक्ति कितनी है, सेना कितनी है, और प्रजा कैसी है? उसमे कौनसे व्यसन हैं, उसे, कौनसे गुण और विनोद पसन्द हैं।" यह सुनकर रावणके गुणोंसे प्रेरित होकर गुप्तचरोंने कहना शुरू किया, "हे परमेश्वर! युद्धमे रावण अचिंत्य है। उत्साह, मन्त्र और प्रभु शक्तिमे वह बहुत बढ़ा-चढ़ा है। चारो विद्याओंमे कुशल, और ६ गुणोका निवास है वह। वह ६ शक्तियो और ७ प्रकृतियोका जानकार है। सात प्रकारके व्यसनोसे रहित वह, बुद्धि, शक्ति, क्षमा, संयम और धैर्यसे परिपूर्ण है। छह प्रकारके अन्तरग शत्रुओका नाशक वह अठारह प्रकारके तीर्थोंका पालन करनेवाला है।[1] उसके प्रशासनमे सभी लोग सम्मानित हैं। क्रोधी, लोभी, डरपोक अथवा अपमानित एक भी नहीं है॥१-६॥

---

१ शक्तियाँ ३ हैं-प्रभु, मन्त्र और उत्साह। विद्याएँ ४ हैं-आन्वीक्षिकी, त्रयी, वार्ता और दण्डनीति। साख्य योग और लोकायतको आन्वीक्षिकी कहते है। साम, ऋग् और यजुर्वेद त्रयी कहलाते हैं। कृषि, पशुपालन और वाणिज्य वार्ता है। गुण ६ होते हैं-सधि, विग्रह, यान, आसन, सश्रय और द्वैधीभाव। बल ६ हैं-मूलबल भृत्यबल, श्रेणिबल, मित्रबल, अमित्र बल और आटविकबल। प्रकृतियाँ ७ हैं-स्वामी, अमात्य, राष्ट्र, दुर्ग, कोष, सेना और सुहृद्। व्यसन ७ हैं द्यूत, मद्य, मास, वेश्यागमन, पापधन, चोरी, परस्त्रीसेवन। अन्तरङ्ग शत्रु ६ हैं-काम, क्रोध, लोभ, मान, मद और हर्ष। तीर्थ अठारह हैं,-मन्त्री, पुरोहित, सेनापति, युवराज, दौवारिक, अन्तर्वंशिक, प्रशास्ता, समाहर्ता, सविधाता, प्रदेष्टा, नायक, पौर, व्यावहारिक, कर्मान्तक, मन्त्रि-परिषद्, दण्ड, दुर्गान्तपाल और आटविक।

[२]

विणु णित्तिएँ एक्कु वि सउ ण देइ । अट्ठविह-विणोएं दिवसु णेइ ॥१॥
पहरद्धु पयाव-गवेसणेण । अन्तेउर - रक्खण - पेसणेण ॥२॥
पहरद्धु णवरु कन्दुअ-खणेण । अहवइ अत्थाण-णिवन्धणेण ॥३॥
पहरद्धु ण्हाण - देवच्चणेण । भोयण - परिहाण - विलेवणेण ॥४॥
पहरद्धु दव्व - अवलोयणेण । पाहुड - पडिपाहुड - ढोयणेण ॥५॥
पहरद्धु लेह - वायण - खणेण । सासणहर - हेरि - विसज्जणेण ॥६॥
पहरद्धु सइर - पविहारणेण । अहवइ अब्भन्तर - मन्तणेण ॥७॥
पहरद्धु सयल - वल - दरिसणेण । रह - गय - हय-हेइ - गवेसणेण ॥८॥

घत्ता

पहरद्धु णराहिउ सेणावइ-संभावणेंण ।
जम-थाणेँ परिट्ठिउ परमण्डल-आरूसणेंण ॥९॥

[३]

जिह दिवसु तेम णिव्वाण-राय । णिसि णेइ करेप्पिणु अट्ठ भाय ॥१॥
पहिलएँ पहरद्धेँ विचिन्तमाणु । अच्छइ णिगूढु पुरिसेँहिँ समाणु ॥२॥
बीयएँ पुणो वि ण्हाणासणेण । अहवह णरवइ-सुह-दसणेण ॥३॥
तइयएँ जय-तूर-महारवेण । अन्तेउरु विसइ मणुच्छवेण ॥४॥
चउत्थएँ पञ्चमेँ सोवण-खणेंण । चउदिसु दिढेण परिरक्खणेण ॥५॥
छट्ठएँ हय-पडह-विउज्झणेण । सव्वत्थसत्थ - परिवुज्झणेण ॥६॥
सत्तमेँ मन्तिहिँ सहुँ मन्तणेण । णिय-रज्ज - कज्ज - परिचिन्तणेण ॥७॥
अट्ठमेँ सासणहर - पेसणेण । सुविहाणेँ वेज्ज-सभासणेण ॥८॥
महणसि - परिपुच्छण - आसणेण । णिम्मित्ति - पुरोहिय - घोसणेण ॥९॥

घत्ता

इय सोलह-भाएँहिँ दिवसु वि रयणि वि णिव्वहइ ।
मणु जुज्झहोँ उप्परि तासु णिरारिउ उच्छहइ ॥१०॥

[२] नीतिके बिना वह एक भी पग नहीं रखता। उसका समय अठारह विनोदोंमें बीतता है। आधे प्रहर वह प्रजाजनोंकी खोज-खबर लेता और अन्त:पुरका निरीक्षण करता है। आधे प्रहर कन्दुक-क्रीड़ा और दरबार लगाता है। आधा प्रहर स्नान और देवपूजामें जाता है। आधा प्रहर भोजन, कपड़े पहनना और विलेपन आदिमें जाता है। आधा प्रहर वह द्रव्यका अवलोकन करता तथा उपहार, प्रतिउपहार सम्हालता है। आधा प्रहर आये हुए लेख पढ़ता है, तथा शासनघर आदिको भी वही देखता है। आधा प्रहर स्वच्छन्द विद्याविनोद और आन्तरिक मन्त्रणामें जाता है। आधे पहरमें सारे सैनिकोंका निरीक्षण, तथा रथ, अश्व-गज तथा आयुधोंका अनुसन्धान करता है। आधा पहर उसका सेनापतिसे बातचीत करनेमें जाता है। इस प्रकार शत्रुमंडलके कुपित होनेपर उसे यमके स्थानपर प्रतिष्ठित समझो ॥१-६॥

[३] हे इन्द्र! दिनकी तरह ही उसकी रात भी आठ भागोंमें बीतती है। पहले प्रहरार्धमें वह पुरुषोंके साथ बैठकर बातें करता है, दूसरेमें नहा-धोकर आसन, अथवा नरपतियोंसे शुभ-भेंट करता है। तीसरेमें, तूर्यके महाशब्दके साथ, प्रसन्नमन वह, अन्त:पुरमें जाता है। चौथे और पाँचवेंमें शयन तथा चारों ओरसे दृढ़ परिरक्षणमें व्यस्त रहता है। छठेमें पटहके शब्दसे उठकर शास्त्रोंका अर्थ समझता है। सातवेंमें मन्त्रियोंके साथ मन्त्रणा, और अपने राज-काजकी चिन्ता करता है। आठवेंमें प्रतिहारोंको भेजकर वैद्यसे संभाषण करता, रसोई घरके लोगोंसे पूछता तथा नैमित्तिकों और ज्योतिषियोंसे भेंट निपटाता है ॥१-६॥

इस प्रकार वह दिन रातका पूरा समय सोलह भागोंमें बाँट-कर बिताता है। युद्धके नामसे ही उसका मन दूने उत्साहसे भर जाता है ॥१०॥

[४]

तुम्हहुँ घइँ एक्क वि णाहिँ तत्ति । सुविणएँ वि ण हुय उच्छाह-सत्ति ॥१॥
बालत्तणँ जे णउ णिहउ सत्तु । णह-मेत्तु जि कियउ कुढार-मेत्तु ॥२॥
जइयहुँ णामउ छुडु छुडु दसासु । जइयहुँ साहिउ विज्जा-सहासु ॥३॥
जइयहुँ करेँ लग्गउ चन्दहासु । जइयहुँ मन्दोवरि दिण्ण तासु ॥४॥
जइयहुँ सुरसुन्दरु वद्धु कणउ । जइयहुँ ओसारिउ समरेँ धणउ ॥५॥
जइयहुँ जगभूसणु धरिउ णाउ । जइयहुँ परिहविउ कियन्त-राउ ॥६॥
जइयहुँ सु-तणूयरि गउ हरेवि । अण्णु वि रयणावलि करेँ धरेवि ॥७॥
तइयहुँ जेँ णाहिँ जं णिहउ सत्तु । त एवहिँ वड्डारउ पयत्तु' ॥८॥

घत्ता

वुच्चइ सहसक्खेँ 'किं केसरि सिसु-करि वहइ ।
पच्चेल्लिउ हुअवहु सुक्कउ पायउ लहु डहइ' ॥९॥

[५]

पच्चत्तउ देवि गइन्द-गमणु । पुणु ढुक्कु सक्कु एक्कन्त-भवणु ॥१॥
जहिँ भेउ ण भिन्दइ को वि लोउ । जहिँ सुअ-सारियहुँ वि णाहिँ ढोउ ॥२॥
तहिँ पइसेँ वि पभणइ अमर-राउ । 'रिउ दुज्जउ एवहिँ को उवाउ ॥३॥
कि सामु भेउ कि उवप्पयाणु । कि दण्डु अवुज्झिय-परिपमाणु ॥४॥
कि कम्मारम्भुतवाय - मन्तु । कि पुरिस - दव्व-सपत्ति-वन्तु ॥५॥
किं देस-काल - पविहाय - सारु । कि विणिवाइय-पडिहार-चारु ॥६॥
कि कज्ज-सिद्धि पञ्चमउ मन्तु । को सुन्दरु सच्च-विसार-वन्तु' ॥७॥

[४] दूतोंने फिर कहा, "परन्तु आपमें एक भी गुण नहीं। उत्साह-शक्ति तो आपमे सपनेमे भी नहीं। जब वह छोटा था तभी तुमने उसका नाश नही किया, इसलिए जो नखसे काटा जा सकता था, वह अब कुठारसे काटने योग्य हो गया है। जब दशाननका केवल नाम ही हुआ था, जब उसने एक हजार विद्याएँ सिद्ध कीं। जब उसके हाथ चन्द्रहास तलवार लगी, जब मन्दोदरी उसे व्याही गई, जब उसने सुरसुन्दरी कन्याको लिया, जब उसने 'त्रिजगभूपण' हाथीको पकड़ा। जब उसने युद्धमे यमको खदेड़ दिया, जब वह तनूरणका अपहरण करने गया, और जब उसने रत्नावलीका भी पाणिग्रहण किया, तब तो तुमने उस शत्रुका हनन नहीं किया, और अब उसके लिए इतना बड़ा समारम्भ कर रहे हो।" इसपर इन्द्रने आवेगसे कहा, "क्या सिह छोटेसे गजशिशुपर आक्रमण करता है ? क्या समर्थ आग सूखे पेड़को जलाती है ? ॥१-६॥

[५] इतना प्रत्युत्तर देकर गजेंद्रगामी इन्द्र, अपने एकांत भवनमे पहुँचा जिससे कोई दूसरा उसका भेद न ले सके। वहाँ शुक और सारिकाओंकी भी पहुँच नहीं थी। उसमे प्रवेश करते ही, सुरराज इन्द्रने कहा—"शत्रु अजेय है, अब क्या उपाय करना चाहिए, क्या साम, भेद या दाम, या अज्ञातपरिणाम दण्ड ठीक है। कार्यको प्रारम्भ करनेके उपाय (दुर्गादिकी रक्षा इत्यादि) का क्या मन्त्र है ? योग्य पुरुप (सेनापति, दूतादि) और सम्पत्तिको कैसे रखा जाय, देशकालका ठीक विभाजन क्या हो, आई हुई आपत्तियोंका सुन्दर प्रतिकार क्या हो सकता है, अपने अभीष्ट कार्यकी सिद्धि कैसे हो, यही पंचाङ्ग मन्त्र है। इनमें कौन सुन्दर और सच विचार वाला है।" इसपर भारद्वाज

तो भारदुवाएं वुत्तु एम। 'जं पइँ पारद्धउ तं जि देव ॥८॥
कज्जन्तें णवर णिव्वडइ छेउ। पर मन्तिहिँ केवलु मन्त-भेउ' ॥९॥
त णिसुणेंवि भणइ विसालचक्खु। 'एँहु पइँ उग्गाहिउ कवणु पक्खु ॥१०॥

घत्ता

ता अच्छउ सुरवइ जो णीसेसु रज्जु करइ।
पहु मन्ति-विहूणउ चउरङ्गिहि मि ण सचरइ ॥११॥

[६]

पारासरु पभणइ 'विहि मणोज्जु। णउ एक्के मन्तिएँ रज्ज-कज्जु' ॥१॥
पिसुणेण वुत्तु 'वेण्णि वि ण होन्ति। अवरोप्परु घडेँ वि कु-मन्तु देन्ति' ॥२॥
कउटिल्ले वुच्चइ 'कवण भन्ति। तिण्णि वि चेयारि वि चारु मन्ति' ॥३॥
मणु चवइ 'गरुअ वारहहुँ वुद्धि। णउ एक्कें विहिँ तिहिँ कज्ज-सिद्धि' ॥४॥
त णिसुणेंवि पभणइ अमरमन्ति। 'अइसुन्दरु जइ सोलह हवन्ति' ॥५॥
भिगुणन्दणु वोल्लइ 'वुद्धिवन्तु। अकिलेसें वीसहिँ होइ मन्तु' ॥६॥
त णिसुणेंवि चवइ सहासणयणु। विणु मन्ति-सहासें मन्तु कवणु ॥७॥
अण्णहों अण्णारिस होइ वुद्धि। अकिलेसें सिज्झइ कज्ज-सिद्धि' ॥८॥

घत्ता

जयकारिउ सव्वेंहिँ 'अम्हहुँ केरी वुद्धि जइ।
तो समउ दसासें सुन्दर सन्धि सुराहिवइ ॥९॥

[७]

वुह अत्थसत्थ पभणन्ति एव। कहिँ लब्भइ उत्तम सन्धि देव ॥१॥
एक्कु वि मालिहेँ सिरु खुडेँवि घित्तु। अण्णु वि जइ रावणु होइ मित्तु ॥२॥
तो तउ परमेसर कवण हाणि। अहि असइ तो वि सिहि महुर-वाणि ॥३॥
जइ साम भेय-दाणेंहिँ जि सिद्धि। तो दण्डेँ पउञ्जिएँ कवण विद्धि ॥४॥

बोला "देव जो आपने प्रारम्भ किया है वही ठीक है। कार्यके अन्तमे ही उसका पता लगना चाहिए।" यह सुनकर विशालाक्षने कहा, "यह तुमने कौन-सा पक्ष सामने रखा है, इन्द्रकी तो बात छोड़ो जो निश्शेष राज्य करता है। राजा तो मन्त्रीके बिना शतरंजमे भी चाल नही चलता ॥१-१०॥

[६] तब पाराशरने कहा—"दो मन्त्री होना सुन्दर है, एक मन्त्रीसे राजकाज होना सम्भव नहीं।" इसपर नारदने अपनी राय दी, दो से भी राज्य नहीं चल सकता, वे एक दूसरेसे लड़कर कुमंत्र भी दे सकते हैं।" तब कौटिल्यने कहा—"इसमे क्या भ्रान्ति है। तीन या चार मंत्री ही सुन्दर होते हैं।" तब मनुने कहा,—"बारह मंत्रियोंकी बुद्धि बहुत वजनदार होती है, एक-दो या तीन-चार मंत्रियोंसे काम नहीं होता है।" यह सुनकर बृहस्पति बोले—"यदि सोलह हो तो अत्यन्त सुन्दर"। इसपर शुक्राचार्यने कहा—"बीस मंत्री हो तो कोई झंझट नहीं होता।" यह सब सुनकर इन्द्रने अपनी सम्मति दी "हजार मंत्रियोंके विना, मंत्र किसी कामका नहीं, एकसे दूसरेकी प्रज्ञा होती है और बिना किसी झझटके कार्यकी सिद्धि हो जाती है।" तब सबने जयकार-पूर्वक कहा—"यदि हमारी मंत्रणा मानी जाय तो रावणके पास सुन्दर संधिका प्रस्ताव भेजना ही उचित है ॥ १-६ ॥

[७] विद्वानोंने अर्थशास्त्रमें भी यही कहा है कि सुन्दर सन्धिका होना बहुत कठिन है। क्योंकि एक तो आपने मालिका सिर काटकर फेक दिया। दूसरे अब रावणसे मित्रता हो जाय तो इसमे आपकी हानि ही क्या है। साँप खाता है, फिर भी मयूर तो मधुरभाषी ही होता है। जो काम साम, दाम और भेदसे संभव हो, उसके लिए दंड प्रयोग करना व्यर्थ है? बालिसे

अच्छन्ति वालि-रणु समरेवि । सुग्गीव-चन्दकर कुद्ध वे वि ॥५॥
णल णील ते वि हियवएँ असुद्ध । सुव्वन्ति णिरारिउ अत्थ-लुद्ध ॥६॥
खर-दूसणा वि णिय-पाण-भीय । कज्जेण जेण चन्दणहि णीय ॥७॥
माहेसरपुरवइ - मरुणरिन्द । अवमाणेंवि वसिकिय जिह गइन्द ॥८॥

घत्ता

आएहिँ उवाएँहिँ भेइज्जन्ति णराहिवइ ।
दहवयण-णिहेलणु जाइ दूउ चित्तङ्गु जइ' ॥९॥

[८]

त मन्ति-वयणु पडिवण्णु तेण । चित्तङ्गउ कोक्किउ तक्खणेण ॥१॥
सिक्खवइ पुरन्दरु किं पि जाम । गउ णारउ रावण-भवणु ताम ॥२॥
'ओसारेँ वि दिज्जइ कण्ण-जाउ । परिरक्खहि खन्धावारु साउ ॥३॥
आवेसइ इन्दहों तणउ दूउ । चउवीस - पवर - गुण - सार-भूउ ॥४॥
सो भेउ करेसइ णरवराहँ । सुग्गीव - पमुह - विज्जाहराहँ ॥५॥
सहुँ तेण महुर-वयणेहिँ तेव । वोल्लिज्जइ सन्धि ण होइ जेव ॥६॥
सो थोवउ तुहुँ पुणु पवलु अज्जु । आवग्गउ जेँ लइ हरेवि रज्जु ॥७॥
एत्थु जेँ अवसरेँ संगामेँ सक्कु । सक्किज्जइ णतो पुणु असक्कु ॥८॥

घत्ता

मरु-जग्गेँ दसाणण जं पइँ विग्घहँ रक्खियउ ।
उवयारहोँ तहोँ मइँ परम-भेउ एँहु अक्खियउ' ॥९॥

[९]

गउ णारउ कहि मि णहङ्गणेण । सेणावइ वुत्तु दसाणणेण ॥१॥
'पर-गूढपुरिस ण विसन्ति जेम । परिरक्खहि खन्धावारु तेम' ॥२॥
एत्तडिय परोप्परु वोल्ल जाव । चित्तङ्गु स-सन्दणु आउ ताव ॥३॥
पुर-रट्ठाडवि वहु सथवन्तु । णक्खन्तोमालियहन्ति-वन्तु (?) ॥४॥

हुए युद्धके कारण उससे (रावणसे) चंद्रोदर और सुग्रीव क्रुद्ध हैं। नल और नील भी हृदयसे अशुद्ध हैं। सुनते हैं कि वे अत्यन्त अर्थलोलुप हैं। खर और दूषण भी एक तरहसे भयभीत ही हैं। क्योंकि वे चंद्रनखाको हर ले गये थे। हे इन्द्र, गजेन्द्रकी भाँति उसने सहस्रकिरणको भी अपमानित करके अपने वशमें किया था, इन उपायोंसे रावणका भेदन किया जाय और इसके लिए चित्रांगद दूतको उसके पास भेजा जाय॥ १–६॥

[८] इन्द्रने मन्त्रीके वचन मान लिये। विश्वामित्रको बुलवाकर, वह उसे कुछ सिखाने लगा। इसी बीच नारदजी रावणके पास जा पहुँचे। एकान्तमें ले जाकर कानमें उससे कहा "सब स्कंधावारकी रक्षा करो, क्योंकि इन्द्रका चौबीस गुणोंसे युक्त दूत आनेवाला है। वह सुग्रीव प्रभृति विद्याधरों और राजाओंमें फूट उत्पन्न करेगा, अतः मोटे शब्दोंमें उससे ऐसी बातें आप कीजिये जिससे सन्धि न हो। वह तुच्छ है, आज आप प्रबल हैं, पीछे पड़कर उसका राज्य हड़प लें। इस समय संग्रामके लिए आप समर्थ हैं। यदि शंका करेंगे तो बादमें असमर्थ हो जायँगे। हे रावण, मरुयज्ञके अवसरपर जो तुमने विघ्नोंसे मेरी रक्षा की थी, उसी उपकारके कारण, यह परम रहस्य मैंने तुम्हें बता दिया" ॥१—६॥

[६] आकाश-मार्गसे नारदके कहीं चले जानेपर रावणने सेनापतिको बुलाकर कहा,—"स्कन्धावारकी इस तरह रक्षा करो कि जिससे शत्रुके गुप्तचर भीतर प्रवेश न कर सकें।" इस प्रकार उनमें बातचीत हो ही रही थी कि तब तक चित्रांग रथ पर बैठा हुआ जा पहुँचा। बहुशास्त्रज्ञ विचारशील बुद्धिमान पुर राष्ट्रका निरीक्षण करता ?' रण-दुर्ग धन-धान्यसे पूर्ण धरतीको देखता

रण-दुग्ग-परिग्गह-महि णियन्तु । उत्तरहों पडुत्तरु चिन्तवन्तु ॥५॥
वहुसंथ-बुद्धि-णीइउ सरन्तु । मारिच्चि-भवणु पइसइ तुरन्तु ॥६॥
स-सणेहु समाइच्छिउ करेवि । णिउ पासु णरिन्दहों करें धरेवि ॥७॥
वइसणउ दिण्णु सवाहु थोरु । चूडामणि कण्ठउ कडउ दोरु ॥८॥
पुज्जेप्पिणु कप्पिणु गुण-सयाइँ । पुणु पुच्छिउ 'वलहु पमाणु काइँ' ॥९॥

घत्ता

वुच्चइ चित्तङ्गें 'किं देवहों सीसइ णरेँण ।
तं कवणु दुलङ्घउ ज ण वि दिट्ठु दिवायरेँण' ॥१०॥

[१०]

तं वयणु सुणेँवि परितुट्ठु राउ । 'मइँ चिन्तिउ को वि कु-दूउ आउ ॥१॥
जिम सासणहरु जिम परिमियत्थु । एवहिँ मुणिओ-सि णिसिद्ध-अत्थु ॥२॥
धण्णउ सुरवइ तुहुँ जासु अत्तु । वर-पञ्चवीस - गुण-रिद्धि पत्तु ॥३॥
भणु भणु पेसिउ कज्जेण केण' । विहसेवि वुत्तु चित्तंगएण ॥४॥
'पहु सुन्दर अम्हहुँ तणिय बुद्धि । सुहु जीवहुँ वे वि करेवि सन्धि ॥५॥
रूववइ-णाम रूवें पसण्ण । परिणेप्पिणु इन्दहों तणिय कण्ण ॥६॥
करि लङ्का-णयरिहिँ विजय-जत्त । चल लच्छि मणूसहों कवण मत्त ॥७॥

घत्ता

इमु वयणु महारउ तुम्हहँ सव्वहँ थाउ मणेँ ।
जिह मोक्खु कु-सिद्धहों तेम ण सिज्झइ इन्दु रणेँ ॥८॥

[११]

त सुणेंवि सत्तु-सतावणेण । चित्तङ्गु पभणिउ रावणेण ॥१॥
'वेयड्ढहों सेढिहिँ जाइँ ताइँ । पण्णास व सट्ठि वि पुरवराइँ ॥२॥
सव्वइँ महु अप्पेवि सन्धि करहों । ण तो कल्लएँ सगामें मरहों' ॥३॥
तं णिसुणेँवि पहरिसियङ्गएण । दहवयणु वुत्तु चित्तङ्गएण ॥४॥

और उत्तरका प्रत्युत्तर सोचता हुआ, वह तुरन्त ही मारीचके भवनमे प्रविष्ट हुआ। उसने भी दूतका प्रेमके साथ आदर-सत्कार किया और फिर हाथमे हाथ लेकर उसे राजाके पास ले गया। रावणने भी आसन देकर बढ़िया पान, चूडामणि, कड़ा, कटक और डोरसे उसका सत्कार किया, फिर उसके सैकड़ो गुणोकी प्रशंसा करके पूछा, "आपकी सेना कितनी है।" चित्रांगने कहा, "देवके साथ मनुष्यकी क्या समानता, जो वस्तु सूर्यने भी नहीं देखी, वह भी उसे अलंघ्य नही है।" ॥१-१०॥

[१०] यह सुनकर रावण बहुत सन्तुष्ट हुआ। वह बोला "अरे मैने तो यही समझा था कि कोई कुदूत आया होगा, परन्तु आप जैसे आज्ञाकारी और यथार्थद्रष्टा है उससे मै समझता हूँ कि मेरा काम बन जायगा। सचमुच ही आप जैसे पच्चीस गुणोसे सम्पन्न जानकारको पाकर इन्द्र धन्य है। कहिये आपको सुरराजने किसलिए भेजा है ?" तब हँसकर चित्रांगदने कहा, "प्रभु, हमारा यही सुन्दर विचार है कि दोनों सन्धि करके सुख पूर्वक रहें, और साथ ही इन्द्रकी रूपमे सबसे अच्छी, रूपवती लड़कीसे विवाहकर लंकाकी विजययात्रा करें। मनुष्यके लिए चंचल लक्ष्मीकी क्या बात ? हमारे इस वचनकी आप सब लोग अपने मनमें थाह ले ले, क्योंकि इन्द्रको युद्धमे हराना वैसे ही सम्भव नहीं हो सकता जैसे कुसिद्धका मोक्ष पाना" ॥१-८॥

[११] यह सुनकर शत्रुसंतापक रावणने चित्रांगसे कहा, "विजयार्ध श्रेणिमे जो पचास-साठ बड़े-बड़े नगर हैं, वे मुझे सौंपकर सन्धि कर लो। नही तो कल संग्राममे मुझसे मरो।" यह सुनकर चित्रांग हँसकर रावणसे बोला, "एक तो अकेला इन्द्र ही

'एक्कु वि सुरवइ सयमेव उग्गु। अण्णु वि रहणेउर-णयरु दुग्गु ॥५॥
परिभमियउ परिहउ तिण्णि तासु। सरिसाउ जाउ रयणायरासु ॥६॥
सकम वि चयारि चउद्दिसासु। चउ-बारइँ एक्केक्कएँ सहासु ॥७॥
वलवन्तहुँ जन्तहुँ भीसणाहँ। अक्खोहणि अक्खोहणि घणाहँ ॥८॥

घत्ता

जोयण-परिमाणेँ जो ढुक्कइ सो णउ जियइ।
जिह दुज्जण-वयणहुँ को वि ण पासु समिल्लियइ ॥९॥

[१२]

जसु एहउ अत्थि सहाउ दुग्गु। अण्णु वि साहणु अच्चन्त-उग्गु ॥१॥
जसु अट्ठ लक्ख भद्दहुँ गयाहुँ। वारह मन्दहुँ सोलह मयाहुँ ॥२॥
सङ्किण्ण-गइन्दहुँ वीस लक्ख। रह-तुरय-भडहँ पुणु णत्थि सङ्ख ॥३॥
एहउ पहिलारउ मूल-सेण्णु। वलु वीयउ मिच्चहँ तणउ अण्णु ॥४॥
तइयउ सेणी-वलु दुण्णिवारु। चउथउ मित्त-वलु अणाय-पारु ॥५॥
दुज्जउ पञ्चमउ अमित्त-सेण्णु। छट्ठउ आटविउ अणाय -गण्णु ॥६॥
रावण पुणु वूहहँ णाहि छेउ। अमरा वि वलहँ ण मुणन्ति भेउ ॥७॥
हय-गय-रह-णर-जुज्झहुँ तहेव। सो सुरवइ जिज्जइ समरेँ केवँ ॥८॥

घत्ता

वुच्चइ दहवयणेँ 'जइ तं जिणामि ण आहयणेँ।
तो अप्पउ घत्तमि जालामालाउलेँ' ॥९॥

[१३]

इन्दइ पभणइ 'सुर-सार-भूअ। किं जम्पिएण वहवेण दूअ ॥१॥
जं किउ जम-धणयहुँ विहि मि ताहँ। जं सहसकिरण-णलकुव्वराहँ ॥२॥
तं तुह वि करेसइ ताउ अज्जु। लहु ठाउ पुरन्दरु जुज्झ-सज्जु' ॥३॥
तं वयणु सुणेँवि उट्ठन्तएण। चित्तङ्गेँ वुच्चइ जन्तएण ॥४॥

उग्र है, दूसरे उसके पास रथनूपुरका सुदृढ़ दुर्ग है, समुद्रके समान तीन परिखाएँ उसे घेरे है। चारों दिशाओंमें चार परकोटे हैं। उनके चारों द्वारोंपर एक-एक हजार सेना है, गोलक पत्थरके बने यंत्रोंपर भी अक्षौहिणी सेना तैनात है। एक योजनके भीतर जो भी पहुँच जाता है वह वैसे ही नहीं बच पाता जैसे दुर्जनके मुखसे कोई नहीं बचता ॥१–६॥

[१२] उसका ऐसा सहायक दुर्ग तो है ही, और भी दूसरे अत्यन्त तेज साधन हैं। उसके पास भद्र हाथी आठ लाख, मन्द जातिके हाथी बारह लाख, मृग हाथी सोलह लाख और संकीर्ण गजेन्द्र बीस लाख हैं। फिर रथ, तुरग और भटोंकी तो गिनती ही नहीं है। यह उसकी मूल मुख्य सेना है। दूसरे, उसके पास मित्रसेनाएँ है। तीसरे उसे दुर्निवार श्रेणिबल प्राप्त है। चौथे नि सीम मित्रबल है, पाँचवें दुर्जेय अमित्र सेना है, छठे, अगनित अटवीराज्योंकी सेना है। फिर रावण, उसकी व्यूह-रचनाका तो ठिकाना ही नहीं है, देवता भी उसका भेद नहीं जानते, रथ, गज, तुरग और मनुष्योंके उस वैसे युद्धमें सुरपतिको कौन जीत सकता है ?" ॥१–८॥

तब रावणने प्रत्युत्तरमें कहा—"यदि मैं युद्धमें उसको नहीं जीत सका तो मैं अपने-आपको आगकी लपटोंमें भस्म कर दूँगा।" ॥६॥

[१३] तब इन्द्रजीत बोला—"सुरश्रेष्ठ दूत, बहुत कहना व्यर्थ है। यम और धनदका जो किया, और जो हाल सहस्रकिरण तथा नलकूबरका किया वही हाल, तात तुम्हारा करेंगे। इसलिए तुरन्त अपने ठाँव जाकर, इन्द्रको युद्धके लिए तैयार करो।" यह वचन सुनकर, दूतने उठते-उठते कहा—"देव, तुम्हें इन्द्रका

'णिम्मन्तिओ-सि इन्देण देव । विजयन्तें इन्दइ तुहु मि तेव ॥५॥
सिरिमालि कुमारेंहिँ ससिधएहिँ । सुग्गीव तुहु मि सीहद्धएहिँ ॥६॥
जमराए जम्बव-णील णलहोँ । हरिकेसिं हत्थ-पहत्थ-खलहोँ ॥७॥
सोमेण विहीसण कुम्भयण्ण । अवरेहि मि केहि मि के वि अण्ण ॥८॥

घत्ता

परिवाडिएँ तुम्हहुँ दिण्णउ एउ णिमन्तणउ ।
भुञ्जेवउ सव्वेंहिँ गरुअ-पहारा-भोयणउ' ॥९॥

[१४]

गउ एम भणेंवि चित्तङ्गु तेत्थु । सुर-परिमिउ सुरवर-राउ जेत्थु ॥१॥
'परमेसर दुज्जउ जाउहाणु । ण करेइ सन्धि तुम्हेंहिँ समाणु' ॥२॥
त णिसुणेंवि पवलु अराइ-पक्खु । सण्णज्झइ सरहसु दससयक्खु ॥३॥
हय भेरि-तूर पडु पडह वज्ज । किय मत्त महागय सारि-सज्ज ॥४॥
पक्खरिय तुरङ्गम जुत्त सयड । जस-लुद्ध कुद्ध सण्णद्ध सुहड ॥५॥
वीसावसु वसु रण-भर-समत्थ । जम-ससि-कुबेर पहरण-विहत्थ ॥६॥
किंपुरिस गरुड गन्धव्व जक्ख । किण्णर णर अमर विरल्लियक्ख ॥७॥
जं णयर-पओलिहिँ वलु ण माइ । तं णहयलेण उप्पएँ वि जाइ ॥८॥

घत्ता

सण्णहेँ वि पुरन्दरु णिग्गउ अइरावएँ चडिउ ।
णं विज्झहोँ उप्परि सरय-महाघणु पायडिउ ॥९॥

[१५]

सिग-मन्द-भद्द - संकिण्ण-गएँहिँ । घड विरएँवि पच्छहिँ चाव-सएँहिँ ॥१॥
थिउ अग्गएँ पच्छएँ भड-समूहु । सेणावइ-मन्तिहिँ रइउ वूहु ॥२॥
सुरवर स-पवर-पहरण-कराल । घण-कक्खहिँ पक्खहिँ लोयवाल ॥३॥
डसियाहर रत्तुप्पल-दलक्ख । गएँ गएँ पण्णारह गत्त-रक्ख ॥४॥

निमन्त्रण है, और इसी तरह, इन्द्रजीतको उसके पुत्र वैजयन्तका, श्रीमालिको कुमार शशिध्वजका, जाम्बवान नल और नीलको यमराजका, दुष्ट हस्त और प्रहस्तको हरिकेशिका, विभीषण और कुम्भकर्णको सोमका। इसके अतिरिक्त शेष लोगोंको, हमारे दूसरे-दूसरे वीरोंका आमन्त्रण है।" ॥१-८॥

पारणाके लिए ही, हमने यह न्यौता तुम्हें दिया है, शीघ्र तुम सब लोग भयंकर प्रहारोंका भोजन पाओगे ॥९॥

[१४] इसके बाद, चित्रांग देवोंसे घिरे हुए इन्द्रके पास पहुँचा, और बोला,—"हे परमेश्वर, राक्षस अजेय है, वह तुम्हारे साथ सन्धि नहीं कर सकता।" शत्रुको प्रबल समझकर इन्द्र भी तैयारीमें जुट गया। भेरी, पट, पटह वाद्य बज उठे। मदमाते हाथी झूलोंसे सजाये जाने लगे। बखतर पहने हुए घोड़े रथमें जोत दिये गये। यशके लोभी क्रुद्ध सैनिक तैयार होने लगे। रणके भारमें समर्थ विश्वावसु और वसु, यम, शशि, कुबेर, भी हाथमें हथियार लेकर तैयार थे। किंपुरुष, गरुड़, गन्धर्व, यक्ष, किंनर, नर, अमर और विरल्लियक्ष भी। जब नगरकी प्रतोलियों (गलियों) में सेना नहीं समा सकी तो वह उड़कर आकाश-तलमें जाने लगी। इन्द्र भी तैयार होकर, ऐरावत हाथी पर बैठकर चला। वह ऐसा लग रहा था मानो विंध्यगिरि पर शरद्के महामेघ ही प्रकट हुए हों ॥१-९॥

[१५] छावनीसे पाँच सौ धनुष दूर मृग मन्द भद्र और संकीर्ण हाथियोंसे घटाकी रचना कर, आगे-पीछे सैनिक-समूह स्थित हो गया। सेनापति और मन्त्रियोंने व्यूहकी रचना कर ली। उसकी कक्ष (अग्रिम) पक्षमें (पार्श्व) सेनाओंमें प्रबल अश्वोंसे विकराल लोकपाल देव थे। प्रत्येक गजके पास, रक्त

हय पञ्च पञ्च चञ्चल वलग्ग । भड तिण्णि तिण्णि हएँ हएँ स-खग्ग ॥५॥
एँउ जेत्तिउ रक्खणु गअवरासु । तेत्तिउ जेँ पुणु वि थिउ रहवरासु ॥६॥
चउदह अङ्गुलिहिँ णरो णरासु । रयणिहिँ तिहिँ तिहिँ हउ हयवरासु ॥७॥
पञ्चहिँ पञ्चहिँ गउ गयवरासु । धाणुक्किउ छहिँ धाणुक्किमासु ॥८॥

घत्ता

त वूहु रएप्पिणु भीसणु तूर-वमालु किउ ।
समरङ्गणेँ मेइणि सक्कु स इं भू सेवि थिउ ॥९॥

●

[१७. सत्तरहमो संधि]

मन्तणएँ समत्तएँ दूएँ णियत्तएँ उभय-वलहँ अमरिसु चडइ ।
तइलोक्क-भयङ्करु सुरवर-डामरु रावणु इन्दहोँ अब्भिडइ ॥

[१]

किय करि सारि-सज्ज पक्खरिय तुरय-थट्टा ।
उब्भिय धय-णिहाय स-विमाण रह पयट्टा ॥१॥
आहय समर-भेरि भीसावणि । सुरवर-वइरि - वीर - कम्पावणि ॥२॥
हत्थ-पहत्थ करेँवि सेणावइ । दिण्णु पयाणउ पचलिउ णरवइ ॥३॥
कुम्भयण्णु लङ्केस-विहीसण । णल-सुग्गीव - णील-खर-दूसण ॥४॥
मय - मारिच्च - मिच्च - सुअसारण । अङ्गङ्गय - इन्दइ - घणवाहण ॥५॥
रण-रसेण भिज्जन्त पधाइय । णिविसेँ समर-भूमि संपाविय ॥६॥
पञ्चहिँ धणु-सएहिँ पडु ढेप्पिणु । रिउ-वूहहोँ पडिवूहु रएप्पिणु ॥७॥

कमलकी तरह आरक्तनेत्र, और ओंठ काटते हुए १५ अंगरक्षक थे। चंचल वल्गावाले पाँच-पाँच अश्व थे। प्रत्येक अश्वके पास खड्गधारी तीन-तीन योधा थे। इस तरह जितने रक्षक गजवरोंके थे उतने ही रथवरोंके भी थे। प्रत्येक पैदल सैनिकको चौदह अंगुलियोंकी, अश्वोंको अश्वोंसे तीन हाथ की, गजोंको गजोंसे पाँच हाथकी और धनुर्धारियोंको छः हाथकी दूरी पर खड़ा कर दिया गया। इस तरह व्यूह रचकर उन्होंने तूर्यका भयंकर कोलाहल किया, मानो युद्धमें धरतीको भूपित करके स्थित रख दिया गया हो ॥१-६॥

सत्रहवीं संधि

मन्त्रणा समाप्त होने और दूतके चले जानेपर, दोनों ओरकी सेनाओंका रोष उबल पड़ा। त्रिलोकभयंकर, और इन्द्रको आतंकित करनेवाले रावणने इन्द्रपर चढ़ाई कर दी।

[१] अंबारीसे सजे हाथी, बखतर पहने घोड़ोंके झुंड, पताका फहराते विमान और रथ आगे बढ़ने लगे। देवों और वीर शत्रुओंको कँपानेवाली भीषण रणभेरी बज उठी। हस्त और प्रहस्तको सेनापति बनाकर, रावणने कूच किया। कुम्भकर्ण, विभीषण, नल, सुग्रीव, नील, खरदूषण, मय, मारीच, अनुचर तथा मन्त्री, दोनों पुत्र इन्द्रजीत और मेघवाहन, सबके सब, रणके रसरंगमें सराबोर होकर दौड़े। सब क्षण भरमें युद्धभूमिमें जा पहुँचे। रावणने भी पाँच सौ धनुषके अन्तरसे इन्द्रके विरुद्ध प्रति-व्यूहकी रचना की। उसकी सेनापर राक्षस-सेना टूट पड़ी,

णिवडिउ जाउहाण-वलु सुर-वलें । पहय-पडह - परिवड्डिय-कलयलें ॥८॥
जाउ महाहउ भुवण-भयङ्करु । उट्ठिउ रउ मइलन्तु दियन्तरु ॥९॥

घत्ता

णर-हय-गय-गत्तइँ रह-धय-छत्तइँ सव्वइँ खणें उद्धूलियइँ ।
जिह कुलइँ दुपुत्ते तिह वड्डन्ते वेण्णि वि सेण्णइँ मइलियइँ ॥१०॥

[२]

विब्भम-हाव-भाव - भूभङ्गुरच्छराइ ।
जायइँ सुर-विमाणइ धूलिधूसराइ ॥१॥

ताव हेइ-घट्टणेण करालउ । उच्छलियउ सिहि-जाला-मालउ ॥२॥
सिवियहिँ छत्त-धएँहिँ लग्गन्तिउ । अमर-विमाण-सयाइँ दहन्तिउ ॥३॥
पुणु पच्छलें सोणिय-जल धारउ । रय-पसमणउ हुआस-णिवारउ ॥४॥
ताहिँ असेसु दिसामुहु सित्तउ । थिउ णहु णाइँ कुसुम्भएँ चित्तउ ॥५॥
अण्णउ परियत्तउ गयणङ्गहाँ । ण घुसिणोलिउ णह-सिरि -अङ्गहाँ ॥६॥
जाय वसुन्धरि रुहिरायम्बिरि । सरहस - सुहड-कवन्ध - पणच्चिरि ॥७॥
करि-सिर-मुत्ताहलेंहिँ विसासिय । सञ्झ व ताराइण्ण पदीसिय ॥८॥
रह खुप्पन्ति वहन्ति ण चक्कइँ । वाहण-जाण-विमाणइँ थक्कइँ ॥९॥

घत्ता

तेहएँ वि महारणेँ मेइणि-कारणेँ रत्तेँ तरन्तेँ तरन्ति णर ।
जुज्झन्ति स-मच्छर तोसिय-अच्छर णाइँ महण्णवेँ वारियर ॥१०॥

[३]

तो गज्जन्त-मत्त-मायङ्ग-वाहणेणं ।
अमरिस-कुद्धएण गिव्वाण-साहणेण ॥१॥

जाउहाण-साहणु पडिपेल्लिय । ण खय-सायरेण जगु रेल्लिउ ॥२॥
णिसियर परिभमन्ति पहरण-भुअ । णं आवत्त छुद्ध जल-वुब्वुव ॥३॥
पेक्खेँवि णिय-वलु ओहट्टन्तउ । सुरवगला मुहेँ आवट्टन्तउ ॥४॥

आहत पटहोंसे कलकल ध्वनि होने लगी। दोनोंमें घमासान-युद्ध हुआ। उठी हुई धूलने सूर्यको मलिन कर दिया। मनुष्य, घोड़े और हाथियोंके शरीर तथा रथ, ध्वजा और छत्र धूलसे भर उठे। निरन्तर आगे बढ़ती हुई धूलसे दोनो दल वैसे ही मलिन हो गये जैसे कुपुत्रकी उन्नतिसे कुल मैला हो जाता है ॥१-१०॥

[२] विभ्रम हाव भाव और भ्रूभंगसे युक्त अप्सराएँ और देवोंके विमान, धूलि-धूसरित हो गये। इसी समय वज्रके आघातसे आगकी कराल लपटें उठीं, उनसे पालकियाँ, छत्र, पताकाएँ और सैंकड़ों देवविमान जलने लगे। बार-बार, रक्तकी धारा और धूल फेंककर, आग बुझाई गई। उन रक्तधाराओंसे दिशाओंके मुख ऐसे लाल हो उठे मानो आकाश कुसुम्भके रंगसे रंग गया हो, या मानो आकाशरूपी लक्ष्मीके अंगोंकी कुमकुम नभके आंगनमें बिखर गई हो। वेगशील भटोंके घड़ोंसे नाचती हुई धरती रक्तसे आरक्त हो उठी। हाथियोंके गजमोतियोंसे मिश्रित वह ऐसी जान पड़ती मानो तारोंसे भरी संध्या हो। रथ वहीं गड़ गये, उनके चाक चलते ही न थे, वाहन यान और विमान जहाँके तहाँ ठहर गये। धरतीके लिए, होने वाले उस महासमरमें लाशें रक्तमें तैर रही थीं, सुरबालाओंको सन्तुष्ट करनेवाले, और मत्सरसे भरे, योधा ऐसे लड़ रहे थे मानो महासमुद्रमें जलचर युद्ध कर रहे हों ॥१-१०॥

[३] तब इतनेमें मदमाते हाथियोंके वाहनोंपर आसीन रोषसे इन्द्रकी सेनाने, रावणकी सेनाको चपेटा, मानो प्रलय समुद्रने ही संसारको चपेट लिया हो। निशाचर, अपनी शस्त्रयुक्त भुजाओंसे, आवर्त-क्षुब्ध जल-बुदबुदोंकी तरह घूमने लगे।" इसी बीचमें जब प्रसन्नकीर्तिने देखा कि उसकी सेना पीछे हट रही है,

पेक्खेँवि उत्थल्लन्तइँ छत्तइँ । मत्त-गयहुँ भिज्जन्तइँ गत्तइँ ॥५॥
पेक्खेँवि फुट्टन्तइँ रह-वीढइँ । जाण-विमाणइँ भमरुवगीढइँ ॥६॥
पेक्खेँवि हयवर पाडिज्जन्ता । सुहड-मडप्फर साडिज्जन्ता ॥७॥
आयामेप्पिणु रह-गय-वाहणेँ । भिडिउ पसण्णकित्ति सुर-साहणेँ ॥८॥
वाणर-चिन्धु महागय-सन्दणु । चाव-विहत्थु महिन्दहोँ णन्दणु ॥९॥

घत्ता

णर-हय-गय तज्जँवि रह-धय भञ्जँवि वूहहोँ मज्झेँ पइट्ठु किह ।
वम्मेँहिँ विन्धन्तउ जीविउ लिन्तउ कामिणि-हियउ वियड्ढु जिह ॥१०॥

[४]

सुरवर-किङ्करेहिँ उत्थरेँ वि अहिमुहेहिँ ।
लइउ पसण्णकित्ति तिक्खेहिँ सिलिमुहेहिँ ॥१॥

तो एत्थन्तरेँ ढिढ-भुअ-डालेँ । रावण-पित्तिएण सिरिमालेँ ॥२॥
रहवरु वाहिउ सुरवर-वन्दहोँ । पढमउ 'भिट्टु महाहवेँ चन्दहोँ ॥३॥
कुन्त-विहत्थहोँ सीहारूढहोँ । जयसिरि-पवर-णारि - अवगूढहोँ ॥४॥
'अरेँ स-कलङ्क वङ्क महिलाणण । पुरउ म थाहि जाहि मयलञ्छण' ।५।
त णिसुणेंवि ओखण्डिय-माणउ । ल्हसिउ मियङ्कु थक्कु जमराणउ ॥६॥
महिसारूढु दण्ड-पहरण-धरु । तिहुअण-जण-मण-णयण-भयङ्करु ॥७॥
सो वि समुत्थरन्तु दणु-दुट्ठउ । किउ णिविसद्धेँ पाराउट्ठउ ॥८॥
ताम कुवेरु थक्कु सवडम्मुहु । किउ णाराएँहिँ सो वि परम्मुहु ॥९॥

घत्ता

सिरिमालि धणुद्धरु रणमुहेँ दुद्धरु धरेँ वि ण सक्किउ सुरवरेँहिँ ।
सताउ करन्तउ पाण हरन्तउ वम्महु जेम कु-मुणिवरेँहिँ ॥१०

[५]

भग्गेँ कियन्तेँ समरेँ तो ससि-कुवेर-राए ।
केसरि-कणय-हुअवहा मल्लवन्त-जाए ॥१॥

वह वाडव ज्वालामे पड़ने जा रही है। रथपीठ टूट रहे हैं, यान और विमान चक्कर खा रहे हैं, अश्व गिर रहे हैं, योधाओंका अहंकार चूर-चूर हो रहा है तो वह स्वयं महारथ पर बैठकर शत्रुओंसे भिड़ गया। मनुष्य अश्व और गजोंको तरजकर, पताकाओंको छिन्न-भिन्नकर, शत्रु-व्यूहमे वह वैसे ही प्रवेश कर गया जैसे कामसे आहत, कामिनीके हृदयमे प्राण लेता हुआ विदग्ध प्रविष्ट हो जाता है ॥१-१०॥

[४] जब इन्द्रके अनुचरोंने सामने आकर, अपने तीखे वाणोंसे प्रसन्नकीर्तिको घेर लिया, तब इसी बीच, दृढ़ बाहु, रावणके चाचा, श्रीमालने अपना रथ हाँका। देव-समूहके उस महायुद्धमे सबसे पहले वह चन्द्रसे भिड़ा। जो हाथमे कुन्त लिये सिंहपर आरूढ़ था, और विजय-लक्ष्मी रूपी उत्तम नारीका आलिंगन करने वाला था। उसने उसे ललकारते हुए कहा, "अरे कलंकी कुटिल स्रीमुख चन्द्र, सामने खड़ा मत रह। भाग यहाँसे।" यह सुनते ही विगलित मान वह वहाँसे खिसक गया। उसके बाद, भैंसेपर आरूढ, प्रहार-दण्ड हाथमे लिये हुए, त्रिभुवनके मन और नेत्रोंके लिए भयंकर लगनेवाले यमने भी आधे ही पलमे पीठ दिखा दी। तब कुवेर सामने आया, पर श्रीमालके वाणोंसे उसे भी विमुख होना पड़ा। रणमे दुर्द्धर-धनुर्धारी श्रीमालको बड़े-बड़े देवता भी पकड़नेमे वैसे ही समर्थ रहे, जैसे, संताप-दायक, प्राण हरण करनेवाले कामको खोटे मुनि वशमे नहीं कर सकते ॥१-१०॥

[५] यम, शशि और कुवेरके युद्धमें पीठ दिखाकर भाग चुकनेपर, केसरी, कनक और अग्निदेव सामने आये। फहराती पताकाओंसे युक्त अपना महारथ लेकर, और परम धर्मको ताकमे

तिण्णि वि भिडिय खत्तु आमेल्लेंवि । धय-धूवन्त महारह पेल्लेंवि ॥२॥
तीहि मि समकण्डिउ रयणायरु । णं धाराहर-घणेहिं महीहरु ॥३॥
सरवर-सरवरेहिँ विणिवारिय । तिण्णि वि पुट्ठि देन्त ओसारिय ॥४॥
अमर-कुमार णवर उद्धाइय । रिउ जिह एक्कहिँ मिलवि पराइय ॥५॥
लइय सिलीमुहेहिँ सिरिमालिं । परम-जिणिन्द - चरण-कमलालि ॥६॥
अद्धससीहिँ सीस उच्छिण्णइँ । णं णीलुप्पलाइँ विक्खिण्णइँ ॥७॥
जउ जउ जाउहाणु परिसक्कइ । तउ तउ अहिमुहु को वि ण थक्कइ ॥८॥
णिएँवि कुमार-सिरइँ छिज्जन्तइँ । रण-देवयहेँ वलि व दिज्जन्तइँ ॥९॥

घत्ता

सहसक्खु विरुज्झइ किर सण्णज्झइ ताव जयन्तें दिण्णु रहु ।
'मइँ ताय जियन्तें सुहड-कयन्तें अप्पुणु पहरणु धरहि कहु' ॥१०॥

[६]

जयकारेवि सुरवइं धाइओ जयन्तो ।
'णिसियर थाहि थाहि कहिँ जाहि महु जियन्तो ॥१॥
वाहि वाहि सवडम्मुहु सन्दणु । हउँ धव देमि पुरन्दर-णन्दणु ॥२॥
तीरिय-तोमर - कणिय - घायहुँ । वहु-वावल्ल - भल्ल - णारायहुँ ॥३॥
अद्धससिहिँ खुरुप्प-सेल्लग्गहुँ । पट्टिस-फलिह - सूल-फर-खग्गहुँ ॥४॥
मोग्गर - लउडि - चित्तदण्डुण्डिहिँ । सव्वल-हुलि-हल-मुसल-मुसुण्ढिहिँ ॥५॥
झसर-तिसत्ति - परसु-इसु-पासहुँ । कणय-कोन्त-घण-चक्क - सहासहुँ ॥६॥
रुक्ख-सिलायल - गिरिवर-घायहुँ । हवि-जल-पवण - विज्जु-संघायहुँ ॥७॥
त णिसुणेँवि सिरिमालि-पहरिसिउ । सुरवइ-सुअहोँ महारहु दरिसिउ ॥८॥
'पइँ मेल्लेप्पिणु जय-सिरि-लाहवेँ । को महु अण्णु देइ धव आहवेँ' ॥९॥

रखकर, वे तीनों भिड़ गये। उन्होंने बाणोंसे श्रीमालको ऐसे घेर लिया मानो धाराधर मेघोंने महीधरको घेर लिया हो। पर उसके द्वारा बाणोंसे बाणोंका निवारण कर देने पर वे भी पीठ दिखाकर भाग खड़े हुए। तब अकेला अनरकुमार उठा, और शत्रुकी तरह अकेला ही युद्धस्थलमें पहुँचा। परन्तु जिनेन्द्रके चरण-कमलोंके भ्रमर श्रीमालिने उसे भी बाणोंसे घेर लिया। अर्द्धचन्द्र (शस्त्रविशेष) से उसका सिर छिन्न-भिन्न कर दिया, मानो नील कमल छिन्न हो गया हो। जहाँ-जहाँ वह राक्षस जाता, वहाँ कोई भी उसके सन्मुख नहीं ठहरता। रणदेवोंको दी गई बलिके समान अपने पुत्रको छिन्नमस्तक देखकर जब इन्द्र कुपित होकर संनद्ध होने लगा तो जयन्तने अपना रथ आगे बढ़ाकर कहा, "सुभट-कृतान्त तात! मेरे जीवित रहते हुए आपको शस्त्र लेनेकी क्या आवश्यकता?" ॥१-१०॥

[६] इन्द्रका जयकार करता हुआ, तब इन्द्रपुत्र जयन्त ललकार दौड़ा "राक्षसो, ठहरो-ठहरो, मेरे जीते जी तुम भागकर कहाँ जा रहे हो? जरा अपना रथ आगे बढ़ाओ। मैं तुम्हें, शक्ति तोमर और कर्णिका तीरोंके आघात, प्रचुर वावल्ल-भाले और बाण, अर्धचन्द्र, खुरपा और कुन्त, पट्टिस फलिह सूल फर और खड्ग, मुद्गर, लकुड, चित्रदण्ड, सब्बल, हुलि, हल, मुसल मुसुंढि। हजारों मसर त्रिसरी, परसु, इषु, पाश, कनक, कौत, चक्र, वृक्ष, चट्टान और पहाड़ोंके आघात, आग जल पवन बिजलीकेसे संघातसे, चुनौती देता हूँ।" यह सुनकर श्रीमालको हँसी आ गई। सुरपति-पुत्र जयन्तके सामने अपना रथ करते हुए उसने कहा,—"विजय-लक्ष्मीको शीघ्र पानेके लिए, तुम्हें छोड़कर और कौन मुझे युद्धमें चुनौती दे सकता है" ॥१-६॥

घत्ता

तो एव विसेसेंवि सर सपेसेंवि छिण्णु जयन्तहों तणउ धउ ।
गयणङ्गण-लच्छिहेँ कमल-दलच्छिहेँ हारु णाइँ उच्छलेंवि गउ ॥१०॥

[७]

दहमुह-पित्तिएण दणु-देह-दारणेण ।
मुसुमूरिउ महारहो कणय-पहरणेण ॥१॥

एउ ण जाणहुँ कहिँ गउ सन्दणु । चुक्कउ कह वि कह वि सुर-णन्दणु ॥२॥
दुक्खु दुक्खु मुच्छा-विहलङ्घलु । उट्ठिउ उद्ध-सुण्डु णं मयगलु ॥३॥
भीसण-भिण्डिवाल-पहरण-धरु । जाउहाण-रहु किउ सय-सक्करु ॥४॥
सो वि पहार-विहुरु णिच्चेयणु । मुच्छ पराइउ पसरिय-चेयणु ॥५॥
धाइउ धुणेँवि सरीरु रणङ्गणेँ । कूर महागहु णाइँ णहङ्गणेँ ॥६॥
विण्णि मि दुज्जय दुद्धर पवयल । विण्णि मि भीम-गयासणि-कहयल ॥७॥
वेण्णि मि परिभमन्ति णह-मण्डलें । लीह दिन्ति रावणें आखण्डलें ॥८॥
सुरवइ-णन्दणेण आयामेंवि । कुलिस-दण्ड-सण्णिह गय भामेंवि ॥९॥

घत्ता

आहउ वच्छत्थलें पडिउ रसायलें पाण-विवज्जिउ रयणियरु ।
जउ जाउ जयन्तहों णिसियर-तन्तहों घित्तु णाइँ सिरें रय-णियरु ॥१०॥

[८]

ज सिरिमालि पाडिओ अमर-णन्दणेण ।
ता इन्दइ पधाविओ समउ सन्दणेणं ॥१॥

'अरे दुव्वियड्ढ मम ताउ वहेंवि कहिँ जाहि सण्ढ ॥२॥
चलु चलु हयास मइँ जीवमाणेँ कहिँ जीवियास' ॥३॥
वयणेण तेण करेँ धणुहरु किउ सुर-णन्दणेण ॥४॥
उत्थरिय वे वि समरङ्गणेँ सर-मण्डवु करेवि ॥५॥

इस प्रकार अपनी विशेषता बताकर, उसने तीरोंसे जयन्तकी पताका छिन्न-भिन्न कर दी, उसके टुकड़े, ऐसे मालूम होते थे, मानो आकाशकी शोभा-लक्ष्मीका हार टूटकर बिखर गया हो ॥१०॥

[७] रावणके पितृव्य श्रीमालिने दानवसंहारक कनक तीरोंके प्रहारसे उसका महारथ चूर-चूर कर दिया। यह भी पता नहीं चला कि रथ कहाँ गया। इन्द्रपुत्र बालबाल बच गया। मूर्छासे विह्वलांग वह बड़े कष्टसे ऐसे उठा मानो ऊपर सूँड़ उठाये मत्तगज ही उठा हो। उसने भीषण भिन्दिपाल तीरोंसे श्रीमालके रथकी सौ टुकड़े कर दिये। वह भी प्रहारोंसे निष्प्राण और विधुर होकर, मूर्छित हो गया। थोड़ी देर बाद चेतना आनेपर, शरीर धुनता हुआ वह फिर युद्धक्षेत्रमें ऐसे दौड़ा मानो कोई दुष्ट महाग्रह ही आकाशमें दौड़ा हो। दोनों ही वीर, प्रबल, अजेय और दुर्द्धर थे। दोनों की भुजाएँ हाथीकी सूँड़की तरह प्रचण्ड थीं। दोनों ही आकाश-मण्डलमें घूम-से रहे थे। रावण और इन्द्रकी लीक पर दोनों ही चल रहे थे। समर्थ होकर जयन्तने वज्र और दण्डसे तैयार हो अपना गदा घुमाया। तब छातीमें चोट लगनेसे निर्जीव होकर निशाचर श्रीमालि, जाकर रसातलमें गिरा। इन्द्रपुत्र जयन्तको विजय हुई। निशाचरों पर तो मानो धूलि-समूह ही टूट पड़ा हो ॥१-१०॥

[८] इन्द्रपुत्र जयन्त द्वारा श्रीमालिका पतन होनेपर, इन्द्र-जीत रथपर चढ़कर दौड़ा। वह बोला, "अरे ओ दुर्विदग्ध, मूर्ख मेरे तातका वध कर अब कहाँ जा रहा है। मुड़, मुड़, मेरे जीवित रहते तेरे जीवित रहनेकी आशा कहाँ ?" उसके वचनसे जयन्त भी अपने हाथमें धनुष ले लिया। तब दोनों उछल पड़े। उन्होंने समरांगण अपने तीरोंसे मंडप-सा तान दिया। जोर लगा-

रिउ मद्दणेण आयामें वि दहमुह - णन्दणेण ॥६॥
विणिहय-पहरेंहिँ सण्णाहु छिण्णु तीसहिँ सरेंहिँ ॥७॥
रक्खिउ सरीरु कह कह वि णाहिँ कप्परिउ वीरु ॥८॥
उप्पएँवि जाम किर धरइ पुरन्दरु पत्तु ताम ॥९॥

घत्ता

उग्गामिय-पहरणु चोइय-वारणु अन्तरें थिउ अमराहिवइ ।
'अरें अरिवर-मद्दण रावण-णन्दण उवरिं वलि चारहडि जइ ॥१०॥

[९]

खत्तु मुएवि सव्वेहिं भिउडि-भासुरेहिं ।
लङ्काहिवहों णन्दणो वेढिओ सुरेहिं ॥१॥

वेढिउ एक्कु अणन्तेंहिँ रावणि । तो वि ण गणइ सुहड चूणामणि ॥२॥
रोक्कइ वलइ धाइ अब्भिट्टइ । रिउ पण्णास-सट्ठि दलवट्टइ ॥३॥
सन्दण सन्दणेण संचूरइ । गयवर गयवरेण मुसुमूरइ ॥४॥
तुरउ तुरङ्गमेण विणिवायइ । णरवर णरवर-घाएं घायइ ॥५॥
जाम वियम्भइ सव्वायामे । ताव सु-सारहि सम्मइ-णामें ॥६॥
पभणइ 'रावण किं णिच्चिन्तउ । मल्लवन्त-णन्दणु अत्थन्तउ ॥७॥
अण्णु वि रावणि लइउ अखत्ते । वेढिउ सुरवर-वलेंण समत्तें ॥८॥
दुज्जउ जइ वि महाहवें सक्कइ । एक्कु अणेय जिणेंवि किस क्कइ' ॥९॥

घत्ता

तं वयणें रावणु जण-जूरावणु चडिउ महारहें खग्ग-करु ।
लक्खिज्जइ देवेंहिं वहु-अवलेवेंहिं णाइँ कियन्तु जगन्तयरु ॥१०॥

[१०]

दूरत्थेण णिसियरिन्देण सुरवरिन्दो ।
सीहेण विरुद्धेण जोइओ गइन्दो ॥१॥

'सारहि वाहि वाहि रहु तेत्तहें । आयवत्तु आपण्डुरु जेत्तहें ॥२॥
जेत्तहें अइरावणु गलगज्जइ । जेत्तहें भीसण दुन्दुहि वज्जइ ॥३॥

कर रावण-पुत्र इन्द्रजीतने, आहत अस्त्रों और तीखे तीरोंसे जयन्तके कवचको छिन्न कर दिया। पर वह वीर बच गया, कटा नहीं। वह उछलकर उसे पकड़नेवाला ही था कि इन्द्र वहाँ पहुँच गया। हाथमें हथियार लेकर, हाथीको आगे बढाते हुए, इन्द्रने दोनोंके बीचमें खड़े होकर, कहा "अरे श्रेष्ठ शत्रुसंहारक रावण नन्दन, यदि तुझमें वीरता हो तो उठ।" ॥१-१०॥

[९] भयङ्कर भौंहोंवाले देवोंने क्षात्रधर्मको ताकमें रखकर लंकाधिप-पुत्र इन्द्रजीतको घेर लिया। यद्यपि वह अनेकोंसे घिरा हुआ था फिर भी उस सुभट चूड़ामणिने उन्हें कुछ नहीं समझा। वह उन्हें रोकता, कभी मुड़ता, लड़ता और दौड़ता। उसने पचास साठ सुभटोंका अन्त कर दिया। वह रथसे रथको चूर चूर कर देता, हाथीसे हाथीको मसल देता, अश्वसे अश्वको गिरा देता। नरवरके आघातसे नरको घायल कर देता। इस प्रकार जब वह सभीको अचरजमें डाल रहा था, तब सम्मति नामक, उत्तम सारथिने जाकर रावणसे कहा, "प्रभु, आप निश्चिन्त क्यों हैं? माल्यवन्तका पुत्र श्रीमालि मारा गया है। और भी इन्द्रजीतको प्रमत्त देवसेनाने अक्षात्रधर्मसे घेर लिया है। यद्यपि वह युद्धमें अजेय है। पर एक, अनेकोंको युद्धमें कैसे जीत सकता है।" यह सुनते ही, जन संतापक रावण हाथमें महाखड्ग लेकर, रथमें चढ़कर दौड़ा। उसे आते हुए देखकर, उन दोनों वीरोंने समझा मानो जगका अन्त करनेवाला साक्षात् यम ही आ रहा हो ॥१-१०॥

[१०] दूरसे ही रावणने इन्द्रको ऐसे घूरकर देखा मानो क्रुद्ध सिंह गजराजको देख रहा हो। तब उसने अपने सारथिसे कहा, "मेरे रथको हाँककर वहाँ उस धवल छत्रके पास ले चलो, जहाँ इन्द्रका ऐरावत हाथी चिग्घाड़ रहा है। दुन्दुभि बज रही

जेत्तहेँ सुरवइ सुर-परियरियउ। जेत्तहेँ वज्ज-दण्डु करेँ धरियउ' ॥४॥
तं णिसुणेँवि सम्मइ उच्छाहिउ। पूरिउ सङ्खु महारहु वाहिउ ॥५॥
किउ कलयलु दिण्णइँ रण-तूरइँ। हलियइँ सणि-जम-मुहइँ व कूरइँ ॥६॥
समरु घुट्टु वलइ मि अब्भिट्टइँ। रण-रसियइँ सण्णाह-विसट्टइँ ॥७॥
पवर-तुरङ्गम पवर-तुरङ्गहुँ। भिडिय मयङ्ग मत्त-मायङ्गहुँ ॥८॥
रह रहवरहुँ परोप्परु धाइय। पायालहुँ पायाल पराइय ॥९॥

घत्ता

मेल्लिय-हुङ्कारइँ दिण्ण-पहारइँ सिर-कर-णास णमन्ताइँ।
भिडियइँ अ-णिविण्णइँ वेण्णि मि सेण्णइँ मिहुणइँ जेम अणुरत्ताइँ ॥१०॥

[११]

जाउ महन्तु आहवो विहिँ विहिं जणाहुं।
इन्दइ-इन्दतणयहुं इन्द-रावणाहुं ॥१॥
रयणासव - सहसार - जणेरहुँ। मय - भेसइ - मारिच्च - कुवेरहुँ ॥२॥
जम-सुग्गीवहुँ दूसम-सीलहु। अणल - णलहुँ पलयाणिल-णीलहुँ ॥३॥
ससि-अङ्गयहुँ दिवायर-अङ्गहुँ। खर-चित्तहुँ दूसण-चित्तङ्गहुँ ॥४॥
असु-चमूहुँ वासावसु-हत्थहुँ। सारण - हरि - हरिकेसि - पहत्थहुँ ॥५॥
कुम्भयण्ण - ईसाणणरिन्दहुँ। विहि-केसरिहिँ विहासण-खन्दहुँ ॥६॥
घणवाहण - तडिकेसकुमारहुँ। मल्लवन्त-कणयहुँ दुव्वारहुँ ॥७॥
"जम्वुमालि - जीमुत्तणिणायहुँ। वज्जोयर - वज्जाउहरायहुँ ॥८॥
वाणरधय - पञ्चाणणचिन्धहुँ। एम जुज्झु अब्भिट्ट पसिद्धहुँ ॥९॥

घत्ता

करि-कुम्भ-विकत्तणु गञ्जोल्लिय-तणु जो रणेँ जासु समावडिउ।
सो तासु समच्छरु तोसिय-अच्छरु गिरिहेँ दवग्गि व अब्भिडिउ ॥१०॥

है। और इन्द्र अपने हाथमें वज्र लिये, देव-परिवारके साथ खड़ा है।" यह सुनकर सारथिने उत्साहित होकर शंखध्वनिके साथ रथ हाँक दिया। कोलाहल होने लगा। रण दुंदभि वज उठी। यम और शनिकी तरह क्रूर मुख (सैनिक) हँसने लगे। युद्ध प्रारम्भ होते ही रण-रससे भरी हुई सेनाएँ कवच पहने हुए एक दूसरे से जा भिड़ीं। प्रवल अश्वोंसे प्रवल अश्व, मत्त गजोंसे मत्त गज लड़ने लगे। रथ रथोंके ऊपर दौड़ पड़े और पदाति सैनिक पदाति सैनिकोंपर। हुंकार छोड़ती हुई, प्रहार करती हुई, सिर हाथ और नाक झुकाई हुई, अनुद्विग्न दोनों सेनाएँ मिथुन-युगलकी तरह अनुरक्त होकर भिड़ गई ॥१-१०॥

[११] दो दो योधाओंमें घमासान युद्ध होने लगा। इंद्रजीत और जयन्तमें। तथा रावण और इन्द्रमें। रत्नाश्रव और सहस्रारमें। मय और बृहस्पतिमें, मारीच और कुवेरमें। यम और सुग्रीवमें, दुःसह स्वभाव अनिल और नलमें। पवन और नीलमें। चन्द्र और अंगदमें। सूर्य और अंगमें। खर और चित्रमें, दूषण और चित्रांगमें। सूत और चमूमें। विश्वावसु और हस्वमें। सारण और हरिमें। हरिकेशि और प्रहस्तमें। कुम्भकर्ण और ईशानेन्द्रमें। ब्रह्मा और केशरीमें। विभीषण और स्कन्धमें। घनवाहन और तडित्केश कुमारमें। माल्यवन्त और कनकमें। जामवन्त और जीमूतपुत्रमें। वज्रोदर और वज्रायुधधरमें तथा वानरध्वजियों और सिंहध्वजियोंमें। इस प्रकारसे उनमें जयकीट संघर्ष छिड़ गया। गजोंके कुम्भस्थलोंको विदीर्ण करनेवाले, पुलकितशरीर, जिस योधाके सम्मुख जो आ पड़ता मत्सरसे भरकर अप्सराओंको सन्तुष्ट करनेवाला वह उससे उसी तरह भिड़ जाता, जिस तरह दावानल पहाड़ से ॥१-१०॥

[१२]

को वि किवाण-पाणिए सुरवहू णिएवि ।
ण मुअइ मण्डलग्गु पहरं समल्लिएवि ॥१॥

को वि णीसरन्तन्त-चुम्भलो । भमइ मत्त-हत्थि व स-सङ्खलो ॥२॥
को वि कुम्भि-कुम्भयल-दारणो । मोत्तिओह - उज्जलिय-पहरणो ॥३॥
को वि दन्त-मुहलुक्खयाउहो । धाइ मत्त-मायङ्ग - सम्मुहो ॥४॥
को वि खुडिय-सीसो धणुद्धरो । वलइ धाइ विन्धइ स-मच्छरो ॥५॥
को वि वाण-विणिभिण्ण-वच्छओ । वाहिरन्तरुच्चरिय - पिच्छओ ॥६॥
सोणियारुणो सहइ णरवरो । रत्त-कमल-पुञ्जो व्व स-भमरो ॥७॥
को वि एक्क-चलणे तुरङ्गमे । हरि व वित्थिओ ण भरिए कमे ॥८॥
को वि सिरउडे करेँ वि करवले । जुज्झ-भिक्ख मग्गेइ पर-वले ॥९॥

घत्ता

भडु को वि पडिच्छिरु णिव्वट्टिय-सिरु सोणिय-धारुच्छलिय-तणु ।
लक्खिज्जइ दारुणु सिन्दूरारुणु फग्गुणेँ णाइँ सहसकिरणु ॥१०॥

[१३]

कत्थ इ मत्त-कुञ्जरा जीविएण चत्ता ।
कसण-महाघण व्व दीसन्ति धरणि-पत्ता ॥१॥

कत्थ इ स-विसाणइँ कुम्भयलइँ । ण रणवहु-उक्खलइँ स-मुसलइँ ॥२॥
कत्थ इ हय करवालहिँ खण्डिय । अन्त-ललन्त खलन्त पहिण्डिय ॥३॥
कत्थ इ छत्तइँ हयइँ विसालइँ । ण जम-भोयणेँ दिण्णइँ थालइँ ॥४॥
कत्थ इ सुहड-सिराइँ पलोट्टइँ । णाइँ अ-णालइँ णव-कन्दोट्टइँ ॥५॥
कत्थ इ रह-चक्कइँ विच्छिण्णइँ । कलि-कालहोँ आसणइँ व दिण्णइँ ॥६॥

[१२] कोई योधा सुरवधूका मुँह देखकर आघात कर रहा था। हाथमें तलवार लिये हुए, वह सेनाके अग्रभागसे प्रहार खाकर भी हट नहीं रहा था। किसीका शेखर ही वाहर निकल पड़ा, वह ऐसा लगता था मानो शृंखलासहित मत्त गज ही हो। कुम्भस्थलको छिन्न-भिन्न करनेवाले किसी योधाका अस्त्र मोतियोंके समूहसे चमक रहा था। कोई योधा मूसलसदृश दाँतवाले मत्त गजके सम्मुख दौड़ रहा था। कोई छिन्नमस्तक धनुर्धारी ईर्ष्यासे भरकर मुड़ता, दौड़ता और विद्ध होता हुआ दीख रहा था। किसीका वक्ष:स्थल तीरोंसे इतना छिन्न-भिन्न हो चुका था कि भीतर-वाहर पुंख दिखाई दे रहे थे। रक्त-रंजित कोई महान् योधा ऐसा सोह रहा था मानो भ्रमरसहित रक्तकमलोंका समूह हो। कोई योधा एक पैरसे अश्वपर (राजा वलिके दानप्रसंगसे) विष्णुकी तरह, दूसरा चरण नहीं रख पा रहा था। कोई मस्तकपर हाथ रखकर शत्रुसेनासे युद्धकी भीख माँग रहा था। सिर कटा, रक्तसे लथ-पथ शरीर· कोई योधा ऐसा जान पड़ता था मानो सिन्दूरकी तरह लाल, फाल्गुनका दारुण तरुण सूर्य हो ॥१–१०॥

[१३] कहींपर भूमिपर पड़े हुए निर्जीव गज ऐसे जान पड़ते थे मानो काली मेघघटा ही धरतीपर अवतरित हुई हो। कहीं पर सूँड़ सहित कुम्भस्थल पड़े थे, जो मानो युद्धरूपी स्त्रीके ऊखल और मूसलकी तरह दिखाई दे रहे थे। कही पर खड्गसे छिन्न छपपटाते हुए अश्व पड़े थे, और कही पर कटे हुए वड़े-वड़े छत्र ऐसे पड़े थे मानो यमके भोजनके लिए वड़े-वड़े थाल हों। कहीं पर सुभटोंके सिर लोट, पोट हो रहे थे। जो ऐसे लगते थे मानो डंठल रहित नव कुंदपुष्पोंका समूह हो· कहीं पर खंडित रथ-चक्र ऐसे पड़े थे मानो कलिकालके लिए आसन हो। कहींपर

कत्थ वि भडहों सिवङ्गण ढुक्किय । 'हियवउ णाहिँ' भणेवि उहुक्किय ॥७॥
कत्थ वि गिद्धु कवन्धेँ परिट्ठिउ । ण अहिणव-सिरु सुहडु समुट्ठिउ ॥८॥
कत्थ इ गिद्धें मणुसु ण खद्धउ । वाणेँहिँ चञ्चुहिँ भेउ ण लद्धउ ॥९॥

घत्ता

कत्थ इ णर-रुण्डें हिँ कर-कम-तुण्डें हिँ समर-वसुन्धरि भीसणिय ।
वहु-खण्ड-पयारें हिँ ण सूआरें हिँ रइय रसोइ जमहों तणिय ॥१०॥

[१४]

तहिँ तेहएँ महाहवे किय-महोच्छवेहिँ ।
कोक्किउ एक्कमेक्कु लङ्केस-वासवेहिँ ॥१॥

'उरेँ उरेँ सक्क सक्क परिसक्कहि । जिह णिट्ठविउ मालि तिह थक्कहि ॥२॥
हउँ सो रावणु भुवण-भयङ्करु । सुरवर-कुल-कियन्तु रणेँ दुद्धरु' ॥३॥
तं णिसुणेवि वलिउ आखण्डलु । पच्छायन्तु सरेँ हिँ णह-मण्डलु ॥४॥
दहमुहो वि उत्थरिउ स-मच्छरु । किउ सर-जालु सरेँहिँ सय-सक्करु ॥५॥
तो एत्थन्तरेँ हय-पडिवक्खें । सरु अग्गेउ मुक्कु सहसक्खें ॥६॥
धाइउ धगधगन्तु धूमन्तउ । चिन्धें हिँ छत्त-धएँहिँ लग्गन्तउ ॥७॥
रावण-वलु णासंघिय-जीविउ । णासइ जाला-मालालीविउ ॥८॥

घत्ता

रयणियर-पहाणें वारुण-वाणें सरवरग्गि उल्हावियउ ।
मसि-वण्णुपरत्तउ धूमल-गत्तउ पिसुणु जेम वोल्लावियउ ॥९॥

[१५]

उवसमिए हुआसणे वयण-भासुरेणं ।
वहल-तमोह-पहरणं पेसियं सुरेण ॥१॥

किउ अन्धारउ तेण रणङ्गणु । किं पि ण देक्खइ णिसियर-साहणु ॥२॥
जिम्भइ अङ्गु वलइ णिद्दायइ । सुअइ अचेयणु ओसुविणायइ ॥३॥
पेक्खेंवि णिय-वलु ओणल्लन्तउ । मेल्लिउ दिणयरत्थु पजलन्तउ ॥४॥

किसी मृत योधाको देखकर शृगाली यह कह कर चल देती थी कि इसमें जिगर नहीं है। कहीं धड़ोंपर बैठे हुए गीध ऐसे लगते थे मानो योधाके (शवमें) नये सिर निकल आये हो। कहींपर गीध चोंच और बाणोंमें भेद न पाकर, मांसभक्षण करनेमें असमर्थ हो रहे थे। नरमुंडों और कटे हुए हाथ-पैरोंके समूहसे भीषण धरा ऐसी मालूम हो रही थी कि मानो यमके लिए रसोइयोंने तरह-तरहकी रसोई बनाई हो ॥१-१०॥

[१४] उस युद्धमें धूम मचानेवाले, इन्द्र और रावणने एक दूसरेको ललकारा। रावणने कहा—"अरे-अरे समर्थ इन्द्र, हटो-हटो, मालिकी तरह तुम भी नष्ट हो जाओगे। मैं वही भुवन-भयङ्कर, देवकुलके लिए कृतान्त, और रणमें दुर्धर रावण हूँ।" यह सुनकर, शर-जालसे आकाशको ढकता हुआ इन्द्र मुड़ा। रावणने भी उछलकर अपने तीरोंसे उस शर-जालको काट दिया। तब शत्रुसंहारक इन्द्रने आग्नेय बाण छोड़ा, वह धक-धक करता और धुँआ छोड़ता हुआ, रावणके चिह्न छत्र और पताकासे जा लगा। आगकी लपटोंमें जलती हुई रावणकी सेनाके प्राण संकटमें पड़ गये। उसपर निशाचर-प्रधान रावणने वारुणबाणसे आग्नेय बाणकी ज्वालाको शान्त कर दिया। तब वह पिशुनकी तरह मणिवर्ण (काला) और धूमिल शरीर हो गया" ॥१-९॥

[१५] आग बुझनेपर भास्वरशरीर इन्द्रने तमका बाण छोड़ा। उससे समूचे युद्धक्षेत्रमें अन्धकार फैल गया। निशाचर-सेनाको कुछ भी दिखाई नहीं देता था। उन्हें जंभाई आने लगी, अंग-अंग टूटनेसे लगे। नींद आने-सी लगी। वे बेसुध सोने लगे। सपना देखने लगे। अपने सैनिकोंको इस तरह झुकते देखकर, रावणने जलता हुआ सूर्य बाण छोड़ा। इन्द्रके प्रबल राहु अस्त्र

अमराहिवें॑ण राहु-वर-पहरणु । णाग-पास सर मुअइ दसाणणु ॥५॥
पवर-भुअङ्ग-सहासें॑हिँ दट्ठउ । सुर-बलु पाण लएवि पणट्ठउ ॥६॥
गारुडत्थु वासवें॑ण विसज्जिउ । विसहर-सरवर-जालु परज्जिउ ॥७॥
खगउड-पवणन्दोलिय मेइणि । डोला-रूढी ण वर-कामिणि ॥८॥
पक्ख - पवण - पडिपहय-महीहर । णच्चाविय स-दिसिवह स-सायर ॥९॥

घत्ता

मेल्लेँ॑वि रिउ-घायणु सरु णारायणु तिजगविहूसणेँ॑ गऍ॑ चडिउ ।
जेत्तहेँ॑ अइरावणु तेत्तहेँ॑ रावणु जाऍ॑वि इन्दहों॑ अब्भिडिउ ॥१०॥

[१६]

मत्त गइन्द दोवि उब्भिण्ण-कसण-देहा ।
ण गज्जन्त धन्त सम-उत्थरन्त मेहा ॥१॥

परोवरस्स पत्तया । मयम्बु - सित्त - गत्तया ॥२॥
थिरोर थोर-कन्धरा । पलोट्ट-दाण - णिज्झरा ॥३॥
स-सोयर व्व पाउसा । मयन्ध मुक्क-अङ्कुसा ॥४॥
विसाल-कुम्भमण्डला । णिबद्ध-दन्त - उज्जला ॥५॥
अथक्क-कण्ण - चामरा । णिवारियालि - गोयरा ॥६॥
समुद्ध-सुण्ड-भीसणा । विसट्ट - घण्ट - णीसणा ॥७॥
मणोज्ज-गेज्ज-पन्तिणो । भमन्ति बे वि दन्तिणो ॥८॥

घत्ता

मयगलें॑हिँ महन्तें॑हिँ विहि मि भमन्तें॑हिँ सुरवइ-लङ्काहिवेँ॑ पवर ।
भव-भवणें॑हिँ छूढी ण महि मूढी भमइ स-सायर स-धरधर ॥९॥

[१७]

तिजगविहूसणेण किउ सुर-करी णिरत्थो ।
परिओसिय णिसायरा रहसिउ वइरि-सत्थो ॥१॥

रावणु णव-जुवाणु वलवन्तउ । अमराहिउ गय-वेस-महन्तउ ॥२॥
भमेँ॑ वि ण सक्किउ करिवरु खञ्चिउ । रक्खे सयवारउ परियञ्चिउ ॥३॥
गउ गएण पहु पहुणोड्डुद्धउ । झम्प देवि अंसुऍ॑ण णिवद्धउ ॥४॥

छोड़नेपर, रावणने नागपाश और दूसरे वाण चलाये। हजारों साँपोंके काटनेसे इन्द्रकी सेना मरने लगी। तव इन्द्रने गरुड़ अस्त्र छोड़कर विपधर-वाणोंके जालको काट दिया। पक्षिकुलकी हवासे आन्दोलित धरती, ऐसी जान पड़ती थी, मानो सुन्दर कामिनी डोलेमें वैठी हो। पंखोंकी हवासे प्रतिहत महीधर, मानो दिशाओं और समुद्र सहित धरतीको नचा रहे थे। रिपुघाती नारायण वाण छोड़कर, रावण त्रिजगभूपण हाथीपर चढ़कर, वहाँ गया जहाँ इन्द्रका ऐरावत हाथी था। जाकर, वह इन्द्रसे भिड़ गया ॥१-१०॥

[१६] दोनों ही हाथी उभरी हुई काली देहके थे। मानो गरजते-दौड़ते हुए, समान उछलते हुए मेघ हों। दोनों ही मदसे सिंचित शरीरवाले थे। दोनों ही के उर, कन्धे और वक्ष विशाल थे। दोनोंसे मदजलके निर्झर वह रहे थे। दोनों ही, वर्षाकी तरह जल-कणवाले, मदांध, निरंकुश, विशाल-कुम्भस्थल और उज्ज्वल दाँत वाले थे। चामरकी तरह उनके कान भ्रमर उड़ा रहे थे। उठी हुई सूँड़से दोनों भयङ्कर थे। दोनोंकी सुन्दर घण्टाध्वनि हो रही थी। सुन्दर कण्ठमालासे सहित वे दोनों गज घूम रहे थे। उन मतवाले महान् घूमते हुए हाथियोंसे इन्द्र और रावण ऐसे मालूम होते थे मानो संसाररूपी भवनसे मुक्त मुग्धा धरती समुद्र और पहाड़ोंके साथ घूम रही हो ॥१-१०॥

[१७] त्रिजगभूपण हाथीने ऐरावतको निरस्त्र कर दिया। निशाचर खूब प्रसन्न हुए और वैरीसमूह खिसकने लगा। रावण नवयुवक और वलवान् था जव कि इन्द्र वृद्ध। गिरा हुआ हाथी टससे मस नहीं हुआ। महावतने सौ वार उसकी परिक्रमा दी। गदाके प्रहारसे इन्द्र भी मूर्छित हो गया। हवा करके उसे वरत्रने पकड़ लिया। निशाचरसेनामें तव विजयकी घोषणा हुई।

विजउ घुट्ठु रयणीयर-णाहहों । देवेंहिं दुन्दुहि दिण्ण दिवड्ढहों ॥५॥
ताव जयन्तु दसाणण-जाए । आणिउ वन्धेंवि वाहु-सहाए ॥६॥
जमु सुग्गीवें दूसम-सीले । अणलु णलेण अणिलु रणें णीलें ॥७॥
खर-दूसणेंहिं चित्त-चित्तङ्गय । रवि ससि लेवि आय अङ्गङ्गय ॥८॥
सुरवर-गुरु मएण णिब्भिच्चें । लइउ कुवेरु समरें मारिच्चें ॥९॥

घत्ता

जो जसु उत्थरियउ सो तें धरियउ गेण्हेंवि पवर-वन्दि-सयइँ ।
गउ सुरवर-डामरु पुरु अजरामरु जिणु जिह जिणेंवि महाभयइँ ॥१०॥

[१८]

लङ्क पुरन्दरे णिए जय-सिरी-णिवासो ।
सहसारेण पत्थिओ पत्थिवो दसासो ॥१॥

'अहों जम-धणय-सक्क-कम्पावण । देहि सुपुत्त-भिक्ख महु रावण' ॥२॥
त णिसुणेवि भणइ सुर-वन्धणु । 'तुम्ह वि अम्ह वि एउ णिवन्धणु ॥३॥
जमु तलवरु परिपालउ पट्टणु । पङ्गणु णिकिउ करउ पहञ्जणु ॥४॥
पुप्फ-पयरु घरें देउ वणासइ । सहुँ गन्धव्वेंहिं गायउ सरसइ ॥५॥
वत्थ-सहासइँ हवि पक्खालउ । कोसु असेसु कुवेरु णिहालउ ॥६॥
जोण्ह करेउ मियङ्कु णिरन्तरु । सीयलु णहयलें तवउ दिवायरु ॥७॥
अमरराउ मज्जणउ भरावउ । अण्णु वि घरोंहिं छुडउ देवावउ ॥८॥
त पडिवण्णु सव्वु सहसारें । मुक्कु सक्कु लङ्कालङ्कारें ॥९॥

घत्ता

णिय-रज्जु विवज्जेंवि गउ पव्वज्जेंवि सासयपुरहों सहसणयणु ।
जय-सिरि-वहु मण्डेंवि थिउ अवरुण्डेंवि सइँ भुय-फलिहेंहिं दहवयणु ॥१०॥

इय चारु-पउमचरिए धणञ्जयासिय-सयम्भुएव-कए ।
जाणह 'रा व ण वि ज य' सत्तारहमं इमं पव्वं ॥

●

आकाशमें देवोंने दुन्दुभि बजाई। इतनेमें इन्द्रजीत जयन्तको बाँधकर ले आया। यमको दु सह स्वभाव सुग्रीव। अग्निको नल, पवनको नील, चित्र और चित्रांगको क्रमशः खर व दूषण, रवि और शशिको अंग और अगद। बृहस्पतिको मय और कुबेरको युद्धके मध्य मारीचने पकड़ लिया ॥१-९॥

जिसके आगे जो उछला उसने उसीको पकड़ लिया। जिस प्रकार जिन भयोंको जीतकर अजरामरपुरको जाते हैं, उसी प्रकार देव भयंकर रावण भी सैकड़ों वंदियोंको जीत-पकड़कर अपने नगरकी ओर चला गया ॥१०॥

[१८] जयलक्ष्मीके आश्रय—निकेतन, रावणसे, (इन्द्रके लंका आनेपर) सहस्रारने यह प्रार्थना की—"अरे यम, धनद और इन्द्रको कँपानेवाले रावण, मुझे पुत्रकी भीख दो।" यह सुनकर सुरपीडक रावणने कहा—"तुम्हें भी हमारी एक शर्त माननी पड़ेगी। यम पाताल नगरकी रक्षा करे, निष्क्रिय पवन हवा करे। वनस्पति मेरे घरपर पुष्पसमूह दे, सरस्वती गन्धर्वोंके साथ गान करे, हवि सैकड़ों वस्त्रोंको प्रक्षालित करे, कुबेर खजानेको देखे, चन्द्रमा सदैव प्रकाश करता रहे। आकाशतलमें, सूर्य धीमे-धीमे तपे। इन्द्र स्नान कराये तथा मेघ पानी छिड़कने का काम करे। सहस्रारने ये शर्तें मंजूर कर लीं। तब, रावणने इन्द्रको मुक्त कर दिया ॥१-९॥

परन्तु इन्द्र अपना राज्य छोड़, संन्यास साधकर मोक्ष चला गया। रावणने भी बलात् विजयलक्ष्मी रूपी वधूका अपहरणकर, अपने बाहुपाशसे उसका आलिंगन किया ॥१०॥

इस तरह, धनजय आश्रित स्वयम्भूकृत सुन्दर पद्मचरितमें 'रावणविजय' नामक सत्तरहवाँ पर्व समाप्त हुआ।

[१८. अट्ठारहमो संधि]

रणेँ माणु मलेँवि पुरन्दरहोँ परियन्चेँवि सिहरइँ मन्दरहोँ।
आवइ वि पडीवउ जाम पहु ताणन्तरेँ दिट्ठु अणन्तरहु॥

[१]

पेक्खेप्पिणु गिरि-कञ्चण-सुमद्दु। जिण-वन्दण-दूरुच्छलिय-सद्दु॥१॥
सुरवर-सय-सेव-करावणेण। मारिच्चि पपुच्छिउ रावणेण॥२॥
'भउ-भञ्जण भुवणुच्छलिय-णाम। उहु कलयलु सुम्मइ काइँ माम'॥३॥
त णिसुणेँवि पभणइ समर-धीरु। 'एहु जइ णामेण अणन्तवीरु॥४॥
दसरह-भायरु अणरण्ण-जाउ। सहसयर-सणेहेँ तवसि जाउ॥५॥
उप्पण्णउ एयहोँ एत्थु णाणु। उहु दीसइ देवागमु स-जाणु'॥६॥
तं वयणु सुणेप्पिणु णिसियरिन्दु। गउ जेत्तहेँ जेत्तहेँ मुणिवरिन्दु॥७॥
परियन्चेँवि णवेँवि थुणेँवि णिविट्ठ। सयलु वि जणु वयइँ लयन्तु दिट्ठु॥८॥

घत्ता

महवयइँ को वि कोँ वि अणुवयइँ कोँ वि सिक्खावयइँ गुणव्वयइँ।
कोँ वि दिढु सम्मत्तु लएवि थिउ पर रावणु एक्कु ण उवसमिउ॥९॥

[२]

धम्मरहु महारिसि भणइ तेत्थु। 'मणुयत्तु लहेँवि वइसरेँवि एत्थु॥१॥
अहोँ दहमुह मोहन्धारेँ छूढ। रयणायरेँ रयणु ण लेहि मूढ॥२॥
असियालएँ अमिउ ण लेहि केम। अच्छहि णिहुअउ कट्ठमउ जेम'॥३॥
त वयणु सुणेप्पिणु दससिरेण। वुच्चइ थोत्तुग्गीरिय-गिरेण॥४॥
'सक्कमि धूमद्धएँ झम्प देवि। सक्कमि फण-फणिमणि-रयणु लेवि॥५॥
सक्कमि गिरि-मन्दरु णिद्दलेवि। सक्कमि दस दिसि-वह दरमलेवि॥६॥
सक्कमि मारुउ पोट्टलेँ छुहेवि। सक्कमि जम-महिसेँ समारुहेवि॥७॥
सक्कमि रयणायर-जलु पिएवि। सक्कमि आसीविसु अहि णिएवि॥८॥

अठारहवीं संधि

युद्धमें इन्द्रका मद चूरकर रावणने मंदराचल पर्वतके शिखरोंकी प्रदक्षिण की। वहाँसे लौटते हुए उसे अनन्तरथ मुनिके दर्शन हुए।

[१] सुभद्र और सुमेर पर्वत पर जिनवन्दनाका कोलाहल हो रहा था। उसे सुनकर सैकड़ों देवोंसे सेवा करानेवाले रावणने, भुवनमें विख्यातनाम और भटसंहारक अपने मामा मारीचसे पूछा, "यह किस बातका कल-कल शब्द हो रहा है।" यह सुनकर युद्धधीर उसने कहा, "यह अनन्तवीर नामके मुनि हैं। दशरथके भाई अनरण्यके पुत्र। सहस्रकरके स्नेहमें इन्होंने दीक्षा ग्रहण कर ली थी। और अब इन्हें केवलज्ञान प्राप्त हुआ है। यान और देवोंका यह आगमन इसीलिए हो रहा है।" यह सुनकर निशाचरराज रावण मुनिवरके निकट गया। प्रदक्षिणा और स्तुतिके अनन्तर, वह उनके सम्मुख बैठ गया। उसने देखा कि वहाँ सभी लोग कोई न कोई व्रत ले रहे हैं। कोई महाव्रत तो कोई अणुव्रत। कोई दृढ़ सम्यक्त्व ले चुका था। परन्तु रावणने एक भी व्रत नहीं लिया॥१-६॥

[२] तब धर्म्मरथ महाऋषि बोले,—"अरे। मनुष्य होकर, यहाँ इस तरह बैठे हो, अरे दशमुख, मोहान्धकारको छोड़ और इस रत्नाकरमेंसे रत्नको ग्रहण कर। इस अमृतालयसे उस अमृतको क्यों नहीं लेता! अत्यन्त निगूढ़ जो बहुत कष्टसे प्राप्त होता है।" यह सुनकर रावणने स्तुतिपूर्वक गद्गद स्वरमें कहा—"मैं आगकी ज्वालाको शान्त कर सकता हूँ, नागराजके फणसे मणिको ला सकता हूँ, सुमेरुपर्वतका दलन कर सकता हूँ, दशों दिशाओंको चूर-चूर कर सकता हूँ। यममहिषपर सवारी कर सकता हूँ। सर्पराजके विषदन्तसे विष ला सकता हूँ। इन्द्रको रणमें परास्त कर

घत्ता

सक्कमि सक्कहों रणेँ उत्थरेँवि सक्कमि ससि-सूरहँ पह हरेँवि ।
सक्कमि महि गयणु एक्कु करेँवि दुद्धरु णउ सक्कमि वउ धरेँवि ॥९॥

[३]

परिचिन्तेँवि सुइरु णराहिवेण । 'लइ लेमि एक्कु वउ' वुत्तु तेण ॥१॥
'जं मइँ ण समिच्छइ चारु-गत्तु । त मण्ड लएमि ण पर-कलत्तु' ॥२॥
गउ एम भणेप्पिणु णियय णयरु । थिउ अचलु रज्जु भुञ्जन्तु खयरु ॥३॥
एत्तहेँ वि महिन्दु महिन्द-णामेँ । पुरवरेँ इच्छिय-अणुहूअ-कामेँ ॥४॥
तहोँ हिययवेय णामेण भज्ज । तहेँ दुहियअणसुन्दरी मणोज्ज ॥५॥
झिन्दुएण रमन्तिहेँ थण णिएवि । थिउ णरवइ मुहेँ कर-कमलु देवि ॥६॥
उप्पण्ण चिन्त 'कहोँ कण्ण देमि । लइ वट्टइ गिरि-कइलासु णेमि ॥७॥
विज्जाहर-सयइँ मिलन्ति जेत्थु । वरु अवसेँ होसइ को वि तेत्थु' ॥८॥

घत्ता

गउ एम भणेँवि पहु पव्वयहोँ जिण-अट्ठाहिएँ अट्ठावयहोँ ।
आवासिउ पासेँहिँ णीयडेँहिँ णं तारायणु मन्दर-तडेँहिँ ॥९॥

[४]

एत्तहेँ वि ताव पल्हाय-राउ । सहुँ केउमइएँ रविपुरहोँ आउ ॥१॥
स-विमाणु स-साहणु स-परिवारु । अण्णु वि तहिँ पवणञ्जय-कुमारु ॥२॥
एक्कत्तहेँ दूसावासु लइउ । ण वन्दणहत्तिएँ इन्दु अइउ ॥३॥
अवर वि जे जे आसण्ण-भव्व । ते ते विज्जाहर मिलिय सव्व ॥४॥
पहिलएँ फग्गुणणन्दीसराहेँ । किय ण्हवण-पुज्ज तइलोक्क-णाहेँ ॥५॥
दिणेँ बीयएँ विहि मि णराहिवाहँ । मित्तइय परोप्परु हूअ ताहँ ॥६॥

सकता हूँ, सूर्य और चन्द्रकी ज्योति छीन सकता हूँ, आकाश और धरतीको एक कर सकता हूँ, पर दुद्धर व्रत धारण नहीं कर सकता" ॥१-६॥

[३] फिर मनमे कुछ सोचकर रावण बोला—"शायद मैं एक व्रत ले सकता हूँ और वह यह कि जो सुन्दरी मुझे नहीं चाहेगी मै उस स्त्रीको बलपूर्वक नहीं हरूँगा।" यह व्रत लेकर वह अपने नगर चला गया। और अचल राज्य करने लगा। इधर, महेंद्र नगरमे सब कामनाओका अनुभव करनेवाला राजा महेन्द्र रहता था। उसे अपनी सुन्दर पत्नी मनोवेगासे अजना नामकी पुत्री उत्पन्न हुई। एक दिन वह गेद खेल रही थी। राजाको अचानक उसके स्तन देखकर चिन्ता हुई। वह मुँहपर हाथ रखकर सोचने लगा—"कन्या किसे दूँ। अच्छा, मैं निश्चय ही कैलाश पर्वत पर जाऊँगा। वहाँ सैकड़ो विद्याधर मिलेंगे, उसमे कोई न कोई वर अवश्य मिल जायगा।" यह सोचकर वह राजा जिनसे अधिष्ठित अष्टापद पर्वतपर गया। वहाँ वह बगलमे डेरे डालकर ठहर गया। वे ऐसे मालूम होते थे मानो मन्दरा चलके तटोंके निकट तारागण हो ॥१-६॥

[४] इसी बीच आदित्यपुरसे राजा प्रह्लादराज अपनी पत्नी केतुमतीके साथ, वहाँ आया। वह विमान, सेना और परिवारसे युक्त था। उसके साथ ही कुमार पवनञ्जय भी था। उन्होंने एक जगह डेरा डाला, वह ऐसा जान पड़ता था मानो जिनकी वन्दना-भक्तिके लिए इन्द्र ही आया हो। इसके अतिरिक्त और भी दूसरे आसन्न भव्य विद्याधर आकर आपसमें मिल गये। सर्व-प्रथम उन्होंने, फाल्गुनमें नन्दीश्वर-द्वीपके त्रिलोकीनाथ जिनका अभिषेक और पूजन किया। दूसरे दिन, उन दोनो राजाओमे मित्रता-परिचय हुआ।

पल्हाएं खेड्डु करेवि वुत्तु । 'तउ तणिय कण्ण महु तणउ पुत्तु ॥७॥
किण कीरइ पाणिग्गहणु राय' । तं णिसुणेंवि तेण वि दिण्ण वाय ॥८॥
परिओसु पवड्ढिउ सज्जणाहँ । मइलियइँ मुहइँ खल-दुज्जणाहँ ॥९॥

घत्ता

'वहु अञ्जण वाउकुमारु वरु' घोसेप्पिणु णयणाणन्दयरु ।
'तइयएँ वासरेँ पाणिग्गहणु' गय णरवइ णियय-णियय-भवणु ॥१०॥

[५]

एत्थन्तरेँ दुज्जउ दुण्णिवारु । मयणाउरु पवणञ्जय-कुमारु ॥१॥
णउ विसहइ तइयउ दिवसु एन्तु । अच्छइ विरहाणलेँ झम्प देन्तु ॥२॥
धूमाइ वलइ धगधगइ चित्तु । ण मन्दिरु अब्भन्तरेँ पलित्तु ॥३॥
चन्दिणउ चन्दु चन्दणु जलद्दु । कप्पूर - कमलदलसेज्ज - मद्दु ॥४॥
दाहिण-मारुउ सीयल-जलाइँ । तहोँ अग्गि-फुलिङ्गइँ केवलाइँ ॥५॥
णिड्डहइ अङ्गुवङ्गइँ अणङ्गु । सज्जण-हिययाइँ व पिसुण-सङ्गु ॥६॥
णीससइ ससइ वेवइ तमेण । धाहावइ धाहा पञ्चमेण ॥७॥
उड्डण - आहरण - पसाहणाइँ । सव्वइँ अङ्गहोँ असुहावणाइँ ॥८॥

घत्ता

पासेउ वलग्गइ लहसइ तणु त इङ्गिउ पेक्खवि अण्ण-मणु ।
पभणिउ पहसिएँण णिएवि मुहु 'किं दुव्वलिहुयउ कुमार तुहुं' ॥९॥

[६]

विरहग्गि - दड्ढ - मुह - कञ्जएण । पहसिउ पवुत्तु पवणञ्जएण ॥१॥
'भो णयणाणन्दण -चारु-चित्त । णउ विसहउँ तइयउ दिवसु मित्त ॥२॥
जइ अज्जु ण लक्खिउ पियहेँ वयणु । तो कल्लएँ महु णिक्खुलउ मरणु' ॥३॥

राजा प्रह्लादने मजाक-मजाकमे कहा, "तुम्हारी लड़की, हमारा लड़का। राजन्, विवाह क्यों नहीं कर देते"। यह सुनकर राजा महेन्द्रने पक्का वचन दे दिया। सज्जन लोगोंको इससे बहुत सन्तोष हुआ। पर दुर्जन लोगोंके मुँह उतर गये। "अजना वधू और पवनंजय वर "दोनोंका तीसरे दिन नेत्रानन्द-दायक विवाह होगा" यह घोषणाकर, वे लोग अपने-अपने घरको चले गये ॥१-१०॥

[५] परन्तु दुर्जेय दुर्निवार कामसे पीड़ित पवनञ्जय, आनेवाले तीसरे दिनकी प्रतीक्षा सहन नहीं कर सका। वह विरहानलके वेगसे पीड़ित हो उठा। उसका चित्त धुँआता जलता हुआ ऐसे धक-धक कर रहा था मानो मंदराचल ही भीतर-भीतर जल रहा हो। चाँदनी, चन्द्रमा, जलार्द्र चन्दन, कपूर, कमल-दलोंकी कोमल सेज, दक्षिण-पवन और शीतल पानी—इन सबका उपचार भी उसे असह्य हो रहा था। वे उसे केवल आगकी चिनगारियाँ ही जान पड़ रही थीं, कामने उसके अंग-प्रत्यंगको उसी तरह क्षार-क्षार कर दिया था जिस तरह दुर्जनका संग सज्जनके हृदयको टूक-टूक कर देता है। ग्लानि और वेदनामे वह आहें भरता, लम्बी साँस लेता, काँपता और हाहाकार कर क्रन्दन करता। ओढ़ना आभरण और दूसरे-दूसरे प्रसाधन, सभी उसे असुहावने लगते थे। उसे पसीना निकलने लगा। शरीर कुम्हला गया। उसकी यह हालत देखकर, अन्यमनस्क होकर, उसके प्रहसित नामके मित्रने उससे पूछा, "कुमार आप दुर्बल क्यों हो रहे हैं ?" ॥१-६॥

[६] विरहकी आगमें कुमार पवनञ्जयका मुखकमल झुलस चुका था, फिर भी हँसते हुए उसने कहा—"हे नयनन्दन, सहृदय मित्र, मैं तीन दिन सहन नहीं कर सकता, यदि आज मैं अपनी प्रियाके दर्शन नहीं कर पाता, तो निश्चय ही कल मुझपर

तं णिसुणेँवि वुच्चइ पहसिएण । कमलेण व वयणेँ पहसिएण ॥४॥
'फणि-सिर-रयणेण वि णाहिँ गण्णु । एँउ कारणु केत्तिउ जेँ विसण्णु ॥५॥
किं पवणहों कवणु वि दुप्पवेसु' । गय वेण्णि वि रयणिहिँ तप्पवेसु ॥६॥
थिय जाल-गवक्खएँ दिट्ठ बाल । णं मयण-बाण-धणु-तोण-साल ॥७॥
मारो वि मरइ विरहेण जाहेँ । को पण्णेँवि सक्कइ रूवु ताहेँ ॥८॥

घत्ता

तं वहु पेक्खेँवि परितोसिएण वरइत्तु पसंसिउ पहसिएण ।
'तउ जीविउ सहलु अणन्त सिय जसु करेँ लग्गेसइ एह तिय' ॥६॥

[७]

एत्थन्तरेँ अट्ठमी-चन्द-भाल । मुहु जोएँवि चवइ वसन्तमाल ॥१॥
'सहलउ तउ माणुस-जम्मु माएँ । भत्तारु पहञ्जणु लद्धु जाएँ' ॥२॥
तं णिसुणेँवि दुम्मुह दुट्ठ-वेस । सिरु विहुणेँवि भणइ वि मीसकेस ॥३॥
'सोदामणिपहु पहु परिहरेवि । थिउ पवणु कवणु गुणु सभरेवि ॥४॥
जं अन्तरु गोपय-सायराहुँ । ज जोइङ्गणहँ दिवायराहुँ ॥५॥
ज अन्तरु केसरि-कुञ्जराहँ । जं कुसुमाउह - तित्थङ्कराहँ ॥६॥
जं अन्तरु गरुड-महोरगाहुँ । ज अमरराय - पहरण - णगाहुँ ॥६॥
जं पुण्डरीय - चन्दुज्जयाहुँ । तं विज्जुप्पहु - पवणञ्जयाहुँ' ॥७॥

घत्ता

आएँहिँ आलावेँहिँ कुविउ णरु थिउ भीसणु उक्खय-खग्ग-करु ।
'किं वयणेँहिँ चहुएँहिँ वाहिरेँहिँ रिउ रक्खउ विहि मि लेमि सिरइँ' ॥६॥

[८]

कडु-अक्खरेण परिभासिरेण । करेँ धरिउ पहञ्जणु पहसिएण ॥१॥
'जं करि-सिर-रयणुजालिय(?)देव । तं असिवरु मइलहि एत्थु केम ॥२॥

मौत तुली हुई समझो।" यह सुनकर परिहास करते हुए उसने कहा, "अरे सर्पराजके फनका मणिरत्न लाना भी तुम्हें कुछ नहीं है, फिर यह कितनी सी बात है, जिसके लिए तुम इतने दुखी हो रहे हो। क्या पवनका भी कहीं दुष्प्रवेश हो सकता है।" वे दोनों रातको तपस्वीका वेप बनाकर, वहाँ जा पहुँचे। उन्होंने जालीमेंसे झरोखेमें बैठी हुई उस बालाको देख लिया। उसे लगा मानो वह कामदेवके धनुष, बाण, तूणीर हो! भला जिसके विरहमें काम भी मर रहा हो, उसके रूपका वर्णन कौन कर सकता है? वधूके रूपकी प्रशंसा करते हुए, प्रहसितने पवनञ्जयसे कहा, "जिसके हाथ यह स्त्री लगेगी, उसीका जीवन अनन्त सुषमासे पूर्ण होगा" ॥१-६॥

[७] इतनेमें, अंजनाकी सखी वसन्तमाला, अष्टमीके चन्द्रकी तरह उसके भालको देखकर बोली, "माँ, तुम्हारा जन्म सफल है जो तुमने पवनञ्जय-सा पति पा लिया।" यह सुनकर दूसरी सखी दुर्मुखा दुष्टवेशा मिश्रकेशी सिर हिलाकर बोली, "स्वामिनी, विद्युत्प्रभको छोड़कर, पवन कुमारमें ऐसा कौन सा गुण है। विद्युत्प्रभ और पवनञ्जयमें वही अन्तर है जो समुद्र और गोपदमें। सूर्य और जुगनूमें, हाथी और सिंहमें। तीर्थङ्कर और काममें, गरुड़राज और सर्पमें। वज्र और पहाड़में। चन्द्रमा और कुमुदमें। उनकी इस बातचीतसे पवनञ्जय क्रोधसे भयंकर हो उठा। उसने तलवार खींच ली, और वह बोला, "क्या इन बाहरी औरतोंके कहनेसे शत्रु रक्षित रखा जा रहा है। मैं दोनोंका सिर उड़ाये देता हूँ" ॥१-६॥

[८] तब बहुत-सी कड़ी बातें कहकर प्रहसितने पवनञ्जयको हाथसे पकड़ लिया। वह बोला, "हे देव! जो तलवार गज-

लज्जिज्जहि वोल्लहि णाइँ मुक्खु । णिउ णिय-आवासहों दुक्खु-दुक्खु ॥३॥
दस-वरिस-सरिस गय रयणि तासु । रवि उग्गउ पसरिय-कर-सहासु ॥४॥
कोक्कावेँवि णरवइ पवर वर (?) । हय भेरि पयाणउ दिण्णु णवर ॥५॥
अञ्जणसुन्दरिहेँ तुरन्तएण । उम्माहउ लाइउ जन्तएण ॥६॥
संचल्लइ पउ पउ जेम जेम । कम्पिज्जइ हियवउ तेम तेम ॥७॥
तेहएँ अवसरेँ वहु-जाणएहिँ । कर-चरण धरेप्पिणु राणएहिँ ॥८॥

घत्ता

वलि-वण्ड मण्ड परियत्तियउ तेण वि उवाउ परिचिन्तियउ ।
'लइ एक्कवार करयले धरेविँ पुणु वारह वरिसइँ परिहरेविँ' ॥९॥

[६]

तो दुक्खु दक्खु दुम्मिय-मणेण । किउ पाणिग्गहणु पहञ्जणेण ॥१॥
थिउ वारह वरिसइँ परिहरेवि । णवि सुअइ आलवइ सुइणवे(?)वि ॥२॥
वारे वि ण जाइ ण(?)जेम जेम । खिज्जइ झिज्जइ पुणु तेम तेम ॥३॥
डज्झन्तउ उरु विरहाणलेण । णं वुज्झावइ अंसुअ-जलेण ॥४॥
परिवार-भित्ति-चित्ताइँ जाइँ । णीसास-धूम-मलियाइँ ताइँ ॥५॥
ढिल्लइँ आहरणइँ परियलन्ति । णं णेह-खण्ड-खण्डइँ पडन्ति ॥६॥
गउ रुहिरु णवर थिउ अइणु अत्थि । णउ णावइ जीविउ अत्थि णत्थि ॥७॥
तहिँ तेहएँ कालेँ दसाणणेण । सुरवर - कुरङ्ग - पञ्चाणणेण ॥८॥

घत्ता

जो दुम्मुहु दूउ विसज्जिय सो आयउ कप्प-विवज्जियउ ।
हय समर-भेरि रहवरेँ चडिउ रणेँ रावणु वरुणहों अब्भिडिउ ॥९॥

मस्तकोंके रत्नोंसे उज्वल हैं उसे इस तरह मैली क्यों कर रहे हैं? कुछ तो लज्जा करो, मूर्खकी तरह क्या बोलते हो।" उसे वह बड़ी कठिनाईसे अपने डेरेपर ले गया। कुमारकी वह रात दस वर्षके समान कटी, सवेरा होनेपर सूर्य अपनी हजारों किरणोंके साथ उदित हुआ। कुमारने प्रमुख राजाओंको पुकारकर और भेरी बजवा कर, प्रस्थान कर दिया। उसके जानेसे सुन्दरी एक दम उन्मत्त हो उठी। जैसे-जैसे वह एक-एक पग बढ़ाता, वैसे-वैसे उस बेचारीका हृदय काँप उठता, उस अवसरपर बहुतसे जानकार राजाओंने हाथ-पैर पकड़कर उसे जबर्दस्ती रोक लिया। उसने भी तब अपने मनसे, यह उपाय सोच लिया कि मैं एक बार उसका हाथ पकड़कर (विवाह कर) फिर बारह वर्षके लिए छोड़ दूँगा॥१-६॥

[६] बहुत दुःखसे उन्मन होकर किसी प्रकार कुमारने अञ्जना से विवाह कर लिया और बारह वर्षके लिए उसका त्यागकर अलग रहने लगा। सपनेमें भी वह उसके साथ न बोलता न सोता। ज्यों-ज्यों वह उसके दरवाजे तक भी नहीं जाता, त्यों-त्यों वह अभागिन और छीजने लगी। विरह-ज्वालासे दग्ध उसके हृदयको अश्रुधारा शान्त नहीं कर पा रही थी। घरकी भित्तियोंके सारे चित्र उसके निःश्वासके धुएँसे धूमिल हो गये थे। उसके ढीले आभूषण ऐसे गिर-गिर पड़ते थे मानो उसके नेहके खण्ड-खण्ड गिर रहे हों। उसका सारा रक्त सूख चुका था। केवल चमड़ी और हड्डियाँ बची थीं, ऐसा जान पड़ने लगा कि उसके प्राण रहें या न रहें। ठीक इसी अवसरपर, इन्द्ररूपी मृगके लिए सिंहके समान रावणने अपने दूत दुर्मुख कुमारको पवनञ्जयके पास भेजा। उसने आकर कुमारसे कहा, "रणभेरी बजवाकर रथपर आरूढ़ रावणने वरुणपर 'चढ़ाई' कर दी है" ॥१-६॥

[१०]

एत्थन्तरेँ वरुणहोँ णन्दणेहिँ । समरङ्गणेँ वाहिय-सन्दणेहिँ ॥१॥
राजीव-पुण्डरीएहिँ पवर । खर-दूसण पाडेँ वि धरिय णवर ॥२॥
गय पवण-गमण केण वि ण दिट्ठ । सहुँ वरुणें जल-दुग्गेँ पइट्ठ ॥३॥
'सालयहुँ म होसइ कहि मि घाउ' । उव्वेढेँ वि गउ रयणियर-राउ ॥४॥
णीसेस - दीव - दीवन्तराहुँ । लहु लेह दिण्ण विज्जाहराहुँ ॥५॥
अवरेक्कु रणङ्गणेँ दुज्जयासु । पट्ठविउ लेहु पवणञ्जयासु ॥६॥
तं पेक्खेँ वि तेण वि ण किउ खेउ । णीसरिउ स-साहणु वाउ-वेउ ॥७॥
थिय अञ्जण कलसु लएवि वारेँ । णिब्भच्छिय 'ओसरु दुट्ठ दारेँ' ॥८॥

घत्ता

तं णिसुणेँ वि अंसु फुसन्तियएँ वुच्चइ लीहउ कड्ढन्तियएँ ।
'अच्छन्तें अच्छिउ जीउ महु जन्तें जाएसइ पइँ जि सहुँ' ॥९॥

[११]

त वयणु पडिउ णं असि-पहारु । अवहेरि करेप्पिणु गउ कुमारु ॥१॥
माणस-सरवरेँ आवासु मुक्कु । अत्थवणहोँ ताम पयङ्गु ढुक्कु ॥२॥
दिट्ठइँ सयवत्तइँ मउलियाइँ । पिय-विरहिय-महुअरि-मुहलियाइँ ॥३॥
चक्की वि दिट्ठ विणु चक्कएण । वाहिज्जमाण मयरद्धएण ॥४॥
विहुणन्ति चञ्चु पक्खाहणन्ति । विरहाउर पक्कन्दन्ति धन्ति ॥५॥
तं णिऐँवि जाउ तहोँ कलुण-भाउ । 'मइँ सरिसउ अण्णु ण को वि पाउ ॥६॥

[१०] इधर वरुण-पुत्रोंने भी अपने-अपने रथ आगे बढ़ा दिये। उसके प्रवल पुत्र राजीव और पुंडरीकने खर-दूषणको पकड़ लिया। पवनगामी वे वरुणके साथ दुर्गम जलमे घुस गये। कोई उन्हे देख भी नही सका। तब निशाचरराजके यह आशङ्का हो उठी कि कहीं मेरे सालोका घात न हो जाय, वह उन्हें मुक्त करने फौरन गया। उसने समस्त द्वीप-द्वीपान्तरोके विद्याधर-नरेशोंके पास लेखपत्र प्रेपित किये हैं। उनमेंसे एक लेखपत्र रणमे अजेय आपको भी आया है। उस लेखको पढकर कुमारने कुछ भी विलम्ब नहीं किया। सेना लेकर, उसने पवनकी ही गतिसे कूच कर दिया। द्वारपर (मगल) कलश लेकर अञ्जना आ खड़ी हुई। पर उसने झिड़ककर कहा,—दुष्ट स्त्री हट।" यह सुनकर, आँसू गिराती और रेखा खींचती हुई वह बोली, "तुम्हारे रहते ही मेरा जीव है, तुम्हारे जानेपर वह भी आपके साथ ही चला जायगा" ॥१-६॥

[११] यह शब्द भी कुमारको असिप्रहारकी तरह लगे। वह अवहेलना करके चला गया। जाकर उसने मानसरोवरपर अपना डेरा किया। इतनेमे सूर्यास्त हो गया। कमल मुकुलित होने लगे, और मधुकरियाँ प्रियके वियोगमे विलाप करने लगीं। चकवी भी चकवेके विना काम पीड़ित हो रही थी। चोंच मारती, पंख फड़फड़ाती, विरहसे पीड़ित, चिल्लाती और दौड़ती-सी। उसे देखकर कुमारके मनमे करुणभाव जागरित हो उठा। वह सोचने लगा, मुझ बराबर पापी दुनियामें दूसरा नहीं है, कोई भी काम-पीड़ित अपनी पत्नीको इस तरह नहीं छोड़ता। अत मैं अपनी पत्नीको पाकर जब तक उसका आदर नहीं करता तब तक वरुण-से युद्ध नहीं करूँगा। अपना यह सद्भाव उसने अपने सहायक

ण कयाइ वि जोइउ णिय-कलत्तु । अच्छइ मयणग्गि-पलित्त-गत्तु ॥७॥
परिअत्तेँ वि संमाणिउ ण जाम । रणेँ वरुणहोँ जुज्झु ण देमि ताम' ॥८॥

घत्ता

सब्भाउ सहायहोँ कहिउ तुणु पहसिएँण वुत्तु 'एँहु परम-गुणु' ।
उप्पएँ वि णहङ्गणेँ वे वि गय ण सिय-अहिसिञ्चणेँ मत्त गय ॥९॥

[१२]

णिविसेण अत्त अञ्जणहेँ भवणु । पच्छण्णु होवि थिउ कहि मि पवणु ॥१॥
गउ पहसिउ अब्भन्तरेँ पइट्ठु । पणवेप्पिणु पुणु आगमणु सिट्ठु ॥२॥
'परिपुण्ण मणोरह अज्जु देवि । हउँ आयउ वाउकुमारु लेवि' ॥३॥
तं णिसुणेँ वि भणइ वसन्तमाल । थोरंसु - सित्त - थण-अन्तराल ॥४॥
'भव-भव - सञ्चिय-दुह - भायणाएँ । एवड्डु तुण्णु जइ अञ्जणाएँ ॥५॥
तो किं भेयारहिँ' रुवइ जाव । सयमेव कुमारु पइट्ठु ताव ॥६॥
महुरक्खर विणयालाव लिन्तु । आणन्दु सोक्खु सोहग्गु दिन्तु ॥७॥
पल्लङ्के चडिउ करेँ लेवि देवि । विहसन्त-रमन्तइँ थियइँ वे वि ॥८॥

घत्ता

स इँ भु वहिँ परोप्परु लिन्ताइँ सरहसु आलिङ्गणु दिन्ताइँ ।
णीसन्धि-गुणेण ण णायाइँ दोण्णि वि एक्कं पिव जायाइँ ॥९॥

❀ * ❀

इय रामएवचरिए धणञ्जयासिय-सयम्भुएव-कए ।
'प व णञ्ज णा वि वा हो' अट्ठारहम इमं पव्वं ॥

●

प्रहसितको बताया। उसने कहा, "बहुत ही अच्छी बात है।" तब वे दोनों आकाश-मार्गसे ऐसे उड़े मानो लक्ष्मीका अभिषेक करने मत्तगज ही जा रहे हों॥ १-६॥

[१३] चलकर वे दोनों भवनमें पहुँचे। पवनकुमार छिपकर एक जगह बैठ गया। और प्रहसित अन्तःपुरमें गया। प्रणाम करके उसने अपने आनेका कारण बताते हुए कहा, "हे देवी! आज आप सफलमनोरथ हुईं, मैं पवनकुमारको लेकर आया हूँ।" यह सुनकर, वसन्तमाला बोली, "अरे जन्म-जन्मान्तरोंसे पाप संचित करने वाली अञ्जनाका इतना भारी पुण्य? वह अभागिन अधिक क्यों रोये।" उसके (वसन्तमालाके) स्तनोंके बीचका हिस्सा कुछ-कुछ आँसुओंसे गीला हो रहा था। इतनेमें स्वयं पवनकुमार ही आ पहुँचा। मीठी वाणीमें विनयालाप कर उसने उसे खूब आनन्द सुख और सौभाग्य दिया, हाथमें हाथ लेकर वे दोनों पलंग पर चढ़ गये और हास-परिहासके साथ रमण करने लगे। एक दूसरेको वेगपूर्वक अपनी भुजाओंसे आलिंगन लेते देते हुए, वियोगकी बात न जानते हुए, वे दोनों एक प्राण हो गये॥ १-१०॥

इस प्रकार धनञ्जय-आश्रित स्वयम्भू कविद्वारा रचित 'पवनञ्जय-विवाह' नामका अठारहवाँ पर्व समाप्त हुआ।

[१९. एगुणवीसमो संधि]

पच्छिम-पहरें पहञ्जणेंण आउच्छिय पिय पवसन्तएँण ।
'त मरुसेज्जहि मिगणयणि जं मइँ अवहत्थिय भन्तएण' ॥

[१]

जन्तएण आउच्छिय ज परमेसरी ।
थिय विसण्ण हेट्ठामुह अञ्जणसुन्दरी ॥१॥

कर मउलिकरेप्पिणु विण्णवइ । 'रयसलहें गब्भु जइ सभवइ ॥२॥
तो उत्तरु काइँ देमि जणहों । ण वि सुज्झइ एउ मज्झु मणहों' ॥३॥
चित्तेण तेण सुपरिट्ठवेंवि । कङ्कणु अहिणाणु समप्पेवि ॥४॥
गउ णरवइ सहुँ मित्तेण तहिँ । माणससरें दूसावासु जहिँ ॥५॥
गुरुहार हूअ एत्तहेँ वि सइ । कोक्कावेंवि पभणइ केउमइ ॥६॥
'एउ काइँ कम्मु पइँ आयरिउ । णिम्मलु महिन्द-कुलु धूसरिउ ॥७॥
दुव्वार - वइरि - विणिवाराहों । मुहु मइलिउ सुअहों महाराहों' ॥८॥
त सुणेंवि वसतमाल चवइ । 'सुविणे वि कलङ्कु ण सभवइ ॥९॥

घत्ता

इमु कङ्कणु इमु परिहणउ इमु कञ्चीदामु पहञ्जणहों ।
णं तो का वि परिक्ख करें परिसुज्झहुँ जेण मज्झें जणहों' ॥१०॥

[२]

तं णिसुणेंवि वेवन्ति समुट्ठिय अप्पुणु ।
वे वि ताउ कसघाएँहिँ हयउ पुणुप्पुणु ॥१॥

'किं जारहों णाहिँ सुवण्णु घरें । जें कडउ घडावेंवि ढुहइ करें ॥२॥
अण्णु वि एत्तिउ सोहग्गु कउ । जें कङ्कणु देइ कुमारु तउ' ॥३॥
कडुअक्खर - पहर - भयाउरउ । संजायउ वे वि णिरुत्तरउ ॥४॥

उन्नीसवीं सन्धि

रातके अन्तिम प्रहरमें, प्रवासपर जाते हुए, पवनञ्जयने अपनी प्रियतमा अञ्जनाको आश्वासन देते हुए कहा, "हे मृगनयनी, जो मैंने भ्रमसे तुम्हें ठुकराया उसके लिए मुझे क्षमा करो।"

[१] जाते समय पतिके ऐसा कहने पर, परमेश्वरी दुखिनी अञ्जना नीचा मुँह करके रह गई, फिर उसने हाथ जोड़कर उससे विनय की, "रजस्वला होनेसे यदि मैं गर्भवती हो गई, तो क्या उत्तर दूँगी, यह बात मेरे मनमें समझ नहीं पड़ रही है।" तब मनमें कुछ सोचकर, कुमारने पहचानके लिए अपना कंगन उतार-कर उसे दे दिया, और स्वयं मित्रके साथ, मानसरोवरपर अपने दूतावासमें चला गया। कुछ दिनों बाद, बहूका भारी पेट देखकर, केतुमतीने उस महासतीको बुलाकर पूछा, "तूने यह कौन-सा पाप किया, मेरे पवित्र महेन्द्र कुलको कलंकित कर दिया, दुर्वार शत्रुओंका निवारण करनेवाले मेरे पुत्रका मुँह काला कर दिया।" यह सुनकर वसन्तमालाने कहा—"सपनेमें भी इन्होंने कलंकका काम नहीं किया। कुमार पवनञ्जयका यह कंगन, परिधान और स्वर्णमाला है, (देख लो) नहीं तो लोगोंके बीच में परीक्षा करके बात साफ कर लो" ॥ १–९ ॥

[२] यह सुनकर, काँपती हुई वह उठी, तो भी उन दोनोंको उसने कोड़ोंके आघातसे बार-बार पीटा। सास बोली—"क्या यारके घरमें सोना नहीं हो सकता, उसीने कड़े गढ़वाकर हाथोंमें पहना दिये, और भी यह सौभाग्य कर दिया, जिससे (यह मालूम हो) कि कुमार (पवनञ्जय) ने तुम्हें कड़े दिये। कटु शब्दोंके प्रहारसे भयभीत वे दोनों चुप रह गईं। तब उसने एक क्रूर

हक्कारेंवि पभणिउ कूर-भडु । 'हय जोत्तें महारह-वीढें चडु ॥५॥
एयउ दुट्ठउ अवलक्खणउ । ससि-धवलामल - कुल - लञ्छणउ ॥६॥
माहिन्दपुरहों दूरन्तरेंण । परिघिववि आउ सहुँ रहवरेंण ॥७॥
जिह मुअहुँ ण आवइ वत्त महु' । तं णिसुणेंवि सन्दणु जुत्तु लहु ॥८॥
गउ वे वि चडावेंवि णवर तहिँ । सामिणि-केरउ आएसु जहिँ ॥९॥

घत्ता

णयरहों दूरें वरन्तरेंण अञ्जण रुवन्ति ओआरिया ।
'माएँ खमेज्जहि जामि हउँ' महु धाहएँ पुणु जोक्कारिया ॥१०॥

[३]

कूर-वीरें परिअत्तएँ रवि अत्थन्तओ ।
अञ्जणाएँ केरउ दुक्खु व असहन्तओ ॥१॥

भीसण-रयणिहिँ भीसण अडइ । खाइ व गिलइ व उवरि व पडइ ॥२॥
भिञ्भियइ व भिङ्गारी-रवेंहिँ । रुवइ व सिव-सद्देहिँ रउरवेंहिँ ॥३॥
पुप्फुवइ व फणि-फुक्कारएँहिँ । वुक्कइ व पमय-वुक्कारएँहिँ ॥४॥
सा दुक्खु दुक्खु परियलिय णिसि । दिणयरेंण पसाहिय पुव्व-दिसि ॥५॥
गइयउ णिय-णयरु पराइयउ । अग्गएँ पडिहारु पधाइयउ ॥६॥
'परमेसर आइय मिग-णयण । अञ्जणसुन्दरि सुन्दर-वयण' ॥७॥
तं सुणेंवि जाय दिहि णरवरहों । 'लहु पट्टणे हट्ट-सोह करहों ॥८॥
उब्भहों मणि-कञ्चण-तोरणइँ । वर-वेसउ लेन्तु पसाहणइँ ॥९॥

घत्ता

सव्व पसाहहों मत्त गय पल्लाणहों पवर तुरङ्ग-थड ।
(जय-) मङ्गल-तूरइँ आहणहों सवडम्मुह जन्तु असेस भड ॥१०॥

भटको पुकारकर कहा—"शीघ्र घोड़े जोतकर, महारथमें बैठ जाओ, और इस दुष्ट कुलच्छनीको रथ सहित महेन्द्र नगरसे दूर कहीं छोड़ आओ। इसने मेरे शशिकी तरह स्वच्छ कुलमें दाग लगाया है। इस प्रकार छोड़ना कि जिससे हम तक इनकी खबर न आ सके।" यह सुनकर उसने शीघ्र अपना रथ जोता, और उन दोनोंको रथमें चढ़ाकर, स्वामिनीके आदेशके अनुसार वह उन्हें ले गया॥ १-६॥

नगरके बहुत दूर वनमें रोती हुई अञ्जनाको उसने छोड़ दिया। वह बोला—"माँ, मुझे क्षमा करना।" और फिर ढाढ़ मारकर रोते हुए भटने उसका अभिनन्दन किया॥ १०॥

[३] इस प्रकार उस क्रूरवीरके छोड़कर चले जाने पर सूरज भी डूब गया, मानो वह अञ्जनाके दुःखको सहन नहीं कर सका था। उस भीषण रातमें वह अटवी और भी भयानक हो उठी। वह खाती-सी, लीलती-सी या ऊपर गिरती-सी प्रतीत हो रही थी। भृंगारकी ध्वनिसे वह डराती-सी, और शृगालके भयंकर शब्दोंमें रोती-सी, सर्पोंके फूत्कारसे फुफकारती-सी, घुक्कारसे घिघियाती-सी जान पड़ती थी। बड़े कष्टसे वह रात बिताने पर, सबेरे प्राचीमें सूर्योदय हुआ और (किसी तरह) अञ्जना अपने पिताके नगर पहुँची। तब प्रतिहारने पहले ही दौड़ कर राजाको सूचना दी, "परमेश्वर सुन्दर मुखी मृगनयनी अञ्जना सुन्दरी आ रही हैं।" यह सुनकर राजाने कहा, "जाओ शीघ्र ही नगर और बाजार की शोभा करो, दोनों ओर मणि काचनका वंदनवार हो। दूसरे प्रसाधन भी बढ़िया हों। सभी मत्तगज सजवा दो, और अश्वोंके समूहको कवच पहना दो। जयमंगल तूर्य बजवा दो, और सभी भट सम्मुख चलें"॥ १-१०॥

[४]

भणेँवि एम पडिपुच्छिउ पुणु वद्धावओ ।
'कइ तुरङ्ग कइ रहवर को वोलावओ' ॥१॥

पडिहारु पवोल्लिउ अतुल-वलु । 'णउ को वि सहाउ ण किं पि वलु ॥२॥
अञ्जण वसन्तमालाएँ सहुँ । आइय पर एत्तिउ कहिउ महु ॥३॥
एक्कएँ असुअ-जल-सित्त-थण । दीसइ गुरुहार विसण्ण-मण' ॥४॥
तं णिसुणेँवि थिउ हेट्ठामुहउ । ण णरवइ सिरेँ वज्जेण हउ ॥५॥
'दुस्सील दुट्ठ मं पइसरउ । विणु खेवेँ णयरहोँ णीसरउ' ॥६॥
वभणइ आणन्दु मन्ति सुचवि । अपरिक्खिउ किज्जइ कज्ज ण वि ॥७॥
सासुअउ होन्ति विरुआरियउ । महसइहेँ वि अवगुण-गारियउ ॥८॥

घत्ता

सुकइ-कहहोँ जिह खल-मइउ हिम-वहलियउ कमलिणिहिँ जिह ।
होन्ति सहावेँ वइरिणिउ णिय-सुण्हहँ खल-सासुअउ तिह ॥९॥

[५]

सासुआण सुण्हाण जणे सुपसिद्धइं ।
एक्कमेक्क-वइराइँ अणाइ-णिवद्धइं ॥१॥

भत्तारु भणेसइ ज दिवसु । विरुआरी होसइ तं दिवसु' ॥२॥
वयणेण तेण मन्तिहेँ तणेँण । आरुट्ठु पसण्णकित्ति मणेँण ॥३॥
'किं कन्तएँ नेह-विहूणियएँ । किं कित्तिएँ वइरिहिँ जाणियएँ ॥४॥
कि सु-कहएँ णिरलङ्कारियएँ । किं धीयएँ लञ्छण-गारियएँ ॥५॥
घरेँ अञ्जण समरङ्गणेँ पवणु । गब्भहोँ सवन्धु एत्थु कवणु' ॥६॥
तं णिसुणेँवि णरेँण णिवारियउ । पडहउ देप्पिणु णीसारियउ ॥७॥
वणु गम्पि णइट्ठउ भीसणउ । धाहाविउ पहणेँवि अप्पणउ ॥८॥

[४] यह आदेश देकर, उसने फिर प्रतिहारसे पूछा—"कितने घोड़े और कितने रथपर आये हैं और साथ कौन आया है ?" यह सुनकर, प्रतिहारने उत्तर दिया—"न तो उसके साथ कोई सहायक है और न सेना। मुझसे तो इतना ही कहा है कि वसंत-मालाके साथ अञ्जना आई हुई है। आँसुओंसे उसका स्तनभाग भींग रहा है, वह गर्भवती और उदासमन दिखाई देती है।" यह सुनते ही राजाका मुख नीचा हो गया मानो उसके सिरपर वज्र ही टूट पड़ा हो। वह बोला—"दुःशील उसे मत आने दो, फौरन उसे घरसे बाहर निकाल दो।" इस पर साधुवचन, मंत्री आनन्दने कहा—"राजन् ! बिना परीक्षा किये कोई भी काम नहीं करना चाहिए। सासें बहुत बुरा कर डालती हैं, वे महासतीको भी दोष लगा देती हैं। अपनी बहुओंके लिए सासें उसी प्रकार शत्रु होती हैं जैसे सुकविकी कथाके लिए दुर्जनोंकी बुद्धि या कमलिनियोंके लिए हिम मेघ ॥ १-६ ॥

[५] अनादि कालसे सास और बहुओंके विषयमें यह बात प्रसिद्ध चली आ रही है कि उनमें एक दूसरेके प्रति वैर होना स्वाभाविक है। जिस दिन उसका पति पवनञ्जय इस बातका विचार करेगा उस दिन यह बहुत बुरी बात होगी।" मंत्रीके इस वचनसे प्रसन्नकीर्ति मनमें रुष्ट हो उठा। वह बोला, "स्नेहहीन स्त्रीसे क्या ? शत्रुको जाननेवाली अपनी कीर्तिसे क्या ? निरलंकार सुकथासे क्या ? लक्षणहीन लड़कीसे क्या ? अञ्जना घरमें है और पति पवनञ्जय युद्ध क्षेत्रमें। यह गर्भ कहाँसे आया।" यह सुनकर, किसी एक आदमीने धक्का देकर उसे निकाल दिया। तब जंगलमें प्रवेश कर वह, अपनेको ही प्रताड़ित कर, क्रन्दन करने लगी, "हे दैव, मैंने ऐसा कौन-सा पाप किया, कि जो निधि

'हा विहि हा काइँ कियन्त किउ । णिहि दरिसॅवि लोयण-जुयलु हिउ' ॥९॥

घत्ता

विहि मि कलुणु कन्दन्तियहिँ वणेँ दुक्खें को व ण पेल्लियउ ।
सच्छन्देहिँ चरन्तएँहिँ हरिणेहिँ वि दोवउ मेल्लियउ ॥१०॥

[६]

वारवार सोआउर रोवइ अञ्जणा ।
'का वि णाहिँ मइँ जेही दुक्खहँ भायणा ॥१॥
सासुअएँ हयासएँ परिहविय । हा माएँ पइँ वि णउ संथविय ॥२॥
हा भाइ-जणेरहोँ णिट्ठुरहोँ । णीसारिय कह रुयन्ति पुरहोँ ॥३॥
कुलहर-पइहरहि मि दइयहु मि । पूरन्तु मणोरह सव्वहु मि' ॥४॥
गब्भेसरि जउ जउ संचरइ । तउ तउ रुहिरहोँ छिल्लरु भरइ ॥५॥
तिस-भुक्ख-किलामिय चत्त-सुह । गय तेत्थु जेत्थु पलियङ्क-गुह ॥६॥
तहिँ दिट्ठु महारिसि सुद्धमइ । णामेण भडारउ अमयगइ ॥७॥
अत्तावण - तावें ताविउ । छुडु जें छुडु जोगु खम्मावियउ ॥८॥
तहिँ अवसरें वे वि पढुक्कियउ । ण दुक्ख-किलेसहिँ मुक्कियउ ॥९॥

घत्ता

चलण णवेप्पिणु मुणिवरहोँ अञ्जण विण्णवइ लुहन्ति मुहु ।
'अण्ण-भवन्तरेँ काइँ मइँ किउ दुक्किउ जें अणुहवमि दुहु' ॥१०॥

[७]

पुणु वसन्तमालाएँ वुत्तु 'णउ तेरउ ।
एउ सव्वु फलु एयहोँ गब्भहोँ केरउ' ॥१॥
तं णिसुणॅवि विगय-राउ भणइ । 'एउ गब्भहोँ दोसु ण संभवइ' ॥२॥
जइ घोसइ 'होसइ तणउ तउ । एँहु चरिम-देहु रणेँ लद्ध-जउ ॥३॥
पइँ पुव्व-भवन्तरेँ सइँ करेँण । जिण-पडिम सवत्तिहेँ मच्छरेँण ॥४॥
परिघित्त पत्त तं एहु दुहु । एवहिँ पावेसहि सयल-सुहु' ॥५॥
राउ एम भणेप्पिणु अमियगइ । ताणन्तरेँ दुक्कु मयाहिवइ ॥६॥

दिखाकर तुमने दोनों नेत्रोंका हरण कर लिया। वनमें इस प्रकार विलाप करते हुए उन्हें देखकर, वहाँ ऐसा कौन था जो द्रवित नहीं हुआ। यहाँ तक कि स्वच्छंद चरनेवाले हिरनोंने भी घास खाना छोड़ दिया ॥ १-१० ॥

[६] शोकसे भरी हुई अञ्जना बार-बार रोकर यही कहती—"मुझ बराबर दुखकी पात्र दुनियामें कोई नहीं। सासने तो मुझे छोड ही दिया था। पर हे माँ, तुम भी मुझे नहीं रख सकीं, हा, निष्ठुर पिता और भाईने भी मुझे नगरसे निकलवा दिया। कुलगृह, पतिगृह तथा पति सभीने मेरे मनोरथ पूरे कर दिये।" गर्भवती वह जैसे ही पग आगे बढ़ाती वैसे ही खूनका कुल्ला कर देती। सुखहीन भूखी, प्यासी और पीड़ित वह वनकी पर्यंक गुहामें गई। इसी अवसर पर, वहाँ शुभमति अमृतगति नामक महामुनिको देखकर उनके पास वे दोनों पहुँचीं। वहाँ जाते ही उनका सब क्लेश दूर हो गया। वह महामुनि मानो संसारके तापसे सताये हुए व्यक्तिके लिए क्षमाशील योगीकी तरह थे। मुनिके चरणोंमें प्रणामकर, और अपना मुख पोंछकर, अञ्जनाने कहा—"पूर्व जन्ममें मैंने कौन-कौनसे पाप किये जिससे मुझे ऐसे दुखका अनुभव करना पड़ रहा है" ॥ १-१० ॥

[७] इसपर वसन्तमाला बोली, "यह तेरा नहीं, बल्कि तेरे गर्भका फल है।" यह सुनकर, महामुनिने कहा,—"यह इस गर्भका दोष कदापि नहीं।" यतिने फिर घोषणा की—"तुम्हारा यह पुत्र रणविजयी और चरमशरीरी होगा। पूर्व जन्ममें तुमने सौतकी डाहसे, अपने ही हाथसे जिनप्रतिमाको घरके आँगनमें छिपा दिया था, उसीसे तुम्हें यह दुख भोगना पड़ रहा है। अब सब सुख भी पाओगी।" यह कहकर अमृतगति वहाँसे चले गये।

विहुणिय-तणु दूरुग्गिण्ण-कमु । सणि असणि णाइँ जमु काल-समु ॥७॥
कुञ्जर - सिर - रुहिरारुण - णहरु । कीलाल - सित्त - केसर - पसरु ॥८॥
अइ - वियड - दाढ-फाडिय-वयणु । रत्तुप्पल- गुञ्ज - सरिस - णयणु ॥९॥
खय - सायर - रव - गम्भीर-गिरु । लङ्गूल-दण्ड - कण्डुइय-सिरु ॥१०॥

घत्ता

त पेक्खेँवि हरिणाहिवइ अञ्जण स-मुच्छ महियलेँ पडइ ।
विज्जा-पाणएँ उप्पएँवि आयासेँ वसन्तमाल रडइ ॥११॥

[८]

'हा समीर पवणञ्जय अणिल पहञ्जणा ।
हरि-कियन्त-दन्तन्तरेँ वट्टइ अञ्जणा ॥१॥

हा कम्मु काइँ किउ केउमइ । खलेँ मुइय लहेसहि कवण गइ ॥२॥
हा ताय महिन्द महइन्दु धरेँ । सु-पसण्णकित्ति पडिरक्ख करेँ ॥३॥
हा मायरि तुहु मि ण सथवहि । मुच्छाविय दुहिय समुत्थवहि ॥४॥
गन्धव्वहों देवहों दाणवहों । विज्जाहर-किण्णर माणवहों ॥५॥
जक्खहों रक्खहों रक्खहों सहिय । ण तो पञ्चाणणेण गहिय ॥६॥
तं णिसुणेँवि गन्धव्वाहिवइ । रणेँ दुज्जउ पर-उवयार-मइ ॥७॥
मणिचूडु रयणचूडहेँ दइउ । पञ्चाणणु जेत्थु तेत्थु अइउ ॥८॥
अट्ठावउ सावउ होवि थिउ । हरि पाराउट्ठउ तेण किउ ॥९॥

घत्ता

तावेँहिँ गयणहों ओअरेँवि अञ्जणहेँ वसन्तमाल मिलिय ।
'इहु अट्ठावउ होन्तु ण वि ता वट्टइ(?) आसि माएँ गिलिय' ॥१०॥

[९]

एम वोल्ल किर विहि मि परोप्परु जावेँहि ।
गीउ गेउ गन्धव्वेँ मणहरु तावेँहिँ ॥१॥

त णिसुणेँवि परिओसिय णिय-मणेँ(?)। 'पच्छण्णु को वि सुहि वसइ वणेँ ॥२॥
असमाहि-मरणु जेँ णासियउ । अण्णु वि गन्धव्वु पयासियउ' ॥३॥

इतनेमें, कृशतनु एक-सिंह, शनि, अशनि तथा यमकी तरह भयङ्कर, लम्बे पैर बढ़ाता हुआ वहाँ आ पहुँचा। उसके नख गजके सिरके रक्तसे लाल थे, और अयाल भी रक्तरंजित था। उसकी डाढ़े विकराल थीं। मुँह खुला हुआ, आँखे, रक्तकमल या मूँगे की तरह लाल। वह प्रलय-समुद्रकी तरह गरजता, और पूँछके दण्डसे सिर खुजलाता हुआ, दीख रहा था ॥ १-१० ॥

उसे देखकर अञ्जना मूर्छित होकर धरतीपर गिर पड़ी। तब विद्यावलसे आकाशमें जाकर, वसन्तमालाने चिल्लाना शुरू कर दिया ॥ ११ ॥

[८] "हे समीर, हे पवनञ्जय, अनिल, प्रभञ्जन! अञ्जना सिंहरूपी यमकी डाढ़ोंके तले है, हा दुष्ट केतुमतीने, यह सब करनी की, उसके दुष्ट मुँहमें जाकर विचारीकी क्या हालत होगी! हे तात महेन्द्र! सिंह उसे पकड़ रहा है, हे भाई प्रसन्नकीर्ति, रक्षा करो। हे माँ, क्या तुम भी नहीं चेतती। तुम्हारी लड़की मूर्छित पड़ी है, उसे उठाओ। हे देव, दानव, विद्याधर, किन्नर, मनुष्य, यक्ष और राक्षसो, कोई भी तो मेरी सखीको बचाओ, उसे शेरने पकड़ लिया है। तब रत्नचूड़से मणिचूड़ नामका परोपकारी यक्षपति वहाँ आया, और उसने अष्टापदके शिशुका रूप धारणकर उस सिंहको विमुख कर दिया। वसंतमाला आकाशसे उतरकर अञ्जनासे मिली। उसने कहा—"यहाँ अष्टापद नहीं है वह मायावी था जो अब विलीन हो गया है" ॥ १-१० ॥

[९] उनकी आपसमें इस तरह की बातें हो ही रही थीं कि किसी एक विद्याधरने एक बहुत ही सुन्दर गीत गाया। उसे सुनकर वे दोनों यह जानकर बहुत सतुष्ट हुई कि कोई परोपकारी इस वनमें छिपकर रहता है, जिसने गन्धर्व प्रकटकर हमें अकाल-मरणसे बचाया। इस प्रकार बातचीत करती वे उसी पर्वत-

अवरोप्परु एम चवन्तियहुँ । पलियङ्क-गुहहिँ अच्छन्तियहुँ ॥४॥
माहवमासहोँ वहुलट्ठमिएँ । रयणिहेँ पच्छिम-पहरद्धेँ थिएँ ॥५॥
णक्खत्तेँ सवणेँ उप्पण्णु सुउ । हल-कमल-कुलिस-झस-कमल-जुउ ॥६॥
चक्कङ्कुस - कुम्भ - सङ्ख - सहिउ । सुह-लक्खणु अवलक्खण-रहिउ ॥७॥
ताणन्तरेँ पर-वल-णिम्महँण । पडिसूरे सूर-सम-प्पहँण ॥८॥
णहेँ जन्तेँ वे वि णियच्छियउ । ओअरेँ वि विमाणहोँ पुच्छियउ ॥९॥

घत्ता

'कहिँ जायउ कहिँ वड्ढियउ कहोँ धीयउ कहोँ कुलउत्तियउ ।
कसु केरउ एवड्डु दुहु वणेँ अच्छहोँ जेण रुअन्तियउ' ॥१०॥

[१०]

पुणु वसन्तमालाएँ पडुत्तरु दिज्जइ ।
णिरवसेसु तहोँ णिय-वित्तन्तु कहिज्जइ ॥१॥

'अञ्जणसुन्दरि णामेण इम । सइ सुद्ध सुद्ध जिह जिण-पडिम ॥२॥
मणवेय-महाएविहेँ तणय । जइ मुणहोँ महिन्दु तेण जणिय ॥३॥
पायड पसण्णकित्तिहेँ भइणि । मणहर पवणञ्जयाहोँ घरिणि' ॥४॥
विज्जाहरु तं णिसुणेँ वि वयणु । पभणइ वाहम्भ-भरिय-णयणु ॥५॥
'हउँ माएँ महिन्दहोँ मेहुणउ । सु-पसण्णकित्ति महु भायणउ ॥६॥
तउ होमि सहोयरु माउलउ । पडिसूरु हणूरुह-राउलउ' ॥७॥
त णिसुणेंवि जाणेँ वि सरेँ वि गुणु । उत्तिल्लु तेहिँ ता रुण्णु पुणु ॥८॥
जं लद्धउ आसि पुण्णेहिँ विणु । तं दिण्णु विहिहिँ णं सोय-रिणु ॥९॥

घत्ता

सरहसु साइउ देन्तएँहिँ जं एक्कमेक्कु आवीलियउ ।
अंसु पणालेँ णीसरइ ण कलुणु महारसु पीलियउ ॥१०॥

[११]

दुक्खु दुक्खु साहारेँ वि णयण लुहावेँवि ।
माउलेण णिय णियय-विमाणेँ चडावेँ वि ॥१॥

सुर - करिवर - कुम्भत्थल-थणहेँ । गयणङ्गणेँ जन्तिहेँ अन्जणहेँ ॥२॥

गुफामें रहने लगीं। चैतकी कृष्णाष्टमीको श्रवण नक्षत्र और रातके अंतिम प्रहरमें अञ्जनाने एक पुत्रका प्रसव किया। उस नवजात शिशुके हाथ-पैरमें हल कमल, वज्र, मछली आदिके चिह्न थे। चक्र, अंकुश, कूर्म, शंखके चिह्नोंसे सहित वह अत्यन्त सुलक्षण शिशु था। इसी बीच एक दिन, शक्रसेनाका संहार करनेवाला राजा प्रतिसूर्य आकाशमार्गसे जा रहा था। सूर्यके समान तेजस्वी उसने इन्हें देख लिया। उतरकर, उसने पूछा—"कहाँ पैदा हुए, कहाँ बढ़े, यह किसकी बेटी है, और यह कुलपुत्र किसका है, ऐसा कौन-सा बड़ा दुःख इसे है जो यह इस तरह वनमें रो रही है" ॥१-१०॥

[१०] वसंतमालाने प्रति-उत्तरमें सारा वृत्तान्त कह सुनाया, और उसने यह भी कहा, "इस सुन्दरीका नाम अञ्जना है, यह मुग्धा जिन-प्रतिमाकी तरह शुद्ध है। रानी मनोवेगासे उत्पन्न राजा महेन्द्रकी यह पुत्री है। प्रसन्नकीर्तिकी बहन और पवनञ्जय की पत्नी है। उसके वचन सुनकर, विद्याधर आँखोंमें आँसू भरकर बोला—"माँ मैं, राजा महेन्द्रका साला हूँ और प्रसन्नकीर्ति मेरा भानजा है। हनुरूह द्वीपका राजा प्रतिसूर्य मैं, तुम्हारा मामा हूँ।" यह सुनकर अञ्जना धीरज खोकर और भी खूब फूट-फूटकर रोई। वह जो पुण्यरहित हो गई थी मानो उसीसे उसे यह शोक ऋणमें मिला था। आपसमें आलिङ्गन करते हुए उन्होंने एक दूसरेको जकड़ लिया। करुण महारस मानो पीड़ित होकर ही, आँसुओंकी अविरल धाराके बहाने झरझरकर बाहर निकल रहा था ॥१-१०॥

[११] बड़ी कठिनाईसे उसे ढाढ़स बँधाकर, आँखें पोंछ, मामा उसे अपने विमानमें बैठाकर ले गया, परन्तु अभाग्यवश, आकाशसे जाती हुई ऐरावतके कुम्भस्थलकी तरह स्तनवाली

णीसरिउ वालु अइ-दुल्ललिउ । ण णहयल-सिरिहेँ गब्भु गलिउ ॥३॥
मारुइ दवत्ति णिवडिउ इलहेँ । णं विज्जु-पुञ्जु उप्परि सिलहेँ ॥४॥
उच्चाएँवि णिउ विज्जाहरेँहिँ । णं जम्मणेँ जिणवरु सुरवरेँहिँ ॥५॥
अञ्जणहेँ समप्पिउ जाय दिहि । ण णट्ठु पडीवउ लद्धु णिहि ॥६॥
णिय-पुरु पइसारेँवि णरवरेँहिँ । जम्मोच्छउ किउ पडिदिणयरेँ ॥७॥

घत्ता

'सुन्दरु' जगेँ सुन्दरु भणेँवि 'सिरिसइलु' सिलायलु चुण्णु णिउ ।
हणुरुह-दीवेँ पवड्ढियउ 'हणुवन्तु' णामु तें तासु किउ ॥८॥

[१२]

एत्तहे वि खर-दूसण मेल्लावेप्पिणु ।
वरुणहोँ रावणहो वि सन्धि करेप्पिणु ॥१॥

णिय-णयरु पईसइ जाव मरु । णीसुण्णु ताम णिय-वरिणि-घरु ॥२॥
पेक्खेप्पिणु पुच्छिय का वि तिय । 'कहिँ अञ्जणसुन्दरि पाण-पिय' ॥३॥
त णिसुणेँवि वुच्चइ वालियएँ । 'णव - रम्भ - गब्भ-सोमालियएँ ॥४॥
किर गब्भु भणेँवि पर-णरवरहोँ । केउमइएँ घल्लिय कुलहरहोँ' ॥५॥
तं सुणेँवि समीरणु णीसरिउ । अणुसरिसेँहिँ वयसेँहिँ परियरिउ ॥६॥
गउ तेत्थु जेत्थु तं सासुरउ । किर दरिसावेसइ सा सुरउ ॥७॥
पिय इट्ठ ण दिट्ठ णवर तहि मि । असहन्तु पहञ्जणु गउ कहि मि ॥८॥
परियत्तिय पहसियाइ-सयण । दुक्खाउर ओहुल्लिय-वयण ॥९॥

घत्ता

'एम भणेज्जहु केउमइ पूरन्तु मणोरह माएँ तउ ।
विरह-दवाणल-दीवियउ पवणञ्जय-पायवु खयहोँ गउ' ॥१०॥

अञ्जनाके हाथसे बालक छूटकर गिर पड़ा मानो आकाशरूपी लक्ष्मीका गर्भ ही गिर गया हो। हनुमान तुरन्त धरतीपर गिरा मानो शिलातलपर बिजलियोंका पुञ्ज गिरा हो। परन्तु विद्याधरोंने उसे उसी तरह उठा लिया जिस तरह जन्मके समय जिनको देवगण उठा लेते हैं। किसीने जाकर वह शिशु अञ्जनाको सौंप दिया। वह इतनी प्रसन्न थी मानो खोई हुई निधि ही लौटकर उसे मिल गई हो। अपने नगरमें ले जाकर प्रतिसूर्यने उसका जन्मोत्सव मनाया। वह बालक जगमें बहुत सुन्दर था, उसने श्रीशैलकी चट्टानको गिरकर चूर-चूर कर दिया था। और हनुमत् द्वीपमें वह पल-पुसकर बड़ा हुआ था अत' उसका नाम हनुमान रख दिया गया ॥१-१०॥

[१२] उधर पवनञ्जय, खर और दूषणको मुक्तकर वरुण और रावणकी संधि कराके अपने नगर वापस आ गया। परन्तु उसे अपनी पत्नीका भवन सूना दिखाई दिया। उसने किसी स्त्रीसे पूछा—"प्राणप्रिय अञ्जना सुन्दरी कहाँ है ?" उस स्त्रीने उत्तर दिया, "केतुमतीने परपुरुषका गर्भ समझकर, नवीन गर्भसे सुकुमार, उसे जंगलमें छुड़वा दिया।" यह सुनकर पवनञ्जय, अपने समान वयके मित्रोंके साथ वहाँ गया, जहाँ सासने अञ्जनाको छुड़वाया था। परन्तु जब वहाँ पर भी उसकी अभिलषित पत्नी दिखाई नहीं दी, तो वह इस वियोगको सहन नहीं कर सका। वह भी कहीं चल दिया। अत्यन्त व्यथित, दुःखसे भरे मुँह नीचा किये, अपने मित्र प्रहसित तथा स्वजनोंसे माके लिए इतना यह कह गया कि केतुमतीसे कह देना कि "माँ, तुम्हारा मनोरथ पूरा हो गया, तुम्हारा पवनरूपी पेड़ विरहकी आगमें जलकर राख हो गया है" ॥१-१०॥

[१३]

दुक्खु दुक्खु परियत्तिय सयल वि सज्जणा ।
गय रुयन्त णिय-णिलयहों उम्मण-दुम्मणा ॥१॥

पवणञ्जओ वि पडिवक्ख-सउ । काणणु पइसरइ विसाय-रउ ॥२॥
पुच्छइ 'अहों सरवर दिट्ठ धण । रत्तुप्पल-दल - कोमल - चलण ॥३॥
अहों रायहंस हसाहिवइ । कहें कहि मि दिट्ठ जइ हंस-गइ ॥४॥
अहों दीहर-णहर मयाहिवइ । कहें कहि मि णियम्बिणि दिट्ठ जइ ॥५॥
अहों कुम्भि कुम्भ-सारिच्छ-थण । केत्तहें वि दिट्ठ सइ सुद्ध-मण ॥६॥
अहों अहों असोय पल्लविय-पाणि । कहिं गय परहुएँ परहुय-वाणि ॥७॥
अहों रुन्द चन्द चन्दाणणिय । मिग कहि मि दिट्ठ मिग-लोयणिय ॥८॥
अहों सिहि कलाव-सण्णिह-चिहुर । ण णिहालिय कहि मि विरह-विहुर' ॥९॥

घत्ता

एम भवन्तें विउलें वणें णग्गोह-महादुमु दिट्ठु किह ।
सासय-पुर-परमेसरेंण णिक्खवणें पयागु जिणेण जिह ॥१०॥

[१४]

तं णिएवि वड-पायवु अण्णु वि सरवरु ।
कालमेहु णामेण खमाविउ गयवरु ॥१॥

'जं सयल-काल कण्णारियउ । अङ्कुस - खर-पहर - वियारियउ ॥२॥
आलाण-खम्भें जं आलियउ । जं सङ्खल-णियलहिँ णियलियउ ॥३॥
तं सयलु खमेज्जहि कुम्भि महु' । तहिँ पच्चक्खाणउ लइउ लहु ॥४॥
'जइ पत्त वत्त कन्तहें तणिय । तो णउ णिवित्ति गइ एत्तडिय ॥५॥
जइ घइँ पुणु एह ण हूय दिहि । तो एत्थु मज्झु सण्णास-विहि' ॥६॥
थिउ मउणु लएवि णराहिवइ । झायन्तु सिद्धि जिह परम-जइ ॥७॥
सच्छन्दु गइन्दु वि संचरइ । सामिय-सम्माणु ण वीसरइ ॥८॥

[१३] सभी स्वजन दुःखसे रोते-कलपते और भारी हृदयसे अपने-अपने घर लौट आये। शत्रुओंका संहार करनेवाला, विपाद-मग्न पवनञ्जय भी वनमें चला गया। वह पेड़-पौधों और जीव-जन्तुओंसे पूछने लगा—"अरे सरोवर! तुमने, रक्तकमल की तरह चरणोंवाली मेरी धन्या देखी। हंसनीके स्वामी हे हंसराज, तुमने यदि उस हंसगामिनीको देखा हो तो बताओ! हे विशाल-नयन मृगराज, तुमने उस नितम्बिनीको देखा हो तो बताओ? हे हाथी, यदि तुमने गज-कुम्भस्तनी शुद्ध मनवाली उसे देखा हो तो बताओ, अरे अशोक, किसलय जैसे हाथोंवाली वह कहाँ है? अरे वक्रचन्द्र! वह चन्द्रमुखी कहाँ है? अरे मृग, क्या तुमने उस मृग-नयनीको देखा है, अरे मयूर, तुम्हारे कलापकी तरह बालोंवाली उस विरह-विधुराको तुमने देखा है?" इस प्रकार बिलखते-घूमते हुए उसे वटका पेड़ उसी तरह दिखाई दिया जिस तरह दीक्षा लेते समय, श्रीऋषभ जिनको दिखाई दिया था॥ १–१०॥

[१४] तब उसने अपने कालमेघ नामके श्रेष्ठ हाथीसे क्षमा माँगते हुए कहा—"मैंने अंकुशके तीखे प्रहारोंसे तुम्हारे कानों को वेधा है, आलान स्तंभ (खूँटे) से तुम्हें बाँधा। साँकल और बेड़ियोंसे तुम्हें जकड़ा। गजराज, तुम यह सब क्षमा कर दो। पवनञ्जयने वहीं प्रायश्चित्त करते हुए यह संकल्प किया, "यदि मेरी पत्नी मुझे मिल गई तो मैं इस निवृत्ति (मार्ग) को नहीं अपनाऊँगा, कदाचित् दैवयोगसे यह सम्भव नहीं हो सका तो मैं संन्यास ग्रहण कर लूँगा।" उसने मौन ले लिया और परममुनि की तरह सिद्धिके लिए ध्यानमग्न हो गया। वह गजेन्द्र भी स्वच्छन्द विहार करने लगा। परन्तु स्वामीके सम्मानको वह नहीं भूला। वह (सदैव) उसकी रक्षा करता और (एकक्षण) उसका

पडिरक्खइ पासु ण सुअइ किह । भव-भव-किउ सुक्किय-कम्मु जिह ॥९॥

घत्ता

ताम रुअन्तें पहसिएँण अक्खिउ जणणिहेँ वुण्णणाणहेँ ।
'एउ ण जाणहुँ कहि मि गउ मरुएउ विओएं अन्जणहेँ' ॥१०॥

[१५]

तं णिसुणेँ वि सव्वङ्गिय-पसरिय-वेयणा ।
पवण-जणणि मुच्छाविय थिय अच्चेयणा ॥१॥

पव्वालिय हरियन्दण-रसेँण । उज्जीविय कह वि पुण्ण-वसेँण ॥२॥
'हा पुत्त पुत्त दक्खवहि मुहु । हा पुत्त पुत्त कहिँ गयउ तुहुँ ॥३॥
हा पुत्त आउ महु कमेँहिँ पडु । हा पुत्त पुत्त रहगएँहिँ चडु ॥४॥
हा पुत्त पुत्त उववणेँहिँ भमु । हा पुत्त पुत्त गेन्दुएँहिँ रमु ॥५॥
हा पुत्त पुत्त अत्थाणु करेँ । हा पुत्त महाहवेँ वरुणु धरेँ ॥६॥
हा वहुएँ वहुएँ महँ भन्तियएँ । तुहुँ घल्लिय अपरिक्खन्तियएँ' ॥७॥
पल्हाएँ धीरिय 'लुहहि मुहु । णिक्कारणेँ रोवहि काइँ तुहुँ ॥८॥
हउँ कन्ते गवेसमि तुव तणउ । इमु मेइणि-मण्डलु केत्तडउ' ॥९॥

घत्ता

एम भणेवि णराहिवेँण उवयारु करेँवि सासणहरहुँ ।
उभय-सेढि-विणिवासियहुँ पट्ठविय लेह विज्जाहरहुँ ॥१०॥

[१६]

एक्कु जोहु सपेसिउ पासु दसासहो ।
अक्क-सक्क-तइलोक्क-चक्क-सतासहो ॥१॥

अवरेक्कु विहि मि खर-दूसणहुँ । पायाललङ्क - परिभूसणहुँ ॥ २ ॥
अवरेक्कु कइद्धय-पत्थिवहोँ । सुग्गीवहोँ किक्किन्धाधिवहोँ ॥३॥
अवरेक्कु किक्कुपुर-राणाहुँ । णल-णीलहुँ पमय-पहाणाहुँ ॥४॥
अवरेक्कु महिन्द-णराहिवहोँ । तिकलिङ्ग-पहाणहोँ पत्थिवहोँ ॥५॥
अवरेक्कु धवल-णिम्मल-कुलहोँ । पडिसूरहोँ अन्जण-माउलहोँ ॥६॥
दूवत्तएँ पत्तएँ गाढ-भय । हणुवन्तहोँ मायरि मुच्छ गय ॥७॥
अहिसिञ्चिय सीयल-चन्दणेँण । पड वाइय वर-कामिणि-जणेँण ॥८॥
आसासिय सुन्दरि पवण-पिय । णं थिय तुहिणाहय कमल-सिय ॥९॥

पास नहीं छोड़ता, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार पूर्वजन्म के किये गये शुभ कर्म जीवका साथ नहीं छोड़ते। इधर, घर आकर, प्रहसितने रोते-रोते विषादविह्वला माँसे कहा—"अञ्जनाके वियोगमे पवनञ्जय न जाने कहाँ चला गया" ॥ १-१० ॥

[१५] यह सुनते ही जैसे केतुमतीके सारे शरीरमे वेदना फैल गई। वह मूर्छित होकर गिर पड़ी। हरिचंदनका रस छिड़कने पर, वह किसी तरह पुण्यवश होशमे आई, और विलाप करती हुई बोली—"हा पुत्र, अपना मुँह दिखाओ, हे पुत्र! तुम कहाँ चले गये! मेरे पैरोंके निकट आकर पड़ो, हे पुत्र, गण्डस्थलपर बैठो। गेंदसे खेलो, दरबार लगाओ, हे पुत्र, युद्धमे वरुणको पकड़ो। हे बहू, मैंने भूलसे परीक्षा लिये बिना तुझे वनमे छोड़ दिया।" तब राजा प्रह्लादने धीरज बँधाते हुए कहा—"मुँह पोछ लो, तुम व्यर्थ क्यो रोती हो, मैं तुम्हारे बेटेकी खोज कराता हूँ। यह धरती-मण्डल है कितना-सा।" राजाने दूतोंको बुलाकर दोनो श्रेणियो (विजयार्ध) के विद्याधरोंके पास परिपत्र भेजा ॥ १-१० ॥

[१६] एक योधा, उसने इन्द्र और त्रिलोकचक्रको सतानेवाले रावणके पास भी भेजा, और एक दूत, पाताल-लङ्काके आभूषण खर और दूषणके पास भी। एक सुग्रीवके पास और एक वानरोंके प्रधान, किष्कपुरके राजा नल और नीलके पास। एक, त्रिकलिङ्गके राजा महेन्द्रके पास, और एक धवलित निर्मल कुलवाले, अञ्जनाके मामा प्रतिसूर्यके पास। ज्यो ही हनुमानकी माँ अञ्जनाने यह भयङ्कर और खोटी बात सुनी, वह मूर्छित होकर गिर पड़ी। ठंडा जल सींचने और स्त्रियोंके पङ्खा झलनेपर, वह सुन्दरी किसी तरह आश्वस्त होकर बैठी। वह ऐसी लग रही थी मानो हिमसे आहत कमलश्री हो। मामाने उसे धीरज बँधाते हुए

घत्ता

ताम वियीरिय माउलेँण 'मा माए॑ विसूरउ करि मणहोँ ।
सिद्धहोँ सासय-सिद्धि जिह तिह पइँ दुक्खवमि समीरणहोँ' ॥१०॥

[१७]

पुणु पुणो वि धीरेप्पिणु अञ्जणसुन्दरि ।
णिय-विमाणेँ आरूढु णराहिव-केसरि ॥१॥

गउ तेत्तहेँ जेत्तहेँ केउमइ । अण्णु वि पल्हाय-णराहिवइ ॥२॥
णरवर-विन्दाइँ असेसाइँ । मेलेप्पिणु गयइँ गवेसाइँ ॥३॥
तं भूअरवाडइ ढुक्काइँ । घण-उलइँ व थाणहोँ चुक्काइँ ॥४॥
पवणञ्जउ जहिँ आरुहेँवि गउ । सो कालमेहु वणेँ दिट्ठु गउ ॥५॥
उद्धाइउ उक्करु उव्वयणु । तण्डविय-कण्णु तम्बिर-णयणु ॥६॥
तं पाराउट्ठउ करेँवि वलु । गउ तहिँ जेँ पडीवउ अतुल-वलु ॥७॥
गणियारिउ ढोइय वसिकियउ । णव-णलिणि-सण्डेँ भमरु व थियउ ॥८॥
किङ्करेँहिँ गवेसन्तेहिँ वणेँ । लक्खिउ वेल्लहलेँ लया-भवणेँ ॥९॥
जोक्कारिउ विज्जाहर-सएँहिँ । जिह जिणवरु सुरेँहिँ समागएँहिँ ॥१०॥

घत्ता

मउणु लएवि परिट्ठियउ णउ चवइ ण चल्लइ झाण-परु ।
जाय भन्ति मणेँ सव्वहु मि 'कट्ठमउ किण्ण णिम्मविउ णरु' ॥११॥

[१८]

पुणु सिलोउ अवणीयलेँ लिहिउ स-हत्थेँण ।
'अञ्जणाएँ मुइयाएँ मरमि परमत्थेँण ॥१॥

जीवन्तिहेँ णिसुणमि वत्त जइ । तो चोज्जमि लइ एत्तडिय गइ' ॥२॥
त णिसुणेँवि हणुरुह-राणएँण । वज्जरिय वत्त परिजाणएँण ॥३॥
तामरस - दहास - सरिसाणणउ । विण्णि मि वसन्तमालञ्जणउ ॥४॥
जिह उभय-पुरहुँ परिवल्लियउ । जिह वणेँ भमियउ एक्कल्लियउ ॥५॥

कहा। "हे माँ, मनमें व्यर्थ खेद मत करो, सिद्धोंकी सिद्धिकी तरह निश्चय मैं तुम्हें पवनञ्जय दिखाऊँगा" ॥१-१०॥

[१७] इस तरह बार-बार अञ्जना सुन्दरीको धीरज बँधाकर वह नराधिपकेशरी उसे अपने विमानमें बैठाकर ले गया। वह उस स्थानपर पहुँचा जहाँ केतुमती, प्रह्लादराज और अन्य सभी श्रेष्ठतर उसकी खोज-खबरमें लगे थे। अत्यन्त आकुल होकर वे लोग रास्ता भूलकर भूतरवा नामकी अटवीमें जा पहुँचे। वहाँ उन्हें कालमेघ हाथी दिखाई दिया। यह वही हाथी था जिसपर बैठकर पवनञ्जय गया था। उसके कान फैले और आँखे लाल हो रही थीं। मुँह और सूँड़ उठाकर, वह इन लोगोंपर दौड़ा। तब बलपूर्वक उसे विमुख किया गया। और सेना उसके पीछे दौड़ी। हथिनी लगाकर उसे वशमें किया। उसे पाकर वह वैसे ही बैठ गया जैसे नई कमलिनियोंके समूहसे भ्रमर बैठ जाता है। खोज करते हुए अनुचरोंने बेल-फलके लता-भवनमें कुमार पवनञ्जयको देख लिया, सैकड़ों विद्याधरोंने उसका वैसे ही अभिनन्दन किया जैसे अभिषेकके समय देव जिनका करते हैं। मौन लेकर वह ध्यानमें रत था, न बोलता न चालता, सभीको यह भ्रान्ति हो रही थी कि यह काष्ठमय मनुष्य किसने बनाया ॥१-१०॥

[१८] अपने हाथसे धरतीतलपर उसने यह श्लोक लिख रक्खा था। "अञ्जनाके मरनेपर मैं भी यथार्थमें मर रहा हूँ, जब मैं उसके जीवित होनेकी बात सुनूँगा तभी बोलूँगा, नहीं तो मेरी यही गति होगी।" यह बात सुनकर हनुरुहद्वीपके राजा प्रतिसूर्यने उसे सारा वृत्तान्त कह सुनाया, "कि किस प्रकार मुरझाये रक्त कमलके समान मुखवाली, दोनों—वसन्तमाला और अञ्जना सुन्दरी घरसे निर्वासित हुईं। किस प्रकार उन्हें अकेले वनमें घूमना

जिह हरिवरेण उवसग्गु किउ । अट्ठावएण जिह उवसमिउ ॥६॥
जिह लद्धु पुत्तु भूसणु इलहेँ । जिह णहेँ णिज्जन्तु पडिउ सिलहेँ ॥७॥
सिरिसइलु णाउँ हणुवन्तु जिह । वित्तन्तु असेसु वि कहिउ तिह ॥८॥
तं वयणु सुणेवि समुट्ठियउ । पडिसूरें णिय-णयरहोँ णियउ ॥९॥

घत्ता

मिलिउ पहञ्जणु अञ्जणहोँ वेण्णि मि णिय-कहउ कहन्ताइँ ।
हणुरुह-दीवेँ परिट्ठियइँ थिरु रज्जु स इं भु ञ्जन्ताइँ ॥१०॥

•

[२०. वीसमो सन्धि]

वड्ढन्तउ पावणि भड-चूडामणि जाव जुवाण-भावेँ चडइ ।
तहिँ अवसरेँ रावणु सुर-सतावणु रणउहेँ वरुणहोँ अब्भिडइ ॥

[१]

दूआगमणेँ कोउ सवज्झइ । सइँ सरहसु दसासु सण्णज्झइ ॥१॥
परिवेढिउ रयणियर-सहासेँहिँ । पेसिय सासणहर चउपासेँहिँ ॥२॥
खर - दूसण - सुग्गीव-णरिन्दहुँ । णल-णीलहुँ माहिन्द-महिन्दहुँ ॥३॥
पल्हायहोँ पडिदिणयर-पवणहुँ । जाणेँ वि समरु वरुण-दहवयणहुँ ॥४॥
मारुइ सयण-जयासाऊरेँ हिँ । वुच्चइ पवणञ्जय-पडिसूरेँहिँ ॥५॥
'वच्छ वच्छ परिपालहि मेइणि । काणहि राय-लच्छि जिह कामिणि ॥६॥
अम्हेँहिँ रावण-आण करेवी । पर-वल-जय-सिरि-वहुअ हरेवी' ॥७॥
त णिसुणेँ वि अरि-गिरि-सोदामणि । चलण णवेप्पिणु पभणइ पावणि ॥८॥

घत्ता

'किं तुम्हेँ विरुज्झहोँ अप्पुणु जुज्झहोँ मइँ हणुवन्तेँ हुन्तएँ ण ।
पावन्ति वसुन्धर चन्द-दिवायर किं किरणोहेँ सन्तएँ ण' ॥९॥

पड़ा। किस प्रकार सिंहने उपसर्ग किया। किस प्रकार अष्टापदने उसे शान्त किया, किस प्रकार उसने पृथ्वीका आभूपण-पुत्र पाया। किस प्रकार गिरकर उसने चट्टान चूर-चूर कर दी, श्री शैलगिरिसे कैसे वह उसे अपने नगर ले गया और उसका नाम हनुमान पड़ा। यह सुनकर वह उठ बैठा। राजा प्रतिसूर्य उसे अपने नगर ले गया। पवनञ्जयका अञ्जनासे मिलाप हुआ, दोनो तब अपनी अपनी कहानी कहते हुए हनुरुहद्वीपमे रहकर राज्य-भोग करने लगे ॥१-१०॥

वीसवीं सन्धि

भटश्रेष्ठ हनुमान बढ़कर, जैसे ही युवावस्थामे पहुँचा वैसे ही सुरसन्तापक रावणने वरुणपर पुन. चढ़ाई कर दी।

[१] दूतके वापस आते ही वह क्रुद्ध होकर स्वयं तैयार होने लगा। हजारो राक्षसोसे घिरे हुए उसने चारो ओर दूत भेज दिये। मुख्यरूपसे उसने खर, दूपण, सुग्रीव नरेश, नल, नील, माहेन्द्र, महेन्द्र, प्रह्लादराज, पवनञ्जय और प्रतिसूर्यके पास दूत भेजे। रावण तथा वरुणका युद्ध जानकर और स्वजनोंकी विजयसे पवनञ्जय और प्रतिसूर्यने हनुमानसे कहा—"वत्स, वत्स, तुम इस धरतीको पालो और राजलक्ष्मीको कामिनीकी तरह मानो। हमलोग रावणके आदेश को मानकर, शत्रुसेनाको जीतकर, जयश्री वधूका अपहरण करेंगे।" यह सुनकर शत्रुरूपी पर्वतके लिए विजलीकी तरह हनुमान उनके चरणोपर गिरकर बोला—"मुझ हनुमानके रहते हुए, आपलोगो को कुपित होकर लड़नेसे क्या ? क्या चन्द्र और सूर्य, किरण-जाल के होते हुए स्वयं धरतीपर आते हैं ?" ॥१-६॥

[२]

भणइ समीरणु 'जयसिरि-लाहउ । अज्जु वि पुत्त ण पेक्खिउ आहउ ॥१॥
अज्जु वि बालु केम तुहुँ जुज्झहि । अज्जु वि वूह-भेउ णउ वुज्झहि' ॥२॥
तं णिसुणेवि कुविउ पवणञ्जइ । 'बालु कुम्भि किं विडपि ण भञ्जइ ॥३॥
बालु सीहु कि करि ण विहाडइ । किं बालग्गि ण डहइ महाडइ ॥४॥
बालयन्दु कि जणें ण मुणिज्जइ । बालु भडारउ किं ण थुणिज्जइ ॥५॥
बालु भुवङ्गसु काइँ ण डङ्कइ । बाल-रविहेँ तमोहु किं थक्कइ' ॥६॥
एम भणेवि पहञ्जणि-राणउ । लङ्काणयरिहेँ दिण्णु पयाणउ ॥७॥
दहि-अक्खय-जल-मङ्गल - कलसहिँ । णड-कइ-वन्दि-विप्प - णिग्घोसहिँ ॥८॥

घत्ता

हणुवन्तु स-साहणु परिओसिय-मणु एन्तु दिट्ठु लङ्केसरेँण ।
छुण-दिवसेँ वलन्तउ किरण-फुरन्तउ तरुण-तरणि णं ससहरेँण ॥९॥

[३]

दूरहों उज्जें तइलोक्क-भयावणु । सिरु णावेंवि जोक्कारिउ रावणु ॥१॥
तेण वि सरहसेण सव्वङ्गिउ । एन्तउ सामीरणि आलिङ्गिउ ॥२॥
चुम्बेंवि उच्चोलिहिँ वइसारिउ । वारवार पुणु साहुक्कारिउ ॥३॥
'धण्णउ पवणु जासु तुहुँ णन्दणु । भरहु जेम पुरएवहों णन्दणु' ॥४॥
एम कुसल-पिय-महुरालावेंहिँ । कङ्कण - कञ्चीदाम - कलावेंहिँ ॥५॥
तं हणुवन्त-कुमारु पपुज्जें वि । वरुणहों उप्परि गउ गलगज्जें वि ॥६॥
वेलन्धर-घरें मुक्क-पयाणउ । थिउ वलु सरयब्भ-उल-समाणउ ॥७॥
कहि मि सम्बु-खर-दूसण-राणा । कहि मि हणुव-णल-णील-पहाणा ॥८॥

[२] तब पवनञ्जयने कहा—"हे पुत्र, आजतक न तो तुमने विजयश्रीका लाभ देखा और न युद्ध। आज भी तुम बच्चे हो, लड़ोगे कैसे ? अभी तुम व्यूह तोड़ना भी नहीं जानते।" यह सुनकर हनुमानने क्रोधमें आकर कहा—"क्या बाल हाथी वृक्षको नहीं उखाड़ सकता, क्या बाल सिंह हाथीको नहीं पछाड़ सकता, क्या छोटी-सी चिनगारी महाटवीको भस्म नहीं कर देती, क्या बालचन्द्रका लोग सम्मान नहीं करते ? क्या बालक योद्धाकी स्तुति नहीं की जाती, क्या साँपका बच्चा किसीको नहीं डँसता ? बालसूर्य के आगे क्या अन्धेरा ठहर सकता है।" यह कहकर हनुमानने लङ्का नगरीके लिए प्रस्थान कर दिया। तब चारण और विप्रोंके जयघोषके साथ, उसे दही, अक्षत, जल और मङ्गल कलशोंसे विदाई दी गई ॥१-८॥

लङ्कानरेश रावणने बड़े संतोषसे हनुमानको सेना सहित आते देखा। उसे लगा मानो वह, जलता और किरणोंसे चमकता हुआ तरुण सूर्य ही, पूनोंके चाँदके साथ हो ॥९॥

[३] उसने दूरसे ही, त्रिभुवनभयङ्कर रावणको माथा झुकाकर बधाई दी। उसने भी हर्षपूर्वक आते हुए हनुमानको सर्वाङ्ग आलिंगन किया, उसको चूमकर अपनी गोदमें बैठा लिया। बार-बार उसकी सराहना करते हुए वह बोला—"वह पवनञ्जय धन्य है जिसका तुम जैसा पुत्र है, वैसे ही जैसे ऋषभका भरत था।" इस प्रकार कुशल, प्रिय और मधुर संभाषण तथा कंगन और सोनेकी करधनीसे कुमार हनुमानका आदर-सत्कारकर रावण ने गरजकर वरुणपर चढ़ाई कर दी। चलकर उसने वेलंधर पर्वत पर अपना डेरा डाला। शरद्के मेघदलोंके समान उसकी सेना इधर-उधर ठहर गई, कहीं शम्बूक, खर और दूषण राजा ठहरे

कहि मि कुमुअ-सुग्गीवङ्गङ्गय । णं थिय थट्टेंहिँ मत्त महागय ॥९॥

घत्ता

रेहइ णिसियर-वलु वड्डिय-कलयलु थडेंहिँ थडेंहिँ आवासियउ ।
णं दहमुह-केरउ विजय-जणेरउ पुण्ण-पुञ्जु पुञ्जेहिँ थियउ ॥१०॥

[४]

तो एत्थन्तरेँ रणेँ णिक्करुणहोँ । चर-पुरिसेँहिँ जाणाविउ वरुणहोँ ॥१॥
'देव देव किं अच्छहि अविचलु । वेलन्धरेँ आवासिउ पर-वलु' ॥२॥
चारहुँ तणउ वयणु णिसुणेप्पिणु । वरुणु णराहिउ ओसारेप्पिणु ॥३॥
मन्तिहिँ कण्ण-जाउ तहोँ दिज्जइ । 'केर दसाणण-केरी किज्जइ ॥४॥
जेण धणउ समरङ्गणेँ वङ्किउ । तिजगविहूसणु वारणु वसिकिउ ॥५॥
जें अट्ठावउ गिरि उद्धरियउ । माहेसर-वइ णरवइ जरियउ ॥६॥
जेण णिरत्थीकिउ णल-कुव्वरु । ससहरु सूरु कुवेरु पुरन्दरु ॥७॥
तेण समाणु कवणु किर आहउ । केर करन्तहुँ कवणु पराहउ ॥८॥

घत्ता

त णिसुणेँवि दुद्धरु वरुणु धणुद्धरु पजलिउ कोव-हुवासणेँण ।
'जइयहुँ खर-दूसण जिय वेण्णि मि जण तइउ काइँ किउ रावणेँण' ॥९॥

[५]

एव भणेवि सुवर्णे जस-लुद्धउ । सरहसु वरुणु राउ सण्णद्धउ ॥१॥
करि-मयरासणु विप्फुरियाहरु । दारुण - णागपास - पहरण-करु ॥२॥
ताडिय समर-भेरि उब्भिय धय । सारि-सज्ज किय मत्त महागय ॥३॥
हय पक्खरिय पजोत्तिय सन्दण । णिग्गय वरुणहोँ केरा णन्दण ॥४॥
पुण्डरीय-राजीव धणुद्धर । वेलाणल - कल्लोल - वसुन्धर ॥५॥

और कहीं हनुमान, नल और नील प्रधान ठहरे। कहीं कुमुद, सुग्रीव, अङ्ग और अङ्गद ठहरे। वहाँ ठहरे हुए वे ऐसे लगते थे मानो मदमाते हाथी ही झुण्डके झुण्ड स्थित हों। कलकल करती और नाना दलोंमें विभक्त रावणकी सेना ऐसी सोह रही थी मानो उसका विजय-जनक पुण्यपुञ्ज ही अनेक समूहोंमें बिखर गया हो ॥१-१०॥

[४] इसी बीच चरोंने आकर रणमें कठोर अपने स्वामी वरुणसे कहा—"हे देव, आप निश्चल क्यों बैठे हैं, शत्रु-सेना वेलन्धर पहाड़पर पड़ाव डाल चुकी है।" दूतोंके वचन सुनकर मन्त्रीने नराधिपको हटाकर और एकान्तमें ले जाकर कानमें फुसफुसाकर कहा—"रावणकी अधीनता मान लीजिये, जिसने समराङ्गणमें धनदको कुचला। त्रिजग-भूषण हाथीको वशमें किया। जिसने अष्टापद (कैलाश) पर्वतको उठाया। माहेश्वरपति सहस्रकरको पछाड़ा। जिसने नल-कूवर तथा चन्द्र, सूर्य कुबेर और इन्द्रको भी निरस्त्र कर दिया, उसके साथ युद्ध कैसा? और फिर उसकी अधीनता माननेमें अपमानकी भी कोई बात नहीं।" यह सुनकर दुर्धर धनुर्धारी वरुण क्रोधाग्निमें जल उठा। उसने कहा—"जब मैंने खर और दूषण दोनोंको सताया था तब रावणने क्या किया था" ॥१-६॥

[५] यह कहकर, दुनियामें अपने यशका लोभी, राजा वरुण आवेगपूर्वक तैयार होने लगा। हाथीके ऊपर मकरासनपर आरूढ़ हो, उसने हाथमें दारुण नागपाश अस्त्र ले लिया, उसके ओठ फड़क रहे थे। युद्धकी भेरी बज उठी, पताका फहराने लगी, मत्त महागजोंको अम्बारीसे सजा दिया गया। घोड़ोंको कवच पहना दिये गये। वरुणके सभी पुत्र धनुर्धर पुण्डरीक, राजीव, वेलानल, कल्लोल,

तोयावलि - तरङ्ग - वगलामुह । वेलन्धर - सुवेल - वेलामुह ॥६॥
सन्झा - गलगज्जिय - सन्झावलि । जालामुह - जलोह - जालावलि ॥७॥
जलकन्ताइ अणेय पधाइय । सरहस आहव-भूमि पराइय ॥८॥
विरएँ वि गरुड-वूहु थिय जावेँहिँ । वइरिहिँ चाव-वूहु किउ तावेँहिँ ॥९॥

घत्ता

अवरोप्परु वरियइँ मच्छर-भरियइँ दूरुग्घोसिय-कलयलइँ ।
रोमञ्च-विसट्टइँ रणेँ अब्भिट्टइँ वे वि वरुण रावण-वलइँ ॥१०॥

[६]

किय-अङ्गइँ उग्गालिय-खग्गइँ । रावण-वरुण-वलइँ आलग्गइँ ॥१॥
गय-घड - घण - पासेइय-गत्तइँ । कण्ण - चमर - मलयाणिल-पत्तइँ ॥२॥
इन्दणील - णिसि-णासिय-पसरइँ । सूरकन्ति - दिण - लद्धावसरइँ ॥३॥
उक्खय - करिकुम्भत्थल-सिहरइँ । कड्ढिय-असि - मुत्ताहल - णियरइँ ॥४॥
पम्मुक्केक्कमेक्क - करवालइँ । दस - दिसिवह-धाइय- कीलालइँ ॥५॥
गय-मय-णइ-पक्खालिय-घायइँ । णच्चाविय - कवन्ध - सघायइँ ॥६॥
ताव दसाणणु वरुणहोँ पुत्तेँहिँ । वेढिउ चन्दु जेम जीमुत्तेँहिँ ॥७॥
केसरि जेम महागय-जूहहिँ । जीउ जेम दुक्कम्म-समूहहिँ ॥८॥

घत्ता

एक्कल्लउ रावणु भुवण-भयावणु भमइ अणन्तएँ वइरि-वलेँ ।
स-णियम्बु स-कन्दरु णाइँ महीहरु मत्थिज्जन्तएँ उवहि-जलेँ ॥९॥

[७]

ताम वरुणु रावणहोँ वि भिच्चेँहिँ । विहि-सुअ-सारण-मय-मारिच्चेँहिँ ॥१॥
हत्थ - पहत्थ - विहीसण - राएँहिँ । इन्दइ-घणवाहण - महकाएँहिँ ॥२॥

वसुन्धर, तोयावली, तरङ्ग, वगलामुख, वेलन्धर सुवेल, वेलामुख, सन्ध्या, गलगर्जित सन्ध्यावलि, ज्वालामुख, जलौघ, ज्वालावलि और जलकान्त निकलकर दौड़ पड़े। वे हर्षके साथ युद्ध-भूमिमें जा पहुँचे। वहाँ पहुँचकर वे अपना भारी व्यूह बनाकर बैठ गये। यहाँ शत्रुओंने भी इतनेमें अपना चाप-व्यूह बना लिया। एक दूसरेसे बलिष्ठ, मत्सरसे भरी हुई, दूरसे ही कोलाहल मचाती, रोमाञ्चित रावण और वरुणकी दोनों सेनाएँ युद्धमें टकरा गईं॥१-१०॥

[६] अगरत्नको सहित तलवार उठाये, रावण और वरुणकी सेनाएँ एक दूसरे पर टूट पड़ीं। गजघटाके शरीर पसीनेसे लथपथ थे। उनके कानोंके चामरोंसे मलय हवा-सी आ रही थी। जब कभी इन्द्रनील-मणियोंकी प्रभासे हुई रातके कारण प्रसार रुक जाता तो सूर्यकान्त-मणियोंके दिनमणि (सूर्य) से उन्हें अवसर (जानेका) मिल पाता, कोई योद्धा हाथियोंके कुम्भस्थल विदीर्ण कर रहा था, कोई तलवारसे मोतियोंके पुञ्ज उछाल रहा था, एक दूसरे पर तलवारें छोड़ी जा रही थीं। दसों दिशाओंमें रक्तकी धारा बह निकली। गजोंके मदजलोंकी सरितामें सैनिक घाव धोने लगे। और घोड़ोंके कबन्धोंको नचाने लगे। इतनेमें वरुणके पुत्रोंने रावणको ऐसे घेर लिया मानो मेघोंने चन्द्रमाको घेर लिया हो। या महागज समूह सिंहको अथवा दुष्कर्मसमूहने जीवको घेर लिया हो। फिर भी भुवनभयङ्कर रावण अनन्त शत्रु-सेनामें अकेला ही ही घूम रहा था। वह ऐसा मालूम हो रहा था मानो कटक और गुफा सहित पहाड़ ही नथे जाते हुए समुद्र-जलमें तैर रहे हो॥१-६॥

[७] तभी रावणके अनुचरोंने वरुणको घेर लिया। विधिसुत, सारण, मय, मारीच, हस्त, प्रहस्त, राजा विभीषण, महाकाय

अङ्गङ्गय - सुग्गीव - सुसेणेँहिँ । तार - तरङ्ग - रम्भ-विससेणेँहिँ ॥३॥
कुम्भयण्ण - खर - दूसण-वीरेँहिँ । जम्बव-णल-णीलेँहिँ सोण्डीरेँहिँ ॥४॥
वेढिउ खत्त-धम्मु परिसेसेँवि । तेण वि सरवर-धोरणि पेसेँवि ॥५॥
खेडिय अणडुह व्व जलधारहिँ । ताम दसाणणु वरुण-कुमारेँहिँ ॥६॥
आयामेँवि सव्वहिँ समकण्डिउ । रहु सण्णाहु महाधउ खण्डिउ ॥७॥
तं णिएवि णिय-कुल-णेयारेँ । सरहसेण हणुवन्त-कुमारेँ ॥८॥

घत्ता

रणउहेँ पइसन्तेँ वइरि वहन्तेँ रावणु उव्वेढावियउ ।
अवियाणिय-काएँ णं दुव्वाएँ रवि मेहहँ मेल्लावियउ ॥९॥

[८]

सयल वि सत्तु सत्त-पडिकूलेँ । सवेढेँ वि विज्जा-लङ्गूलेँ ॥१॥
लेइ ण लेइ जाम मरु-णन्दणु । ताम पधाइउ वरुणु स-सन्दणु ॥२॥
'अरेँ खल खुद्द पाव वलु वाणर । कहिँ सचरहि सण्ढ अहवा णर' ॥३॥
तं णिसुणेप्पिणु वलिउ कइद्धउ । सीहु व सीहहोँ वेहाविद्धउ ॥४॥
विण्णि कि किर भिडन्ति दणु-दारण । णागपास - लङ्गल - प्पहरण ॥५॥
ताम दसाणणु रहवरु वाहेँवि । अन्तरेँ थिउ रण-भूमि पसाहेँवि ॥६॥
ओँरेँ वलु वलु हयास अरेँ माणव । मइँ कुविएण ण देव ण दाणव ॥७॥
'ज किउ जम-मियङ्क-धणयक्कहुँ । सहस - किरण - णलकुव्वर-सक्कहुँ ॥८॥

घत्ता

अवरहु मि सुरिन्दहुँ णरवर-विन्दहुँ दिण्णइँ आसि जाइँ जाइँ ।
परिहव-दुमइत्तइँ फलइँ विचित्तइँ तुज्झु वि देमि ताइँ ताइँ' ॥९॥

[९]

तं णिसुणेँवि अतुलिय-माहप्पे । णिब्भच्छिउ जलकन्तहोँ वप्पे ॥१॥
'लङ्काहिव हेवाइउ अवरेँहिँ । सूर-कुवेर - पुरन्दर - अमरेँहिँ ॥२॥

इन्द्रजीत, मेघवाहन, अंग अंगद, सुग्रीव, सुसेन, तार, तारङ्ग, रम्भ, वृपभसेन, कुम्भकर्ण, वीर खर, दूपण, जाम्ववान, नल, नील और सोडीरने क्षात्र धर्म ताकमें रखकर, उसे घेर लिया। वरुणने भी वाणोंकी वौछार की। इधर वरुण कुमारोंके साथ रावण ऐसे क्रीड़ा कर रहा था मानो, वैल जल-धाराओंके साथ खेल रहा हो। उन सवने शक्त होकर उसे घेरकर उसके रथ, कवच तथा महाध्वज के टुकड़े-टुकड़े कर दिये। यह देखकर, अपने कुलका नेता हनुमान रणमुखमें जा घुसा, और शत्रुको खदेड़कर उसने घिरे हुए रावणको वैसे ही मुक्त किया जैसे अमूर्त पवन मेघोंसे रविको मुक्त करता है ॥१-६॥

[८] शत्रु-विरोधी हनुमान, अपनी मायामयी पूँछसे समस्त शत्रुओंको घेरकर पकड़ने वाला ही था वरुण वहाँ आ पहुँचा। आकर वह वोला, "अरे खल, क्षुद्र पापात्मा वानर रुक, कहाँ जाता है, पशु है या मनुष्य।" यह सुनकर कपिध्वज हनुमान भड़क उठा, वैसे ही जैसे क्रुद्ध सिंह सिंहको देखकर भड़क उठता है। तव नागपाश और मायामयी पूँछके अस्त्रोंसे दोनों लड़ने लगे। इतनेमें रावण अपना रथ हाँककर रण-भूमिके वीचमें आकर खड़ा हो गया, और वह वोला, "अरे हताश मानव ठहर, क्रोध आनेपर मैंने देव या दानव किसीको नहीं छोड़ा। यम, कुवेर, सहस्रकिरण, नल-कूवर और इन्द्रके साथ जो किया वह सव तुझे विदित है और भी मैंने दूसरे देवों और मनुष्योंको पराभवके विचित्र-विचित्र फल दिये हैं, वे तुझे भी दूँगा ॥१-९॥

[९] यह सुनकर, जलकान्तके पिता, अतुल माहात्म्यवाले वरुणने भर्त्सना करते हुए कहा, "अरे लङ्काधिप, दूसरे वीरोंने (इन्द्र, कुवेर आदि देवोंने) तुम्हें अहङ्कारपर चढ़ा दिया है, मैं

हउँ पुणु वरुणु वरुणु फलु दावमि । पइँ दहमुह-दवग्गि उल्हावमि' ॥३॥
दोच्छिउ रावणेण एत्थन्तरेँ । 'केत्तिउ गज्जहि सुहडब्भन्तरेँ ॥४॥
अहिमुहु थक्कु ढुक्कु वलु बुज्झहि । सामण्णाउहेँहि लइ जुज्झहि ॥५॥
मोहण-थम्भण - डहण - समत्थेँहिँ । को वि ण पहरइ दिव्वहिँ अत्थेँहिँ' ॥६॥
एम भणेवि महाहवेँ वरुणहोँ । गहकल्लोलु भिडिउ ण अरुणहोँ ॥७॥
तहिँ अवसरेँ पवणञ्जय-सारेँ । आयामेँवि हणुवन्त-कुमारेँ ॥८॥

घत्ता

णरवर-सिर-सूलेँ णिय-लङ्गूलेँ वेढेँवि धरिय कुमार किह ।
कम्पावण-सीलेँ पवणावीलेँ तिहुवण-कोडि-पएसु जिह ॥९॥

[१०]

णिय-णन्दण-वन्धणेँण स-करुणहोँ । पहरणु हत्थेँ ण लग्गइ वरुणहोँ ॥१॥
रावणेण उप्पएँवि णहङ्गणेँ । इन्दु जेम तिह धरिउ रणङ्गणेँ ॥२॥
कलयलु घुट्टु हयइँ जय-तूरइँ । जलणिहि-सद्द सद्द-गय-दूरइँ ॥३॥
ताव भाणुकण्णेण स-णेउरु । आणिउ णिरवसेसु अन्तेउरु ॥४॥
रसणा - हार - दाम - गुप्पन्तउ । गलिय-घुसिण कद्दमेँ खुप्पन्तउ ॥५॥
अलि - झङ्कार - पमुहलिज्जन्तउ । णिय-भत्तार - विओअ-किलन्तउ ॥६॥
अंसु जलेण धरिणि सिञ्चन्तउ । कज्जल-मलेँण वयइँ मइलन्तउ ॥७॥
त पेक्खेँवि गओलिलय-गत्तेँ । गरहिउ कुम्भयण्णु दहवत्तेँ ॥८॥

घत्ता

'कामिणि-कमल-वणाइँ सुअ-लय-भवणाइँ महुअरि-कोइल-अलिउलइँ ।
एयइँ सुपसिद्धइँ वम्मह-चिन्धइँ पालिज्जन्ति अणाउलइँ' ॥९॥

[११]

तं णिसुणेवि स-डोरु स-णेउरु । रविकण्णेण मुक्कु अन्तेउरु ॥१॥

वरुण हूँ, मैं तुम्हें वरुण फल ही चखाऊँगा, दावानलसे तुम्हारे दसों मुखोंको शान्त कर दूँगा।" तब रावणने उसे खूब तिरस्कृत किया और कहा, "योधाओंके बीचमें बार-बार कितना गरज रहे हो, सामने आ और अपनी शक्ति तौल। साधारण अस्त्रोंसे ही युद्ध कर। सम्मोहन, स्तम्भन और दहनमे समर्थ हथियारोंसे कोई भी आज नहीं लड़ेगा।" यह कह रावण वरुणसे ऐसे भिड़ गया मानो राहु सूर्यके सारथि अरुणसे भिड़ गया हो। तब पवनञ्जयके सार सर्वस्व हनुमानने समर्थ होकर, वीरोंके लिए शिर-शूलकी तरह, अपनी लम्बी पूँछसे वरुण कुमारोंको इस प्रकार घेरकर बाँध लिया, मानो कँपानेवाले पवन-समूहने त्रिभुवनके करोड़ों प्रदेशोंको घेर लिया हो ॥१-६॥

[१०] अपने पुत्रोंके इस तरह बाँधे जानेपर दीन और कातर वरुणके हाथमे अस्त्र ही नहीं आ रहा था। तब रावणने आकाशमें उछलकर उसे भी इन्द्रकी तरह पकड़ लिया। आहत जयतूर्योंकी कलकल ध्वनि होने लगी। समुद्रके शब्दकी तरह वह ध्वनि दूर-दूर तक फैल गई। कुम्भकर्ण इतनेमें अलङ्कार सहित वरुणके अन्तःपुर को पकड़कर ले आया। करधौनी, हार और मालाओंसे व्याकुल, गलित कपूरकी धूलिसे सना, भौंरोंकी झङ्कारसे मुखरित, पति वियोगसे पीड़ित, काजलके मैलसे मलिनमुख, वह (अन्तःपुर) आँसुओंकी अविरल धारासे धरती सींच रहा था। उसे देखकर रावणने रोमाञ्चित गात्र हो कुम्भकर्णकी निन्दा की, और कहा— "कामिनी, कमलवन, शुक, लता-भवन, मधुकर, कोयल और भौंरे ये सब कामदेवके चिह्न हैं, 'इनका पालन अपनी ही जगह होना चाहिए" ॥१-६॥

[११] यह सुनकर डोर और नूपुरसहित अन्तःपुरको कुम्भकर्णने मुक्त कर दिया। वह भी अहङ्कारशून्य अपने नगरको

गउ णिय-णयरु मउप्फर-मुक्कउ । करिणि-जूहु ण वारिहेँ चुक्कउ ॥२॥
कोक्कावेप्पिणु वरुणु दसासेँ । पुज्जिउ सुर-जय-लच्छि-णिवासेँ ॥३॥
'अवलुय म तुहुँ करहि सरीरहोँ । मरणु गहणु जउ सव्वहोँ वीरहोँ ॥४॥
णवर पलायणेण लज्जिज्जइ । जें मुहु णामु गोत्तु मइलिज्जइ' ॥५॥
दहवयणहोँ वयणेहिँ स-करुणें । चलण णवेप्पिणु वुच्चइ वरुणें ॥६॥
'घणय-कियन्त-सक्क जें वङ्किय । सहसकिरण-णलकुव्वर वसिकिय ॥७॥
तासु भिडइ जो सो जि अयाणउ । अज्जहोँ लग्गेँ वि छुहुँ महु राणउ ॥८॥

घत्ता

अण्णु वि ससि-वयणी कुवलय-णयणी महु सुय णामें सच्चवइ ।
करि ताएँ समाणउ पाणिग्गहणउ विज्जाहर-भुवणाहिवइ' ॥९॥

[१२]

कुसुमाउहकमला वुह-णयणे । परिणिय वरुण-धीय दहवयणे ॥१॥
पुप्फ-विमाणेँ चडिउ आणन्दें । दिण्णु पयाणउ जयजय-सद्दें ॥२॥
चलियइँ णाणा-जाण-विमाणइँ । रयणइँ सत्त णवद्ध-णिहाणइँ ॥३॥
अट्ठारह सहास वर-दारहुँ । अद्धछट्ठ-कोडीउ कुमारहुँ ॥४॥
णव अक्खोहणीउ वर-तूरहुँ । (णरवर-अक्खोहणिउ सहासहुँ ॥५॥
अक्खोहणि णरवर-गय-तुरयहुँ) । अक्खोहणि-सहासु चउ-सूरहुँ ॥६॥
लङ्क पइट्ठु तुट्ठु परिओसें । मङ्गल - धवलुच्छाह - पघोसें ॥७॥
पुज्जिउ पवण-पुत्तु दहगीवें । दिज्जइ पउमराय सुग्गीवें ॥८॥
खरेँण अणङ्गकुसुम वय-पालिणि । णल-णीलेहिँ धीय सिरिमालिणि ॥९॥
अट्ठ सहास एम परिणेप्पिणु । गउ णिय-णयरु पसाउ भणेप्पिणु ॥१०॥
सम्बु कुमारु वि गउ वणवासहोँ । खग्गहोँ कारणेँ दिणयरहासहोँ ॥११॥

ऐसे चला गया मानो गर्वसे हथिनियोंका झुण्ड ही निकल आया हो। तब देवोंकी जयलक्ष्मीके निवासरूप रावणने वरुणको बुलाकर उसका सम्मान किया और कहा, "तुम्हे मनमें खेद नहीं करना चाहिए, शरीरका नाश, ग्रहण और जय सभी वीरोंकी होती है, केवल पलायनसे लज्जित होनी चाहिए, क्योंकि उससे मुँह, नाम और गोत्रको कलङ्क लगता है।" दसमुखके इस कथनपर वरुण उसके पैरोंपर गिरकर कहा, "जिसने धनद, यम और इन्द्रके छक्के छुडाये, सहस्रकर और नल, कूवरको वशमें किया, उससे जो लड़ाई ठानता है, वह मूर्ख है, आजसे मैं तुम्हें अपना राजा मानता हूँ और मेरी एक चन्द्रमुखी, कुमुदनयनी, सत्यवती नामकी लड़की है। विद्याधर लोकके अधिपति आप उससे विवाह कर ले" ॥१-६॥

[१२] तब पण्डितलोचन रावणने कामलक्ष्मीके समान वरुणकी उस पुत्रीसे विवाह कर लिया। पुष्पक विमानमें बैठकर आनन्द-पूर्ण जय-जय शब्दके बीच उसने प्रयाण किया। विविध विमान चल पड़े। रत्नोंके सात नये खजाने, अठारह हजार सुन्दर स्त्रियाँ, पाँच करोड़ पाँच लाख कुमार, नौ अक्षौहिणी कवच, हजारों नरवरों की अक्षौहिणी, मङ्गल पवित्र और उत्साहपूर्ण जय घोषोंके बीच उसने सन्तोष-पूर्वक लङ्का नगरीमें प्रवेश किया। रावणने हनुमान का आदर-सत्कार किया। सुग्रीवने उसे अपनी पङ्कजरागा लड़की दी और खरने व्रत पालनेवाली अनङ्गकुसुम। नल और नीलने श्रीमाला नामकी लड़कियाँ दीं। इस प्रकार अठारह हजार कुमारियोंसे व्याहकर, सबका आभार मानकर हनुमान अपने नगरको लौट गया। शम्बूक कुमार भी सूर्यहास खड्ग सिद्ध करने के लिए वनवासको चल दिया। सुग्रीव, अङ्ग और अङ्गद भी चले

घत्ता

सुग्गीवङ्गङ्गय णल-णील वि गय खर-दूसण वि कियत्थ-किय ।
विज्जाहर-कीलएँ णिय-णिय-लीलएँ पुरइँ स इं भुञ्जन्त थिय ॥१२॥

इय 'वि ज्जा ह र क ण्डं' । वीसहिँ आसासएहिँ मे सिट्ठ ।
एण्हि 'उ ज्झा क ण्डं' । साहिज्जन्तं णिसामेह ॥
धुवरायवत्त इयलु । अप्पणत्ति णत्ती सुयाणुपाढेण (?) ।
णामेण साऽमिअव्वा । सयम्भु घरिणी महासत्ता ॥
तीए लिहावियमिणं । वसहिँ आसासएहिँ पडिवद्ध ।
'सिरि - विज्जाहर - कण्ड' । कण्डं पिव कामएवस्स ॥

इह पढमं विज्जाहरकण्डं समत्तं

गये। तथा कृतार्थ होकर खरदूषण भी। वे सब विद्याधरोचित क्रीड़ाएँ करते हुए लीला-पूर्वक अपना-अपना राज्य भोगने लगे ॥१-१२॥

इस प्रकार, वीस सन्धियोंसे सहित यह विद्याधर काण्ड मैंने रचा। यह विद्याधर काण्ड असाधारणरूपसे शोभित है। ध्रुवराजकी इच्छासे सज्जनोंके पढनेके लिए मैंने इसकी रचना की है। स्वयम्भू की पत्नी अमृतत्वाने वीस आश्वासोंसे प्रतिबद्ध, इसे लिखवाया। कामदेवके कुण्डके समान प्रिय यह विद्याधर काण्ड समाप्त हुआ।

हमारे सुरुचिपूर्ण प्रकाशन

उर्दू शायरी

१.	शेर-ओ-शायरी	श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय	८)
२.	शेर-ओ सुखन [भाग १]	श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय	८)
३.	शेर-ओ-सुखन [भाग २]	श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३)
४.	शेर-ओ-सुखन [भाग ३]	श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३)
५.	शेर-ओ-सुखन [भाग ४]	श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३)
६.	शेर-ओ-सुखन [भाग ५]	श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३)

कविता

७.	वर्द्धमान [महाकाव्य]	श्री अनूप शर्मा	६)
८.	मिलन-यामिनी	श्री बच्चन	४)
९.	धूपके धान	श्री गिरिजाकुमार माथुर	३)
१०.	मेरे बापू	श्री हुकमचन्द्र बुखारिया	२॥)
११.	पञ्च-प्रदीप	श्री शान्ति एम० ए०	२)

ऐतिहासिक

१२.	खण्डहरोंका वैभव	श्री मुनि कान्तिसागर	६)
१३.	खोजकी पगडण्डियाँ	श्री मुनि कान्तिसागर	४)
१४.	चौलुक्य कुमारपाल	श्री लक्ष्मीशङ्कर व्यास	४)
१५.	कालिदासका भारत [भाग१-२]	श्री भगवतशरण उपाध्याय	८)
१६.	हिन्दी जैन साहित्य-परिशीलन १	श्री नेमिचन्द्र शास्त्री	२॥)
१७.	हिन्दी जैन साहित्य-परिशीलन २	श्री नेमिचन्द्र शास्त्री	२॥)

नाटक

१८.	रजत-रश्मि	श्री डा० रामकुमार वर्मा	२॥)
१९.	रेडियो नाट्य शिल्प	श्री सिद्धनाथ कुमार	२॥)
२०.	पचपनका फेर	श्री विमला लूथरा	३)
२१.	और खाई बढती गई	श्री भारतभूषण अग्रवाल	२॥)

ज्योतिष

२२.	भारतीय ज्योतिष	श्री नेमिचन्द्र जैन ज्योतिषाचार्य	६)
२३.	केवलज्ञानप्रश्नचूडामणि	श्री नेमिचन्द्र जैन ज्योतिषाचार्य	४)
२४.	करलक्खण [सामुद्रिकशास्त्र]	प्रो० प्रफुल्लकुमार मोदी	।।।)

कहानियाँ

२५.	सघर्षके बाद	श्री विष्णु प्रभाकर	३)
२६.	गहरे पानी पैठ	श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय	२।।)
२७.	आकाशके तारे : धरतीके फूल	श्री कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'	२)
२८.	पहला कहानीकार	श्री रावी	२।।)
२९.	खेल-खिलौने	श्री राजेन्द्र यादव	२)
३०.	अतीतके कम्पन	श्री आनन्दप्रकाश जैन	३)
३१	जिन खोजा तिन पाइयाँ	श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय	२।।)
३२.	नये बादल	श्री मोहन राकेश	२।।)
३३.	कुछ मोती कुछ सीप	श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय	२।।)
३४.	कालके पख	श्री आनन्दप्रकाश जैन	३)

उपन्यास

३५	मुक्तिदूत	श्री वीरेन्द्रकुमार एम० ए०	५)
३६.	तीसरा नेत्र	श्री आनन्दप्रकाश जैन	२।।)
३७.	रक्त-राग	श्री देवेशदास	३)

सूक्तियाँ

३८.	ज्ञानगङ्गा [सूक्तियाँ]	श्री नारायणप्रसाद जैन	६)
३९.	शरत्की सूक्तियाँ	श्री रामप्रकाश जैन	२)

संस्मरण, रेखाचित्र

४०.	हमारे आराध्य	श्री बनारसीदास चतुर्वेदी	३)
४१.	सस्मरण	श्री बनारसीदास चतुर्वेदी	३)
४२.	रेखाचित्र	श्री बनारसीदास चतुर्वेदी	४)
४३	जैन जागरणके अग्रदूत	श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय	५)

राजनीति

४४. एशियाकी राजनीति — श्री परदेशी साहित्यरत्न — ६)

निबन्ध, आलोचना

४५. जिन्दगी मुसकराई — श्री कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' ४)
४६. संस्कृत साहित्यमें आयुर्वेद — श्री अत्रिदेव 'विद्यालङ्कार' ३)
४७. शरत्के नारी-पात्र — श्री रामस्वरूप चतुर्वेदी ४॥)
४८. क्या मैं अन्दर आ सकता हूँ ? — श्री रावी २॥)
४९. बाजे पायलियाके घुँघरू — श्री कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' ४)
५०. माटी हो गई सोना — श्री कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' ३)

दार्शनिक, आध्यात्मिक

५१. भारतीय विचारधारा — श्री मधुकर एम० ए० २)
५२. अध्यात्म-पदावली — श्री राजकुमार जैन ४॥)
५३. वैदिक साहित्य — श्री रामगोविन्द त्रिवेदी ६)

भाषाशास्त्र

५४. सस्कृतका भाषाशास्त्रीय अध्ययन — श्री भोलाशंकर व्यास ५)

विविध

५५. द्विवेदी-पत्रावली — श्री बैजनाथ सिंह 'विनोद' २॥)
५६. ध्वनि और सगीत — श्री ललितकिशोर सिह ४)
५७. हिन्दू विवाहमें कन्यादानका स्थान — श्री सम्पूर्णानन्द १)

भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, वाराणसी